सुरसुंदरीचरित्रं

— पं. भानुचंद्र विजय

यशेन्दु प्रकाशन : पुष्प : २१

धनेश्वरमुनि रचयित (प्राकृत)

सुर-सुंदरी चरित्रं

: अनुवादक :

पन्यास-प्रवर श्री भानुचंद्रविजय गणि

: प्रस्तावक :

गो. प. नेने

यशेन्दु प्रकाशन, पूना २

यशेन्दु प्रकाशन के लिए

रंजन परमार

३११ रविवार पेठ, पूना : २
द्वारा प्रकाशित

: प्राप्तिस्थान :

: मुखपृष्ठ :
सागर आर्ट सर्व्हिस, पूना

मेघराज पुस्तक भंडार
गोडीजीनी चाल, गुलालवाडी
बम्बई : २

मूल्य : ३ रुपये
आवृत्ति : १२५०, अगस्त १९७०
सर्वाधिकार लेखकाधीन
जसवंतलाल गिरधरलाल
१४७ तंबोली खांचा
डोसीवाडानी पोष्ट, अहमदाबाद

जैन पुस्तक भंडार
पार्श्वनाथ चौक
वेताल पेठ, पूना : २

श्री गो. प. नेने
राष्ट्रभाषा मुद्रणालय
नारायण पेठ, पूना ३०
द्वारा मुद्रित

समर्पण

विजय-नेमि-विज्ञान-कस्तुरसूरी उपा. चंद्रोदय विजयजी
गणि सद्‌गुरुभ्योनमः

जैन शासन सम्राट
आचार्यदेव श्री नेमिसूरीश्वरनीमहाराज साहब के
पट्टाधिकारी सिद्धांत वाचस्पति महान् ज्योतिर्धर, न्याय-
विशारद, शिल्पादिशास्त्र निष्णात,
गीतार्थ शिरोमणि और परमोपकारी आचार्य भगवंत
श्री विजयोदयसूरीश्वरजी
के चरण-कमल में

सादर सर्मपित

—भानुचंद्र

लेखकीय निवेदन

जैन दर्शन में चार प्रकार के योग हैं : द्रव्यानुयोग, चरणकरणानुयोग, कथानुयोग एवं गणितानुयोग। इन चारों योग से संबंधित साहित्य जैन दर्शन में विपुल प्रमाण में उपलब्ध है। वर्तमानकाल में इस ब्रह्मांड में रहे जीवात्माओं को प्रतिबोधित करने के लिए उपरोक्त योग में से पूर्वाचार्यों ने कथानुयोग का अधिकाधिक और विशिष्ट रूप से उपयोग किया है। 'सुर-सुन्दरी चरित्रं' भी उसीमें से एक प्रदीर्घ कथा है। उपरोक्त कथा मूल में प्राकृत भाषा-निधि का अनमोल मोती है, जिसे कवि धनेश्वर सर्वप्रथम प्रकाश में लाए और तत्कालीन युग में लोकभोग्य बनाने का भरसक प्रयत्न और प्रयास किया। उपरोक्त कथा पद्य-साहित्य के ४००० सर्वोत्कृष्ट श्लोक समुच्चयों में वर्णनीत एवं १६ अध्यायों में विभाजित है।

आज के युग में जैनधर्म, दर्शन, संस्कृति एवं साहित्य का अधिकाधिक प्रचार और प्रसार कर जैनेतर समाज एवं विदेशी जनता को भारत के एक पुरातन धर्म के प्रति आकृष्ट करने की दृष्टि से आज तक उपयुक्त साहित्य देशी भाषा–हिंदी, मराठी, गुजराती में लाने का निरन्तर प्रयत्न किया है। 'सुरसुन्दरी चरित्रं' उसी का एक भाग है। यह संसार की एक सर्वोत्तम कथा है–कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। मैंने इसका शब्दानुशब्द अनुवाद गुजराती एवं हिंदी में करने का अल्प प्रयास किया है। अनुवाद करते समय जान-बूझकर मैंने जरा-सी भी छूट लेने का प्रयत्न नहीं किया क्योंकि मेरी यह दृढ मान्यता रही कि यह कार्य कोई प्रकांड पंडित ही कर सकता है और मैं तो अभी इस क्षेत्र में नवोदित ही हूँ, अतः मेरा यह अधिकार नहीं।

सर्वप्रथम बंबई के उपनगर पार्ला के चातुर्मास के दरमियान मैंने इसका अनुवाद-कार्य शुरू किया और कोई ढाई-तीन माह की अथक मेहनत के बाद इसे पूरा किया। इसके लिए मैं प्रतिदिन तीन घंटे तक नियमित रूप से काम करता था।

हिंदी पांडुलिपि तैयार करना और भाषा संशोधन का दायित्व मेरे पंडित श्री नरेशचंद्र झा ने बड़ी ही लगन और उत्साह के साथ संपन्न किया। ठीक वैसे ही प्रुफ संशोधन मेरे सहयोगी मुनिचंद्र विजय गणि, बालमुनि वस्थुलिभद्र विजय एवं शालिभद्र विजय ने सफलता के साथ किया। अतः मैं उनका आभारी हूँ।

इसके प्रकाशक की ज़िम्मेदारी जिसने उठाई है वह रंजनभाई परमार मेरे पुराने भक्त और हिंदी साहित्य के अच्छे ज्ञाता एवं मर्मज्ञ हैं। उन्होंने स्वेच्छया प्रकाशन का दायित्व उठाया अतः मैं उनका ऋणी हूँ।

अंत में वाचक वर्ग से अनुरोध है कि वे इस कथा को पढें, गुनें और जीवन में उतारें। इसमें जो खामियाँ और अच्छाइयाँ हैं, उनकी सूचना प्रकाशक को दें।

सुवर्ण अहीर धर्मशाला, पूना

संवत्सरी : २४८० —भानुचंद्रविजय गणि

—०—

सम्मति

कवि धनंजय विरचित सुर-सुन्दरी चरित्रम् नामक प्राकृतिक ग्रन्थ का हिंदी अनुवाद पढ़ा। पन्यास प्रवर मुनि भानुचंद्र विजयजी ने बहुत ही सुंदर और प्रासादिक शैली में जो अनुवाद किया है उसे पढ़ते समय ऐसा लगता है जैसे हम किसी शीतल वृक्ष की छाँह में बैठकर किसी अधिकारी एवम् विद्वान् व्यक्ति द्वारा कही जानेवाली उद्‌बोधक कहानी सुन रहे हैं। इस ग्रन्थ में जो कहानियाँ हैं उन्हें पढ़ने के बाद सद्‌सद्विवेक बुद्धि जागृत होती है और मनुष्य की आत्मनिरीक्षण की ओर प्रवृत्ति बढ़ती है। मैं अनुवाद पढ़ते समय स्वयम् इसका अनुभव कर चुका हूँ।

कहानी कहकर किसी कठिन-से-कठिन विषय को समझाने की प्रथा बहुत प्राचीन है। यह महान कला है। सामान्य जनों के लिए और उनके हृदय तक किसी बात को पहुँचाने के लिए कहानी-विधा बहुत ही सफल सिद्ध हुई है। पंचतंत्र की कथाओं ने इतना आकर्षण पैदा किया कि उसका अनुवाद अरब और यूरोप की भाषाओं में पहुँच गया और कई सदियों तक उसने अपना आकर्षण प्रस्थापित किया। भारत में कथा-साहित्य प्राचीन और विपुल है। संस्कृत और प्राकृत में संचित कथा-निधि देशी भाषाओं के माध्यम द्वारा आम जनता तक पहुँच पाएगी तो उससे बड़ा उपकार होगा और जनता को आचार की निर्मलता बढ़ाने के लिए आधार प्राप्त होगा। 'सुर-सुन्दरी चरित्रम्' यह सुविचार प्रसार का सत्कार्य करेगा इसमें सन्देह नहीं।

मुनिश्री भानुचंद्र विजयजी ने अनुवाद-कला और प्रतिभा द्वारा प्राकृत की निधि हमारे सामने रखी है। उसका सदुपयोग करना पाठकों का कर्तव्य होगा। यह ग्रन्थ सुरुचिपूर्ण है इसमें सन्देह नहीं।

—गो. प. नेने

प्रशासन मंत्री,

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे

ता. १०-१०-७०

प्रकाशकीय

भारतवर्ष में जैनों की संख्या अल्प-सी ही है, हालाँकि जैन धर्म, जैन साहित्य एवं जैन संस्कृति अति प्राचीन और पुरातन है। भारतवर्ष और भारतवर्ष से बाहर अन्य राष्ट्रों में भी जैनी फैले हुए हैं। वे विविध क्षेत्रों में कार्य करते हैं। फिर भी जन-मानस में जैनों के सम्बंध में विविध एवं विभिन्न भ्रांतियाँ व्याप्त हैं–जिसके कारण उसे चाहिए उतना न्याय आज के युग में मिला नहीं है। इसके मूल में कई कारण हैं : जैन-समाज व्यवसायी होने के कारण प्रचार-प्रसार प्रणाली के प्रति उदासीनता, जैन साहित्य का अर्ध-मागधी और गुजराती भाषा में लेखन-पठन एवं राजाश्रय का न होना।

जैन धर्म युगादि से चला आ रहा है। उसकी संस्कृति अत्यंत प्राचीन है। जैन-साहित्य में हर क्षेत्र से सम्बंधित साधन-सामग्री मिलती है। जैनियों की अपनी भौगोलिक, खगोल, वैज्ञानिक, साहित्यिक मान्यताएँ और व्याख्याएँ हैं। लेकिन आजतक वे सब जैन शास्त्रों तक ही सीमित रहीं, अर्धमागधी एव गुजराती सदृश भाषा में होने में आम वर्ग से दूर रही, मुद्रित न होने से प्रचार-प्रसार के क्षेत्र से बाहर रहीं; ठीक वैसे समाज तथा श्रमण समाज के पुरातनवादी दृष्टिकोण से सदा-सर्वदा उपेक्षित बनी रही। यही वे तथ्य हैं जिनके कारण जैन समाज अत्यंत धनाढ्य और राष्ट्र के राजनैतिक, सामाजिक, नैतिक, क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हुए भी जैन धर्म, साहित्य और संस्कृति का पर्याप्त मात्रा में प्रचार-प्रसार नहीं हो सका है।

हाँ, पिछले कुछ वर्षों से जैन श्रमण समाज और समाज में नए विचारों की हवा बहने लगी है। फलतः जैन साहित्य मुद्रित होने लगा है, अन्य भाषाओं में अनुवादित हो आम जनता तक पहुँचने लगा है। 'सुरसुंदरी चरित्र' भी उसी का एक भाग है। इसके मूल लेखक कवि धनेश्वर हैं। दीर्घावधि तक यह कथा अप्रकाशित रही, तब कहीं प्रथम बार ४२ वर्ष पूर्व मुनि श्री राजविजयजी

के प्रयास से मुद्रित हुई और अब पन्यास प्रवरश्री भानुचंद्रविजय जी की अथक मेहनत, लगन, कर्तव्यदक्षत एवं दीर्घदृष्टि वृत्ति के कारण हिंदी भाषा में बन-सँवरकर जनता-जनार्दना के समक्ष रखने का सुअवसर मुझे मिला है ।

रूपांतरकार आदरणीय श्री भानुचंद्रविजयजी का जन्म अहमदाबाद में सन् १९२१ में हुआ । लेकिन आपका उद्योग-क्षेत्र प्रायः बम्बई रहा । वहाँ आपने विविध व्यवसाय किए । पिता श्री केशवलाल और माता जेठीबेन आपको जन्म देकर कृतार्थ हुए । विविध व्यवसायों में रत होने पर भी महाराजजी का मन हमेशा धार्मिकता की ओर ही लगा रहता था । फलस्वरूप सन् १९४९ में घर का परित्याग कर अहमदाबाद में आचार्य श्री विज्ञानसूरीश्वरजी के शुभ हाथों दीक्षा ग्रहण की ।

आचार्यदेव श्री कस्तुरसूरी महाराज के पास रहकर उन्होंने धार्मिक अध्ययन किया । वे उनके दादागुरु रहे और पन्यास चन्द्रोदय विजयजी महाराज गुरु !

भानुचन्द्रविजयजी ने सन् १९५४ से लेखन-कार्य प्रारम्भ किया । उनकी पहली कृति नर्मदासुंदरी थी, जो गुजराती भाषा में है । इसके बाद अनन्तर अविरत रूप से साहित्य-सेवा करते रहे और उसी का फल है कि अब तक उनकी २१ कृतियाँ गुजराती, मराठी, हिन्दी और प्राकृत भाषाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं ।

सन् १९६७ में उन्हें लोणावळा में गणिपद प्रदान किया गया । उसी वर्ष तलेगाँव में उन्होंने पन्यासपद से भी विभूषित किया गया । इससे पूर्व सन् १९५७ में उन्हें पूना में ज्योतिष बिशारद की उपाधि प्रदान की गई थी ।

उनका यात्रा-क्षेत्र है महाराष्ट्र, गुजरात, सौराष्ट्र और कोकण । इन प्रदेशों में उन्होंने ८००० किलोमीटर से अधिक भ्रमण किया है । उनके शिष्य-परिवार में कुमारश्रमण स्थूलिभद्र और शालिभद्र जैसे शिष्योत्तमों का समावेश है ।

महाराजजी ने ११ मंदिरों की स्थापना, १४ की प्रतिष्ठा, २ अंजन-शलाका, ७ उपाश्रय, ४ उजमणा और ६ उपधानों का कार्य किया है। उन्होंने २–३ शिक्षात्मक प्रवृत्तियों में दान भी दिलवाया है। उन्होंने अस्पताल बनवाने में भी योगदान दिया है। इस तरह कई प्रकार की प्रवृत्ति एवं कार्य-कलापों के बीच पन्यास श्री अविरत रूप से जैन समाज, जैन धर्म एवं जैन संस्कृति की सेवा में रत है।

'सुरसुंदरीचरित्रं' की भूमिका लिखने का महत्त्वपूर्ण दायित्व महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा के प्रशासन मंत्री एवं हिंदी के ज्येष्ठ-श्रेष्ठ प्रचारक श्री गो. प. नेनेजी ने निभाया, अतः मैं उनका अत्यंत आभारी हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक के संयोजन, मुद्रण, संशोधन की पूरी ज़िम्मेदारी श्री मु. मा. जगताप ने अत्यंत कुशलतापूर्वक निभाई, अतः मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

विनीत

रंजन परमार

सुरसुंदरीचरित्रं

प्रथम-परिच्छेद

शुभ भागवती दीक्षा स्वीकार करने की प्रतिज्ञा के समय केशलुंचन आरंभ करनेवाले जिनके कानों के समीप देवेन्द्र की प्रार्थना पर रक्खा हुआ अत्यंत कुटिल केशकलाप अंतःकरण में प्रवेश न पा सकने के कारण बाहर ही ठहरने की अभ्यर्थना करनेवाला मानो कामदेव का दूत न हो इस प्रकार शोभता है, सुगठित दोनों कंधों पर लटकते हुए केशकलाप से जिनकी सुनहली मूर्ति ऊपर काजल युक्त दीपशिखा की तरह शोभती है, जिनको प्रणाम करने से विपुल विघ्नों का समूह नष्ट हो जाता है, उन ऋषभ देव भगवान के चरण कमल को सब से पहले प्रयत्नपूर्वक नमस्कार करता हूँ। जिनके जन्म के समय में एकसाथ अमरेंद्र पांच रूपों को प्राप्त होते हैं और रागादि शत्रु (पंचत्व) मरण को प्राप्त होते हैं उन अजितनाथादि तीर्थङ्करों को मैं वंदना करता हूँ।

जन्म समय के बाद सुमेरु पर्वत के शिखर पर अभिषेक के समय इन्द्र के मन में उत्पन्न कुविकल्प को दूर करने में प्रयत्नशील जिनके अनन्य सामर्थ्य को देखकर रागादि शत्रुओं की सेना की तरह पर्वत समुद्र सहित पृथ्वी अत्यंत कम्पित हुई, नमस्कार करने के समय तीनों लोक के प्रतिबिम्बित होने पर जिनका निर्मल

चरणनख समुदाय अभिमान में आकर केवल ज्ञान की स्पर्धा करता है, जिनके प्रणाम मात्र से निर्मल चरणनख में प्रतिबिम्ब पड़ने से अपने को ग्यारह गुण देखकर देवगण प्रसन्न होते हैं, देवेंद्र नरेंद्र वृंदों से वंदित, मोक्षगति को प्राप्त सिद्धार्थ नरेंद्र पुत्र जिन-चंद्र उन चरम तीर्थङ्कर भगवान महावीर की मैं वंदना करता हूँ,

दुर्जय कामदेवरूपी हाथियों का विदारण करने में श्रेष्ठ सिंह के समान शाश्वत शिव सुखों से युक्त सिद्धों को मैं मस्तक से नमस्कार करता हूँ, घने अज्ञान-रूप अंधकार को नष्ट करने में धीर सिद्धांतों की देशना देने में कुशल पंचविध आचार पालन में तत्पर आचार्यों को मैं मस्तक से वंदना करता हूँ, विषयसुख वासनारहित संसार के उच्छेद में लीन, सूत्रार्थ विशारद उपाध्यायों को मैं सतत नमस्कार करता हूँ, पंचमहाव्रतरूप दुर्वह पर्वत को उठाने में समर्थ गृहवासरूप जाल से मुक्त सकल साधुओं को मैं मस्तक झुकाकर नमन करता हूँ, जिसके चरणकमल को प्राप्त कर अज्ञानी जीव भी परम ज्ञान को प्राप्त होते हैं उस सरस्वती देवी को मैं प्रणाम करता हूँ, जिनकी कृपा से मेरे जैसा जड़बुद्धि मनुष्य भी अनायास कथा करने में प्रवृत्त हो जाता है उन गुरु-देवों की मैं विशेष रूप से वंदना करता हूँ।

इस प्रकार पूज्यों का प्रणाम कर लेने से सम्पूर्ण विघ्न समुदाय नष्ट हो जाने पर अब मैं संवेगकारिणी "सुरसुंदरी-चरित" नामक कथा कहूँगा, उसके पहले दुर्जनों की प्रार्थना कर लेता हूँ क्यों कि बिल्ली से चूहे की तरह कविगण उनसे डरते हैं, अथवा दुर्जन तो स्वभावतः दोष को ही पकड़ते हैं, प्रार्थना से भी उनकी दुर्जनता जा नहीं सकती। चंद्र जिस प्रकार रात्रि के संसर्ग

से प्रकाशित होता है उसी प्रकार दुर्जन दोष देने में ही आनंद का अनुभव करता है, काव्य चाहे कितना ही सुंदर क्यों न हो किंतु दुर्जन तो उसके दोषों का ही ग्रहण करता है, ऊँट के मुंह से जीरा कदापि नहीं निकलता, खूब तपे हुए लोहे के पात्र में पड़ा जलबिंदु जिस प्रकार अपने अस्तित्व को नष्ट कर देता है उसी प्रकार दुर्जन सभा में पड़ा हुआ सुंदर काव्य प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं होता है, शक्कर के रस से सींचने पर भी जिस प्रकार नीमवृक्ष अपने कड़वेपन को नहीं छोड़ता है उसी प्रकार दुर्जन के प्रति की गई कवियों की प्रार्थना विफल है, अथवा दुर्जन के भय से कथा-रचना छोड़ देना उचित नहीं जुओं के भय से क्या वस्त्र छोड़ देना उचित हैं ? दुर्जनों के प्रतिकूल रहनें पर भी कवियों द्वारा काव्य बनाना क्या अनुचित है ? उल्लुओं को रुचिकर नहीं होने पर भी क्या सूर्य नहीं उगता है ? जिस प्रकार चंद्रमा स्वभाव से ही सारे जगत को धवलित करता है उसी प्रकार सज्जन विना प्रार्थना के ही कवियों के काव्य में गुणों को प्रकाशित करता है, अतःसज्जन प्रशंसा ही उचित है, मेरे द्वारा कहीं जाती हुई कथा को सज्जन अवश्य ध्यान से सुनें --

लाख योनियों से युक्त अनारपार घोर संसार में मनुष्यत्व को प्राप्त कर भाविक जीवों को जिनेंद्र द्वारा कथित शुद्ध धर्म में उधम करना चाहिए, आभ्यंतर शत्रु राग द्वेष पर विजय प्राप्त करना ही शुद्ध धर्म है, उन पर विजय प्राप्त करने से ही सुख मिलता हैं, उनसे जीते जानेवाले को दुःख ही प्राप्त होता है, राग-द्वेष विजय का संधान करनेवाली १६ परिच्छेदों से युक्त सुरसुंदरी-चरित नामक कथा प्राकृत गाथाओं से कही जाती है, अबुध बोधन

तथा विद्वानों का मनोरंजन ये दो काम कवियों द्वारा एक साथ नहीं किए जा सकते हैं, दोनों पक्षों का रंजन करना संभव नहीं हैं, किसी एक पक्ष के अनुकूल की गई रचना से दूसरा पक्ष अप्रसन्न हो जाएगा, आलङ्कारिक संस्कृत भाषा में बनाया गया काव्य विद्वानों को प्रसन्न करता है, प्राकृत ललित काव्य सामान्य जन को प्रसन्न करता है, गुरुकृपा से मैं उपमा श्लेष रूपक आदि अलङ्कारमय संस्कृत काव्य भी बना सकता हूँ किंतु सामान्य जन बोधन के लिए प्राकृत भाषा में ही इस ग्रंथ की रचना करता हूँ।

शिष्याओं में प्रधान, अवश्य मानने लायक वचनवाली गुरु बहन प्रवर्तिनी श्री. कल्याण मती के वचन से मैंने यह कथा आरंभ की है, कवित्व के अभिमान से नहीं, विधवा कुल बालिका के कटाक्ष विक्षेप के समान निष्फल विघ्नों को शांत करने के लिए अब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है, इसलिए सावधान होकर मेरे द्वारा कही जाती हुई कथा को सुनें, इसके प्रत्येक परिच्छेद में अढ़ाई सौ गाथाएँ हैं--

ऊर्ध्व लोक और अधोलोक के मध्य में अत्यंत विस्तार-वाला एक तिर्यग्लोक है, जिस प्रकार सुमेरु पर्वत देवताओं से सेवित है, उसी प्रकार यह भी विद्वानों से सेवित है उस लोक में एक लाख योजन विस्तारवाला, चारों तरफ समुद्रों से घिरा हुआ सुप्रसिद्ध जम्बूद्वीप नाम का एक द्वीप है, उसके दक्षिण भाग में सुंदर भरत क्षेत्र है, जो वैताढय पर्वत द्वारा दो भागों में विभक्त है, उस दक्षिणार्द्ध भरत में गंगा और सिंधु के मध्य भाग में वृक्षों में कल्पवृक्ष की तरह सब देशों में प्रधान, धनसंपत्तियों से युक्त, जहाँ की साधारण जनता भी नृत्य गीतादि कलाओं में कुशल है, हाथी, ऊँट, भैंस, गर्दभ और गाय-बैल आदि पशुओं से जो भरा

हैं, प्रतिदिन बहती हुई नालियों के प्रभाव से जहाँ के उद्यान अत्यंत रमणीय हैं, पुर नगर तथा गाँवों से जो भरा है, जहाँ के लोग अत्यंत समृद्धिशाली हैं अनेक उत्सवों को मनाते हुए जहाँ का जन-समुदाय अत्यंत प्रसन्न है, भय, उपद्रव आदि से रहित अत्यंत सुंदर कुरु नाम का देश है। जहाँ के मार्ग सार्थवाहों की बस्तियों से पूरित रहते थे, गुणों के भवन रूप उस देश में एक बड़े आश्चर्य की बात थी कि वहाँ के लोग श्रोत्र (कान) रहित होने पर भी अपनी प्रशंसा को सुनते थे अर्थात् वहाँ के लोग शोक रहित थे, जहाँ के वृद्ध लोग अथवा श्रीमंत लोग कर (हाथ-टैक्स) रहित और जहाँ के मुनिजन धर्म (धनुष-पुण्य) रहित हैं उस देश का वर्णन करने में उद्यम कौन करेगा ?

उस देश में शत्रुओं से अलंघनीय घूमते हुए मकरोंवाली समुद्रसमान परिखा (खाई) से वेष्टित, शत्रुओं को भय देनेवाले विशाल प्राकार से रम्य, सुंदर मगर तोरण से अंकित नगर द्वारों से युक्त, आस-पास के अत्यंत हरे-भरे उद्यानों से सुशोभित, प्रांगण झरोखेवाले बर्फ के समान स्वच्छ, नगरवासी लोगों के यशस्तूप समान बड़े-बड़े प्रासादों से अत्यंत रम्य हस्तिनापुर नाम का एक नगर है, अन्य देशों से आए हुए व्यापारियों के साथ व्यापार करने में वहाँ के व्यापार बड़े कुशल हैं, उस नगर में व्यापार करने लायक अनेकों प्रकार बहुमूल्य किरानों से भरे सैकड़ों बाज़ार हैं, वह नगर ऊँची स्वच्छ ध्वजाओं से सुशोभित मंदिरों से अत्यंत रमणीय हैं, वह नगर सफेद कमल के समुदाय से सुशोभित अनेक विशाल सरोवरों से तथा सीढ़ियों द्वारा सरलता से उतरने योग्य हज़ारों बावड़ियों से युक्त है, श्रेष्ठ तीन-चार तरफ जाने-वाले मार्गों से तथा चौक आदि से वह नगर अत्यंत रमणीय है,

बगीचे, उद्यान, कूप आदि से सुंदर होने से वह नगर देवताओं का भी मन को हरनेवाला है, नगर के समस्त गुणों से युक्त होने से वह अमरावती समान है।

जहाँ के लोग बड़े प्रियंवद धार्मिक तथा त्यागी और कलाकुशल हैं, सतत अपने-अपने काम से घूमनेवाले लोगों से जहाँ की मार्गश्रेणियों अत्यंत भरी है; करोड़ों पताकाओं से आकाश-मार्ग आच्छादित होने से गर्मी के दिनों में भी जहाँ सूर्य की किरणों से लोग संतप्त नहीं होते हैं, जिस नगर में महलों की दीवालों पर खचित रत्नों की प्रभा से अंधकार नहीं होने से लोगों को पता नहीं चलता है कि रात कब बीत गई, जिस नगर की सुंदरता को कौतुकवश टकटकी लगाकर देखने से देवगण निर्निमेष बन गए, श्वेत महलों के शिखरों पर पवन से कंपित ध्वजाएँ मानो सूर्य के सारथी को और ऊँचे जाने की प्रेरणा देती हो, गुणों के भंडाररूप उस नगर में एक ही दोष है कि निर्दोष साधुवर्ग सतत गुप्ति-से गुप्तता में बंद दिखाई देते हैं।

उस नगर में विपुल हाथी घोड़े रत्नों का स्वामी यथोचित राजनीति का पालन करने से सब के मन को आनंद देनेवाला, अपने बुद्धिबल से समस्त शत्रुओं को वश में करनेंवाला, याचकों की अभिलाषाओं को पूर्ण करनेवाला, दृढ़ कठोर भुजाओं के अतुल पराक्रम से शत्रुपक्ष को पराजित करनेवाला, शत्रु स्त्रियों के वदन कमल को संकुचित करने में चंद्रमा के समान सूर्य के समान प्रखर प्रतापी, सिंह के समान दूसरों के बल में निशंक, समुद्रसमान गंभीर, चंद्रमा के समान लोगों के मन को आनंदित करनेवाला, रूप से साक्षात् कामदेव के समान बुद्धि से बृहस्पति

के समान अमरकेतु नाम का राजा राज्य करता है, त्रिवर्गसार राज्यश्री का सम्यक् प्रकार से अनुभव करते हुए उस राजा के दिन स्वर्ग में इंद्र की तरह आनंदपूर्वक बीतते हैं।

इसके बाद किसी समय राजसभा में बैठे हुए राजा के पास आकर बंधुल नाम का द्वारपाल विनय से मस्तक झुकाकर इस प्रकार बोलता है कि देव ? कुशाग्रपुर से चित्रकला में अत्यंत कुशल चित्रसेन नाम का एक चित्रकार आया है, आपके पवित्र चरण-कमल का दर्शनाभिलाषी है, वह राजसभा में आना चाहना है, ऐसी स्थिति में आपका आदेश ही प्रमाण है, राजा के आदेश से उसने सभा में प्रवेश किया और राजा को अभिवादन कर के उचित स्थान पर बैठ गया। राजा ने पूछा, भद्र ? तुम कौन हो ? और किस प्रयोजन से यहाँ आए हो ? उसने कहा, 'राजन ? मैं कुशाग्रपुर से आया हूँ, चित्रकला अच्छा जानता हूँ, लोगों से सुना कि आप चित्र के बड़े प्रेमी हैं, अतः अपनी चित्रकला को बताने के लिए आपके पास आया हूँ,' राजा ने उससे अपना श्रेष्ठ चित्र दिखलाने को कहा, उसने बगल में छिपाए चित्रपट राजा को समर्पित कर दिया, राजा उस चित्रपट में लिखे अनेक वर्णों से शोभायमान, प्रमाणोपेत रेखाओं से विशुद्ध वनयौवना एक कन्या के रूप को देखता है, देखते ही रोमांचित हो जाता है, सोचता है कि तीन लोक में ऐसी सुंदर स्त्री हो नहीं सकती है, इसने अपनी चित्रकला की निपुणता बताने के लिए ऐसा सुंदर चित्र बनाया है, यदि कहीं भी ऐसे सुंदर स्वरूपवाली कन्या हो तो उसके साथ सम्बंध करने में ही मेरे राज्य की सफलता है, इस प्रकार चिन्तन करता हुआ वह कामदेव के बाण का

शिकार बन गया और अव्यस्थित चित्त होकर अपने को भूल गया, इसके बाद एक क्षण में आँखें बंद हो गई और मूर्च्छित होकर राजा सिंहासन से गिर पड़ा, हाहाकार करते हुए सब खड़े हो गए, पंखे से हवा करने लगे और शीतल जल से सींचने लगे, राजा के मुँह में कर्पूर देते हैं, अंगों का मर्दन करते हैं, यह देखकर चित्र-सेन अत्यंत प्रसन्न हो जाता है, अरे ? अरे ? यह पापी की न है जो साक्षात काल के रूप में आया है, कामन कर के हमारे स्वामी को मोहित कर लिया है, मारो, पकड़ो यह कहते हुए अंगरक्षकों ने उसे पकड़ लिया, तब चित्रकार ने कहा कि भद्रपुरुष ? मैं दुष्ट नहीं हूँ, आप व्यर्थ मेरी दुर्दशा क्यों करते हैं ? अंगरक्षकों ने कहा कि यदि तू दुष्ट नहीं है तो कामन किया चित्र तूने राजा को क्यों बताया ? उनके मूर्च्छित होने पर तू प्रसन्न वदन क्यों हो गया, इनका वध करने के लिए तुझ पापी को यहाँ किसने भेजा ? उसने कहा कि मैं राजा के अभ्युदय के लिए आया हूँ, फिर भी राज पुरुषों ने उसे बाँध लिया, इतने में राजा की मूर्च्छा टूट गई और वह स्वस्थ हो गया, फिर राजा ने चित्रकार को छोड़ देने के लिए कहा, जब चित्रसेन को बंधन मुक्त कर दिया गया तब राजा ने कहा कि भद्र ? बैठो और सच-सच बताओ कि तुम को यहाँ किसने भेजा ? तब चित्रसेन ने, कहा, राजन् ? मैं चित्रकार वेश में जिस कारण से यहाँ आया हूँ उसका रहस्य आप सुनिए--

कुशाग्रपुर नाम का एक नगर है जो नगर के गुणों से युक्त है, और धन-धान्य समृद्ध मानवों से परिपूर्ण है, याचकजनों की आशा को पूर्ण करनेवाला धनवाहन नाम का एक राजा है, वसंत-सेना उनकी प्राणप्रिया रानी है, उनके नरवाहन नाम का परम

प्रतापी पुत्र और अत्यंत रूपवती कमलावती नाम की पुत्री है, एक समय राजा ने अपने पुत्र नरवाहन को अपना राज्य देकर इस प्रकार कहा कि अपनी बहन कमलावती को किसी योग्य वर के साथ विवाह कर देना। पुत्र को ऐसा कहकर संवेगी राजा ने सद्गुरु के पास संसार का विनाश करनेवाली भागवती दीक्षा विधिपूर्वक ले ली, नरवाहन राजा अपने शत्रुओं को वश में करके अच्छी तरह राज्य का पालन करता है, कमलावती भी कन्यान्तःपुर में सुखपूर्वक रह रही है।

उसी नगर में सागर नाम का एक वणिक रहता है, वह राजा का बालसखा है और जिनवचन में अत्यंत अनुरक्त है, उसके अत्यंत प्रिय शीलसंपन्ना श्रीमती नाम की भार्या श्रीदत्त नाम का पुत्र और श्रीकान्ता नाम की पुत्री है, श्रीकांता प्रति दिन कमलावती के पास आती है, उन दोनों में अत्यंत प्रेम हो गया। सर्व कलाओं में कुशल सुमित्रसेन नामक आचार्य के पास स्त्रीजनोचित सकल कलाएँ बचपन में ही उन्हें सिखाई गईं। राजपुत्री के साथ चित्रादि अनेक प्रकार की क्रीड़ा करती हुई श्रीकांता विकाल समय में अपने घर आने लगी, इस प्रकार बहुत समय बीतने पर दोनों कन्याएँ देवताओं के लिए भी वाँछनीय प्रथम यौवन को प्राप्त हुईं, एक समय राजा मंत्री मति सागर और सागर श्रेष्ठी के साथ सभामण्डप में बैठा था। इतने में अलंकारों से अलंकृत अपनी सहेलियों के साथ कंदुक क्रीड़ा करती हुई कमलावती वहाँ पहुँच गई। राजा ने प्रेम से बहन को अपनी गोद में बैठाया और उसके सौंदर्य तथा बढ़ते यौवन को देखकर मंत्री मतिसागर से कहा कि दीक्षा लेते समय पिताजी ने कहा था कि अपनी बहन कमलावती को योग्य

स्थान में देना, इसलिए बताओ कि सुंदर अच्छे कुल में उत्पन्न कौन पुरुष इसके योग्य है ? मतिसागर ने कहा, देव ? आप ी इस विषय में उचित जानते हैं तब राजा ने कहा कि मेरे विचार से तो स्वयंवर किया जाए, सभी राजाओं को आमंत्रित किया जाए जिससे यह अपने मनोऽनुकूलवर को वरे, मतिसागर ने कहा, जैसी आज्ञा, किंतु अभी स्वयंवर करना मुझे तो उचित नहीं लगता है, जब सब राजा लोग एक राजा के वश में हों तो स्वयंवर करना ठीक है क्यों कि किसी एक राजा को वरण किए जाने पर शेष राजाओं को वह रोकता है, अभी तो सभी राजा अहमिंद्र अर्थात् निरंकुश हैं, अतः एक को वरने पर सभी उसके शत्रु हो जाएँगे अत: राजन् ? स्वयंवर अनर्थ का कारण है, तब राजा ने कहा कि कमलावती किस को दी जाए ? जिस किसी राजा को दे देना तो ठीक नहीं है, उसीको कमलावती देना चाहता हूँ जिसको देने से यह सुखी रहे, इस प्रकार मंत्री के साथ राजा की बात चल रही थी इतने में द्वारपाल प्रणाम करते हुए कहता है, देव ? अष्टांग निमित्त जाननेवाला भूत भविष्य को बतलानेवाला सुमति नाम का ज्यौतिषी आपका दर्शन करने के लिए आया है, द्वार पर खड़ा है, राजा ने उसे शीघ्र ले आने के लिए कहा इसके बाद निर्मल श्वेत वस्त्रों से सु-सज्जित गोरोचना तिलक लगाए वह ज्यौतिषी राजा के सामने आया और आशीर्वाद देते हुए दूर्वा-अक्षत आदि से राजा का मंगल करके उचित आसन पर बैठ गया, राजा ने विश्वास के लिए भूतकालिक घटनाओं के विषय में पूछा, उसने प्रत्यक्ष की तरह सब बातें बतलाईं, तब प्रसन्न होकर राजा ने कहा, हे सुमति ? मेरी बहन कमलावती का मनवल्लभपति कौन होगा ? उसने निमित्त देखकर इस प्रकार कहा राजन् ।

चित्र में लिखित इसके रूप को देखकर जो मूर्च्छित हो जाएगा वही राजा इसका वर होगा, वह सकल अंतःपुर में महादेवी होगी, आप इसमें थोड़ा भी संदेह न करें, इतने में सागर श्रेष्ठी ने भी पूछा कि मेरी लड़की श्रीकांता का पति कौन होगा ? तब सुमति ने कहा कि काले सर्प से डॅसी जाने पर जो इसको उज्जीवित करेगा वही इसका पति होगा, इस प्रकार पूछकर उचित सत्कार करके राजा ने उसे विदा कर दिया, तब मंत्री ने कहा, राजन् ? यह बहुत अच्छा हुआ अब नैमित्तिक के कथनानुसार उद्यम करना चाहिए। राजा ने पूछा, यहाँ अच्छे से अच्छा चित्र कौन बना सकता है ? मतिसागर ने कहा कि इस नगर में सुप्रसिद्ध कमलावती के गुरु सुमित्रसेन का पुत्र चित्रसेन चित्रकला में अत्यंत कुशल है, राजा ने मुझे बुलाया और बहुमानपूर्वक मुझ से कहा कि कमलावती के रूप को चित्रपट पर लिखो, जैसी आपकी आज्ञा यह कहकर मैंने सुंदर वर्णों से इस चित्र को लिखकर राजा को दिखलाया, राजा इस सुंदर चित्र को देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए और उसने मेरी बड़ी प्रशंसा की। फिर राजा ने मुझे आदेश दिया कि तुम चित्रकार के वेश में इस चित्र को लेकर सब राजाओं को दिखाओ, चित्र को देखकर जो राजा मूर्च्छित हो जाए उसका नाम शीघ्र मुझे आकर कहो ताकि खूब धूमधाम के साथ उसके साथ कमलावती का विवाह करूँ, राजा के द्वारा ऐसा कहे जाने पर उनके चरणकमल को प्रणाम करके कुछ परिजन के साथ कुशाग्रपुर से निकला, सुग्रीव कीर्तिवर्धन आदि राजाओं को यह चित्र बताया लेकिन मेरा मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ, आज मैं यहाँ आया और इस चित्रपट को देखकर आपको मूर्च्छा आई है, हे नरनाथ ? "आज मेरे स्वामी का मनोरथ सिद्ध हुआ" यह सोचकर तथा

सुमति ज्यौतिषी के वचन के याद कर मुझे अत्यंत हर्ष हुआ इसके अलावा आप मेरे संबंध में और कुछ विकल्प न करें, चित्रसेन की बात सुनकर राजा की शंकाएँ छिन्नभिन्न हो गईं, चित्र के रूप से विस्मित होते हुए राजा ने कहा कि क्या उस कन्या का सचमुच ही ऐसा सौभाग्यपूर्ण रूप है? चित्रसेन ने कहा कि इस चित्र में तो केवल रूप का थोड़ा-सा दिग्दर्शन कराया गया है, उस कन्या के यथास्थित रूप को कौन चित्रित कर सकता है? उस कन्या ने तो देवांगनाओं के रूप को भी जीत लिया है, उसके वचन सुनकर प्रसन्न होकर राजा ने अपने शरीर से निकाल-कर आभूषण वस्त्रादि उसको दिए, राजा से आज्ञा लेकर वहाँ से चलकर कुशाग्रपुर पहुँचकर चित्रसेन ने नरवाहन राजा से सारी घटना कह सुनाई, राजा ने अपनी बहन कमलावती को पर्याप्त धन, दासी-दास आदि देकर अमर केतु राजा को स्वयं वरने के लिए विदा कर दिया। कमलावती कुमारी भी श्रीकांता आदि सखियों के साथ तथा सकल पारिवारिक लोगों के साथ मिलजुलकर हर्ष शोकाकुल होकर चली, हस्तिनापुर पहुँचने पर क्षत्रिय कुल की विधि के अनुसार बड़े उत्साह के साथ शुभलग्न में राजा ने कमला-वती के साथ विवाह किया, कमलावती इंद्र की इंद्राणी की तरह राजा की प्राणप्रिया महादेवी बनीं, उसके साथ विषय सुख का अनुभव करते हुए तथा नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करते हुए राजा के दिन स्वर्ग में इंद्र की तरह उस नगरी में आनंदपूर्वक बीतने लगे।

उसी हस्तिनापुर नगर में नागरिकों में श्रेष्ठ सब शास्त्रों में कुशल राजा का इष्ट धन धर्म नाम का एक सेठ रहता था, वह याचकों को अभिलाषित वस्तुओं को देने में दानवीर था, और

पिता पितामह प्रपितामह द्वारा उपार्जित लक्ष्मी का स्वामी था, वह जैन दर्शन जैनागम में विचक्षण, मोक्ष मार्ग परायण जिनेंद्रदेव तथा साधुओं की सेवा में लीन तथा अत्यंत साधार्मिक वत्सल था। अपने रूप से देवांगनाओं को भी तिरस्कृत करनेवाली पतिव्रता गृहकार्यकुशल प्राणप्रिया मनोरमा नाम की उसकी भार्या थी, त्रिवर्गसार विषय सुख का अनुभव करते हुए उनके कुल का अलंकार रूप एक पुत्र उत्पन्न हुआ, बारह दिन बीतने पर कुलाचार के अनुसार माता-पिता ने उसका नाम धनदेव रक्खा। पाँच धाइयों के द्वारा लालन पालन-किया जाता हुआ वह बालक बढ़ने लगा, माता-पिता को आनंद देनेवाला वह कुमारभाव को प्राप्त हुआ, आठ वर्ष से कुछ अधिक का होने पर माता-पिता ने सभी विद्याओं में प्रवीण कलाओं को जाननेवाले उपाध्याय को वह बालक समर्पित किया। थोड़े ही समय में उस बालक धनदेव सब विद्याएँ सीख लीं, और सभी कलाओं में वह कुशल बन गया। धनदेव को घर लाया गया और उपाध्याय का वस्त्र आदि से उसके पिता ने खूब सत्कार किया, क्रमशः बढ़ता हुआ वह यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ और कामदेव से भी अधिक सुंदर वह युवतियों को अत्यंत प्रिय लगने लगा, वह किसी समय समान यौवन रूपवाले मित्रों के साथ लीला करता हुआ स्वेच्छा से इधर उधर घूमता हुआ नगर के बाहर एक उद्यान में आया। वहाँ उसने बावड़ी के तट पर शोक से खिन्न आँसू बहाते हुए एक पुरुष को देखा, उसको देखकर धनदेव को बड़ी दया आई उसके पास जाकर उसने मधुर वचन से कहा, भद्र ! आप कौन हैं ? कहाँ से आए हैं ? और आपके इस शोक का कारण क्या है ? उसने कहा कि जो दुःख का प्रतिकार नहीं कर सकता उससे

अपना दुःख कहने से क्या लाभ ? तथापि सुंदर ? आपका वचन निष्फल न जाए इस से कहता हूँ, आप सुनें सिंहगुफा नाम की एक पल्ली है, 'सुप्रतिष्ठ' उसके स्वामी है– उनकी भार्या का नाम लक्ष्मी है, लोगों के चित्त को आनंदित करनेवाला "जयसेन" नाम का उनका एक पुत्र है, मैं उस बालक का संरक्षक हूँ, मेरा नाम देवशर्मा है, अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं से मैं उस बालक को खेलाता था, एक दिन बालक को लेकर मैं बाहर निकला । योगि-वेश में रहे दो पुरुषों ने मुझे देखा, देखते ही मीठी-मीठी बातें करके उन्होंने मुझे एक पान दिया, पान खाते मेरी बुद्धि मारी गई । उसके बाद कुमार के साथ मैं उनके पीछे-पीछे चलने लगा, मुझे कुछ ज्ञान ही नहीं रहा, कुछ दूर जाने पर जब मुझे प्यास लगी तो एक लता मण्डप में गया, वहाँ अनेक प्रकार के वृक्षों के फल-फूलों से कलुषित पानी पिया और उस जल के प्रभाव से स्वस्थ होकर सोचने लगा कि रात में कुमार को लेकर मैं भाग जाऊँगा यह सोचकर उनसे अलक्षित ही रहकर मैं उनके साथ चला, रात में उन पापियों को आपस में बात करते सुना कि इस बालक से यक्षिणी सिद्ध हो जाएगी, तुंगिक नामक पर्वत पर जाकर इस बालक का होम करके यक्षिणी की साधना संपूर्ण होने पर हम निधि को प्राप्त करेंगे, उनकी बात सुनकर मैं भयभीत हो गया और उनके सो जाने पर जयसेन को लेकर मैं वहाँ से भागा, ढूंढते-ढूंढते उन्होंने भागते हुए मुझे पकड़ लिया, फिर मुझको बाँधकर बैल पर चढ़ा-कर यहाँ ले आए । आज मैं सात दिन से यहाँ हूँ, मुझ भूखे प्यासे को उन्होंने इस उद्यान में छोड़ दिया है भद्र ? यही मेरे शोक का कारण है, तब धनदेव ने पूछा कि वे कहाँ हैं ? देवशर्म्मा ने कहा, एक तो कुमार को लेकर उस बटवृक्ष के नीचे बैठा है और दूसरा

अभी-अभी शराब लेने के लिए नगर में गया है, सुनते ही धनदेव ने वहाँ जाकर उससे कहा भद्र? आपको मैं लाख सुवर्ण मुद्राएँ देता हूँ, आप यह बालक मुझे दे दें, उसने कहा कि जब तक दूसरा योगी नहीं आता है उसके पहले ही आप दे दीजिए, मैं बालक दे देता हूँ, धनदेव ने एक लाख सोना मोहर मूल्यवाली अपनी अंगूठी देकर उस बालक को छुड़ा लिया। योगी वहाँ से भाग निकला, जयसेन को लेकर धनदेव देवशर्म्मा के पास आया, बालक समर्पित करने पर देवशर्म्मा प्रसन्न होकर कहने लगा कि आप ही मेरे स्वामी हैं, आप ही मेरे बंधु हैं, आप ही मेरे जीवन दायक हैं, जीवित कुमार को मुझे सौंपकर आपने मेरा क्या-क्या नहीं किया? दुष्ट योगियों के पास से कुमार को बचाकर आपने मेरे स्वामी को भी जीवन दान दिया है, उसके बाद धनदेव देवशर्मा को अपने घर ले आया, भोजन कराकर नौकरों के साथ उसको अपने स्थान पर भेज दिया, यह बात बिजली की तरह नगर में फैल गई कि धनदेव बड़ा त्यागी है। लाख-लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान करता है, धनदेव मित्रों के साथ जिधर जाता था उसको देखकर लोग अनेक प्रकार की बातें करते थे, कुछ ईर्ष्यालु और अपने त्याग से गर्विष्ठ लोग कहने लगें कि धनदेव तो अपने बापदादाओं के द्वारा अर्जित लक्ष्मी का विनाश कर रहा है, वही दान प्रशंसनीय है जो अपने पराक्रम से लक्ष्मी उपार्जन करके दिया जाए, बापदादाओं से अर्जित लक्ष्मी से दान करना तो स्वाभिमानियों के लिए कलंक है, कहा भी है कि बापदादाओं से उपार्जित लक्ष्मी का उपयोग कौन नहीं करता है? अपने पुरुषार्थ से कमाए हुए धन से विलास करनेवाले पुरुष को कोई विरला ही माता जन्म देती है, इस लोकापवाद को सुनकर धनदेव ने सोचा कि इनका कहना सत्य है, मुझे

ऐसा करना उचित नहीं है, अतः परदेश जाकर धन कमाकर अपनी इच्छा से दीन अनाथों को दान दूँ यही अच्छा होगा। यह सोचकर माता-पिता के पास जाकर विनयपूर्वक हाथ जोड़कर कहने लगा कि आप मुझे आज्ञा दें कि मैं परदेश जाकर पर्याप्त धन कमाकर लाऊँ, माता ने कहा, पुत्र ? तेरे जाने का शब्द ही मेरे लिए असह्य है तो फिर परदेश जाने की बात तो दूर है। पुत्र ? तेरे पिता के द्वारा अर्जित लक्ष्मी इतनी है कि तू दान भोग करता हुआ भी इस का अंत नहीं कर सकेगा, धन कमाने के जो-जो कारण हैं तेरे पिता ने सब पूर्ण कर रक्खे हैं, तुझे व्यापार करने की क्या ज़रूरत है ? धनदेव ने कहा, माताजी ? जब लड़का छोटा रहता है अपनी माता के स्तनों का स्पर्श करता हुआ शोभता है किंतु बालभाव बीत जाने पर वही लडका यदि माता के स्तनों का स्पर्श करे तो पाप का भागी होता है, इसलिए समर्थ पुत्रों के लिए पिता की लक्ष्मी भी माता के समान अभोग्य है, जो पुत्र समर्थ होने पर भी पिता द्वारा अर्जित लक्ष्मी का उपभोग करता है वह मेरे समान लोक में उपहास का पात्र बनता है, यह कहते हुए धनदेव की आँखें आँसू से भर आईं और वह माता के चरणों पर गिर पड़ा। तब धनधर्म सेठ ने उसके दुःख का कारण जानकर कहा कि पुत्र ? तेरे इष्ट कार्य में कोई विघ्न नहीं देगा, पुत्र के अपमान की बातें बताकर उसने उसकी माता को भी समझाकर शांत कर दिया।

इस प्रकार माता-पिता की आज्ञा लेकर धनदेव परदेश योग्य चारों प्रकार के किराणें लेकर जिनमंदिरों में अष्टाह्निक महोत्सव करवाकर साधुओं की पूजा करके माननीय पुरुषों का सन्मान करके समस्त नगर में उद्घोषणा करवाकर ज्यौतिषियों के द्वारा बतलाए गए शुभ दिवस पर अनेक प्रकार के मांगलिक उपचार करने पर

सुंदर शकुन लेकर विश्वासपात्र हितचिंतक व्यापारियों के साथ कुशाग्रपुर जाने के लिए अपने नगर से निकल गया। इस प्रकार धनदेव सार्थ जनसमुदाय के साथ थोड़ी-थोड़ी दूर पर विश्राम करता हुआ विशाल सार्थ के साथ जा रहा है, धीरे-धीरे वह सार्थ वस्तियों को पार करता हुआ एक भयंकर जंगल में आया, जिस जंगल में घने पत्तोंवाले वृक्षों के कारण आकाश में उड़ते हुए किंतु न दिखनेवाले पक्षियों के अस्तित्व का पता उनके कूजन स्वर से ही मालूम पड़ता था, जिस प्रकार नीतिशाली राजा की नगरी में कोई भी व्यक्ति उन्मार्गगामी नहीं होता है उसी प्रकार उस जंगल में कोई भी उन्मार्ग गमन नहीं करता था, अर्थात् दूसरा कोई रास्ता ही नहीं था, उस भयंकर जंगल के बीचो बीच होकर वह सार्थ जा रहा था, अपने कोलाहल की प्रतिध्वनि से पुराने वृक्षों के कोहरों को पूरित करता था, ऊँचे-ऊँचे वृक्षों की शाखा प्रशा-खाओं से आकाश इस प्रकार आच्छादित था कि दिन में कभी भी सूर्य की किरणों का संताप ही नहीं लगता था, बंदरों के द्वारा किए गए बुंकारों को सुनकर बैल डर जाते थे, और डरे हुए उन बैलों को रोकने के लिए गाड़ीवान हक्कार करते थे, उनके हक्कारों की प्रतिध्वनि से डरकर उल्लूगण भी प्रत्येक दिशा में हुंकार शब्द करते थे, बैलों के गले में लटकते हुए घंटों की ध्वनि तथा बैलों के खरों से उड़ती हुई धूल से सारा आकाश मंडल भर रहा था।

मुनि धनेश्वर द्वारा विरचित सुबोध तथा रमणीय गाथाओं से युक्त रागरूपी अग्नि को शांत करने में जल के समान तथा द्वेषरूपी विषधर को शांत करने में मंत्र के समान सुरसुंदरीचरित-नाम कथा का "अटवी प्रवेश वर्णन" नाम का यह प्रथम परिच्छेद समाप्त हुआ। ० ० ०

द्वितीय-परिच्छेद

इसके बाद दूसरे दिन क्रमशः उस जंगल के अधिकांश भाग को पार कर लेने पर एक जलाशय को प्राप्त कर सार्थ ने पडाव डाल दिया। बैलों के ऊपर से भार-उतारकर जब सार्थ के लोग पानी, लकड़ी आदि के लिए इधर-उधर घूमने लगे, सब बैलों तथा भैंसों को चरने के लिए दिशाओं में छोड़ देने पर लोगों के द्वारा तत्कालोचित कार्य शुरू कर लेने पर गुप्तचर के द्वारा सार्थ को भोजनकार्य में व्यस्त जानकर एकाएक उस सार्थ पर भीलों ने आक्रमण कर दिया, वे भील नए मूंग के समान काले वस्त्र घुटने तक पहने हुए भीषण शरीरवाले स्याही की राशि के समान काले तथा कुपित यमराज के समान दुःख से देखने लायक थे। उनका शरीर कठोर तथा बीभत्स था, पलाश के पत्तों से मस्तकालंकार बनाया गया था, वे गुंजा फल के समान लाल-लाल आँखोंवाले थे, उनके केश कठोर खड़े तथा रूक्ष थे, वे कवच पहने थे, उनके पीठ-प्रदेश पर तरकस बँधा था, बाण चढ़ाकर कान तक मौर्वी धनुषकी डोरी को खींचकर डटे थे, कुछ लोगों के हाथों में तलवारें थीं, और कुछ लोग हाथ में लाठियाँ लिए हुए थे, गोफन घुमाने से उत्पन्न भयानक शब्दों से लोगों की जान लेनेवाले थे, वे भील अत्यंत ढीठ तथा कठोर हृदय-वाले थे, दशों दिशाओं में "मारो-मारो" बोलते थे, ऐसे वे भील एकाएक उस सार्थ पर टूट पड़े थे।

उन भीलों के आ पहुँचने पर सारा सार्थ आकुल व्याकुल हो गया, क्यों कि एक तो भीलों की संख्या अधिक थी, दूसरी बात यह थी कि सार्थ के लोग अपने-अपने कार्य में लगे थे, शरण रहित समस्त सार्थ के त्रस्त हो जाने पर कुछ साहसी लोग अभिमान से इस प्रकार बोंलने लगे कि रे पिशाच ? अब हमारी दृष्टि के सामने आकर कहाँ जाते हो ? अगर तुम्हारे पास कुछ पुरुषार्थ हो तो दिखाओ, और उस सार्थ में जो कुछ डरपोक हृदयवाले थे वे तो अपनी अंगुलियों को दाँतों के नीचे दबाकर हाय-हाय ? बचाओ बचाओ " इस प्रकार करुण शब्द बोलने लगे, कुछ लोग लूट जाते थे कुछ पीटे जाते थे कुछ कायर भागने के लिए मौका ढूंढ़ रहे थे, कुछ कायर लोग तो मौका पाकर धीरे-धीरे खिसकते हुए जंगल में छिप जातें थे, कुछ लोग कांप रहे थे, कुछ लोगों के कच्छ का बंधन ढीला पड़ गया था, कुछ लोग पुरुषार्थ छोड़कर दीनों की चेष्टा स्वीकार रहे थे, कुछ लोग तो लज्जा छोड़कर किसी-किसी तरह छुटकारे की माँग करते हुए उन पापियों की खुशामद करते थे, कुछ लोग जमीन पर गिरकर अपने को मृत बतलाते थे, कुछ लोग अगल-बगल देखकर अपनी धनराशि को मिट्टी के अंदर छिपाते थे, जो लोग लकड़ी आदि लाने के लिए बाहर गए थे वे भी कलकल शब्द सुनकर भय से और दूर भाग गए। उस समय सार्थ में चारों ओर "पकड़ो, मारो, बाँधो, मुँह में धूल भर दो" इस प्रकार के शब्द सुनने में आ रहे थे, इतने में भीलों द्वारा इधर-उधर सार्थ के लोगों को लूटे जाते हुए देखकर अपने कुछ पुरुषों के साथ धनदेव अपनी आकृति से उन भीलों के चित्त को क्षुब्ध करता हुआ, हाथ में वसुनंदक नामक तलवार उठाकर इस प्रकार कहने लगा कि अरे ? पापियों ? यदि तुम्हें अभिमान की खुजली आ

रही हैं तो मेरे सामने आओ मैं तुरत ही तुम्हारी खुजली मिटा देता हूँ, ऐसा मत बोलो कि मैंने तुमसे पुरुषार्थ दिखलाने के लिए नहीं कहा, यही तो वीरों की कसौटी है, अपनी स्त्री से प्रशंसित पुरुष कभी भी वीर नहीं कहलाते, इस प्रकार धनदेव के जोशीले शब्द को सुनकर " इसे भी पकड़ो " यह कहकर हर्षध्वनि करते हुए भील लोग धनदेव के सामने आ गए और तीखी तलवार भाला, तोमर आदि शस्त्रों से प्रहार करने लगे। धनदेव भी निःशंक होकर उनके सामने अपनी छाती अड़ाकर अपना पुरुषार्थ बतलाने लगा। युद्धकला निपुण धनदेव उनके प्रहार को निष्फल करने लगा। फिर भी किसी तरह भीलों ने फलक आदि शस्त्रों से धनदेव को पकड़ लिया और सार्थपति समझकर किसी प्रकार की चोट पहुँचाए बिना पल्ली पति के पास ले आए इतने में देवशर्मा ने धनदेव को पहिचानकर दुःखी होते हुए पल्ली पति से कहा कि स्वामिन् ? ये महानुभाव तो वे ही धनदेव हैं जिसने आपके लड़के को एक लाख सुवर्ण मोहर देकर योगी के पंजे से छुड़ाया था। जयसेन कुमार को बचानेवाले उपकारी धनदेव के साथ इन पापियों ने कैसा दुर्व्यवहार किया है ? देवशर्मा की बात सुनते ही आश्चर्यचकित होकर पल्लीपति सुप्रतिष्ठ ने धनदेव को छुड़ाकर अपने पास बैठाकर बड़े प्रेम से आलिंगन करके दीर्घ निःश्वास लेते हुए कहा कि आपने मेरा उपकार किया था इसलिए आपके पास जाकर मुझे आपका दर्शन करना चाहिए था, उसके बदले मेरे घर पर आए हुए आपका मैंने ऐसा स्वागत किया है, पापियों पर किया हुआ उपकार बुरा फलवाला ही होता है क्यों कि सर्प को दिया हुआ दूध विष बन जाता है, इसलिए मैंने बड़ा पाप किया है, उनकी बात सुनकर धनदेव ने कहा कि आप इतना खेद क्यों करते

हैं, यह अज्ञानता का दोष है, इस में आपका कुछ अपराध नहीं है, धनदेव की वचनचातुरी से प्रसन्न होकर कहा कि देखो, एक ही मनुष्य में कितने गुण रहते हैं "बहुरत्ना वसुंधरा" यह लोकोक्ति सर्वथा सत्य है, मेरी इस वृत्ति को मेरे इस जीवन को धिक्कार है, मेरे लिए केवल इतना ही हर्ष का विषय है जो इनके शरीर पर कोई आपत्ति नहीं आई अन्यथा मुझ पापी का उस पाप से उद्धार कैसे होता ? इस प्रकार अपनी निंदा करके भीलों के द्वारा लूटे गए धन सार्थ को लौटा दिया और सब के सामने स्नेह से सुप्रतिष्ठ ने कहा कि यहाँ से दो कोश की दूरी पर सिंहगुफा नाम की मेरी पल्ली है, वहाँ चलकर आप लोग मेरे मेहमान बनें। धनदेव ने स्वीकार किया। सारा सार्थ उसके पीछे-पीछे सिंहगुफा के पास पहुँच गया, पल्ली के पास सार्थ को आवासित करके धनदेव को लेकर सुप्रतिष्ठ अपने घर आया। वहाँ श्रेष्ठ युवतियों के द्वारा सुगंधित तेल से मालिश करवाकर पवित्र जल से धनदेव को स्नान करवाया। पल्ली पति ने खुद कर्पूर चंदन आदि से लेपन कर धनदेव के साथ भोजन किया, भोजन से उठने पर कर्पूर आदि मसाला सहित पान दिया, सुंदर सुखद आसन पर बैठनें पर धनदेव ने कहा कि यह पल्ली तो निर्दय लोगों का आवास है, फिर असाधारण सौजन्य तथा दयावाले आप इसमें कैसे रहते हैं ? ऐसे स्वामी और ऐसे भृत्यों का योग मेरे चित्त में अच्छा नहीं जँचता है, क्यों कि यह स्थान तो सत्य शौच दाक्षिण्य आदि से रहित लोगों का है, भीलों के स्वामी होने पर भी आपमें इतने सुंदर-सुंदर गुण विद्यमान हैं, इससे मेरे मन में बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि आप यहाँ क्यों रहते हैं ? तब सुप्रतिष्ठ ने कहा, धनदेव ? इस को कहने से क्या लाभ ? बुद्धिमान को अपनी ठगाई और अपने

अपमान को प्रकाशित नहीं करना चाहिए। फिर भी आपकी प्रार्थना विफल न हो इसलिए मैं कहता हूँ, आप एकाग्रचित्त होकर सुनें, नित्य प्रमुदित स्त्री-पुरुषों से रमणीय अनेक गाँवों के समूह से युक्त, बहुत दिनों में वर्णन करने लायक अंग नाम का एक देश हैं, उस अंग देश में अमरावती के समान ऋद्धिशाली स्वचक्र परचक्र के उपद्रवों से रहित करवेरा से रहित नगरों में श्रेष्ठ सिद्धार्थपुर नाम का एक नगर है, उस नगर में मदांध शत्रु रूप हाथी के कपोल स्थल का भेदन करने में कुशल शंख के समान उन्नत ग्रीवावाला सुग्रीव नाम के एक राजा हैं। समस्त अंतःपुर में प्रधान सुंदर शारद चंद्र बिंब समान मुखवाली अनुपम बुद्धि-शालिनी कमला नाम की उनकी रानी थी। उस कमला रानी के साथ विषयसुख का अनुभव करतें हुए तथा पूर्वभव के पुण्यरूपी वृक्ष से समर्पित राज्य का पालन करते हुए राजा का उस रानी से मैं पुत्र उत्पन्न हुआ। और विधिपूर्वक मेरा नाम सुप्रतिष्ठ रक्खा गया, पाँच धाइयों से पालन किया जाता हुआ, क्रमशः बढ़ता हुआ और माता-पिता को आनंद देता हुआ मैं पाँच वर्ष का हुआ। इसी बीच भूमंडल को संतप्त करनेवाली ग्रीष्म ऋतु व्यतीत हो गई, भूमंडल शीतल हो गया और मेंढ़क चारों ओर बोलने लगे. वेग से बहती हुई नदियों के कलकल शब्दों से दिशाएँ बहरी हो गई और गरजते हुए घने बादलों को देखकर मयूरो का समुदाय नाच रहा था। विकसित फूलों से शोभित कदंब के वृक्षों से सारा वनखंड बिराजित था और कुंद मोगरा आदि विविध फूलों से निकली सुगंध से वायु सुरभित हो गई थी। किनारे पर बैठे बालकों से, बनाए गए बालू के मंदिरों से रमणीय, जिसमें किसानों से जोते गए बैल पंक से लिप्त थे,

हर्ष के कारण सामान्य जनता जिस समय अत्यंत प्रसन्न थी। धान से लहलहाती खेतोंवाली, कीचड़ से दुःसंचार मार्गवाली वर्षा ऋतु आई, इस प्रकार नवीन वर्षा ऋतु प्राप्त होने पर एक समय राजा सुग्रीव भोजन के बाद चंदन लिप्त देहवाला कोमल बारीक और निर्मल वस्त्र पहनकर पनवट्टी हाथ में लिए रानी के महल में प्रविष्ट हुआ। सात मंज़िलवाले प्रासाद के ऊपर की मंज़िल पर राजा आरूढ़ हुआ, रानी के द्वारा विनय दिखलाने के बाद बहुमूल्य आसन पर बैठा। कुछ देर तक हास्य-विनोद करने के बाद सफेद चादर से आच्छादित शय्या पर सो गया। सजल बादल के गर्जन से राजा की निद्रा उड़ गई और राजा उठकर गवाक्ष में रक्खे हुए तकिए के सहारे बैठ गया। राजा के आसन के एक भाग में रानी भी आकर बैठ गई। हर्ष से रोमांचित होकर राजा ने कहा, प्रिये ? मेरे संगम से उल्लसित मनोहर पयोधरवाली तुम्हारी तरह बादल संगम से उत्तर दिशा भी उल्लसित मनोहर पयोधरवाली होकर शोभती है। प्रिये ? बादलों के बीच चमकती हुई बिजली तुम्हारे नेत्रों की चपलता और तुम्हारे केशों का अनुकरण कर रही है, प्रिये ? इन इंद्रगोपों के चारों तरफ घूमने से मैं मानता हूँ कि वर्षारूपी लक्ष्मी चूर-चूर होकर पृथिवी पर बिखर गई हैं, वर्षाकाल रूपी राजा के नव संगम होने से भूमिरूपी स्त्री को हरे-हरे अंकुर के बहाने रोमांचित हो आया है। सूर्य ने अपनी कठोर किरणों से इस पृथिवी को संतप्त कर दिया है, इसी से क्रोधित होकर बादलों ने मानो सूर्य के किरण विस्तार को रोक दिया है, "मेरा आगमन होने पर भी विरहिणी स्त्रियों के हृदय टूक-टूक क्यों नहीं हो गए" यह सोचकर वर्षाकाल मानो बिजली के प्रकाश के बहाने

क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखता है। मेरा आगमन हो गया है फिर भी तुम अपनी प्रियतमा को छोड़कर क्यों चले ? इस प्रकार गरजते हुए कुपित बादल पथिकों के हृदय को आंदोलित कर रहे हैं। धवलबला का रूप, दाढ़ोवाला बिजली रूप-चंचल जीभवाला कृष्ण शरीरवाला वर्षाकाल रूप पिशाच पथिकों का पीछा कर रहा है, प्रिये ? देखो, इंद्रधनुष से निकली धारा रूप बाणों से वियोगियों के हृदय को बींधता हुआ यह वर्षाकाल केवल पाँच बाणवाले कामदेव का मानो उपहास कर रहा है, इसी बीच रानी प्रसन्न होकर राजा से कहती है कि हे स्वामिन् ? यह वर्षाऋतु सभी ऋतुओं में श्रेष्ठ है क्यों कि केवल विरहिणी स्त्रियों को छोड़कर कामी। पामर, बछड़े, वृक्षलता आदि सब जीवों को सुख पहुँचाती है, रानी की बात सुनकर थोड़ा मुस्कुराकर राजा कहता है कि देवि ? यह बिलकुल सत्य है कि सुखी लोग जगत को सुखी देखते हैं" तुम तो स्वयं सुखी हो अतः संसार को सुखी मान रही हो, देवि ? पुण्यवानों के लिए सब ऋतुएँ सुख का कारण होती हैं और पुण्यहीनों के लिए वर्षा ऋतु भी दुःख का कारण है, सुंदरी ? देखो-देखो। इस अर्द्ध आच्छादित जीर्ण-शीर्ण झोंपड़ी में वर्षा की धारा से पीड़ित बिचारे गरीब बालक रो रहे हैं, बार-बार पत्नी के वचन से प्रेरित बिचारा गरीब वर्षा की धारा से पीटा जा रहा है, उसके रोंगटे खड़े हो गए हैं, ठंढी हवा से शरीर सिकुड़ रहा है, फिर भी वह दरिद्र पुरुष अपनी कुटिया की मरम्मत कर ही रहा है, भारी वर्षा की धाराओं से पीड़ित उस गधे को तो देखो। जिसके दोनों कान नीचे झुक गए हैं और टूटे मंदिर के कोने में खड़ा है, प्रिये ! उस सूने घर में छोटे से चूल्हों में ठंड से ठिठुरती हुई और खर-खर खड्डा खोदती हुई उस कुतिया को देखो,

जलधारा से पीड़ित उस बूढ़े बैल को देखा जो ईर्या समिति में रहे मुनि की तरह पृथ्वी को देखता हुआ धीरे-धीरे जा रहा है। सेवाल के समान हरी भूमि पर जगह-जगह फिसलते हुए तथा लकड़ी के सहारे इधर-उधर भीख माँगते हुए उस गरीब रंक को तो देखो, राजा इस प्रकार रानी से कह रहा है, इतने में वसुदत्त नामक कंचुकी नमस्कार करने के बाद इस प्रकार कहने लगा। स्वामिन् ? चंपानगरी के श्री कीर्तिवर्मा राजा के पास भेजा गया दामोदर नाम का दूत आया है, आपके दर्शन के लिए द्वार पर खड़ा है, अब आपकी जैसी आज्ञा, यह सुनकर राजा दृष्टि से ही रानी से बिदा लेकर उठकर सभा-मंडप में आया। इतने में एका-एक बिजली का चमत्कार हुआ। साथ ही भयंकर चर्ड-चर्ड शब्द भी हुआ, नर-नारी वर्ग उस शब्द को सुनकर भयभीत हो उठा। इसके बाद रानी के घर में भयंकर हाहाकार युक्त शब्द को सुनकर राजा फिर रानी के भवन की ओर लौट आया। धर्धर शब्द से रोती हुई रानी की दासी ने कहा, राजन ? अनर्थ ? अनर्थ ? रानी बिजली से जल गई। ज़मीन पर पड़ी हुई प्राण रहित रानी के शरीर को देखकर हाहाकार करता हुआ राजा भी मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर गया। राजा की इस स्थिति से परिजन और अधिक रोने लगे। पास के लोगों ने शीतल पवन आदि का उपचार किया, मूर्च्छा दूर होने पर राजा इस प्रकार विलाप करने लगे कि हा प्रिये ! स्वामिनि, जीवनदायिनि ? विशाल नेत्रोंवाली ? मेरे हृदय में निवास करनेवाली ! तुम मुझे छोड़कर कहाँ चली गई ? तुम्हारे इतने सुकोमल शरीर पर निर्दय विधाता ने कैसे बिजली गिरा दी ? चंदन-कुंकुम आदि से लेप करने योग्य तुम्हारे शरीर पर मेरे पाप से विधाता ने बिजली गिरा दी।

देवि ? तुम्हारे विरह में नर-नारियों से भरा यह नगर उजड़े हुए नगर के समान तथा जंगल जैसा दिखाई दे रहा है, देवि ? तुम कहती थी, " मैं आपके विरह में नहीं जी सकती हूँ ' तो फिर तुमने मुझ अभागे को कैसे छोड़ दिया ? मैंने ऐसा कौनसा अपराध किया है जिससे तुम रुष्ट हो गई और बोलती नहीं हो, तुम्हारे ऊपर सब से अधिक स्नेह था इसीलिए तो मैंने अंतःपुर की सभी स्त्रियों को छोड़ दिया था। मैं तुम में इतना अनुरक्त हूँ, सुंदरि ? फिर भी तुम जवाब नहीं देती हो, स्वामिनि ? प्रसन्न होओ-होओ और मेरे साथ बातचीत करो, इस प्रकार राजा जब करुण विलाप कर रहे थे धनदेव ? मैं रोता हुआ उनके पास पहुँचा, मुझे गोद में बिठाकर एक बालक की तरह ज़ोर ज़ोर से विलाप करते हुए राजा और अधिक रोने लगे ? इतने में मंत्री सुमति ने राजा से कहा कि देव ? रोने से क्या ? रानी का अग्नि संस्कार कीजिए। राजा ने कहा कि चंदन की लकड़ी बाहर मंगाओ, क्यों कि मैं भी रानी के साथ अग्नि में प्रवेश करूँगा, मंत्री ने कहा कि राजन् ? आप मरने का विचार क्यों करते हैं ? यह तो कायरों का काम है, आप धैर्य धारण करें, राजन ? आपके मरने से सारे देश पर शत्रु राजाओ का आक्रमण हो जाएगा और दूसरी बात यह है कि सुप्रतिष्ठ कुमार अभी बच्चा हैं, देव ? आपके जीने पर ही तो देव ब्राह्मण तपस्वी और गरीब जनता इनकी सभी धार्मिक कियाएँ चलती हैं, एक स्त्री के लिए आप जैसे उत्तम पुरुष को इस प्रकार अनुचित कार्य करना ठीक नहीं है, क्यों कि उत्तम पुरुष तो जगत के स्वभाव को जानते हैं, जब निरुपक्रम शरीरवाले भगवान ऋषभ देव का भी मरण हो गया तो फिर अन्य मनुष्यों की बात ही क्या ?

शत्रुओं को जीतकर छः खण्ड भूमि के स्वामी भरत चक्रवर्ती का भी जब मरण हो गया तो सामान्य मानवों की बात ही क्या है ? अपने पराक्रम से शत्रुओं की सेना को जीतकर पैदल सेना आदि से अपनी रक्षा करनेवाले शूरवीर सोम यश और आदित्य यश आदि बड़े-बड़े अभिमानी राजा भी जब पापी कठोर यमराज से मारे गए तो फिर सामान्य लोगों की बात ही क्या ? जिन देवों की उत्कृष्ट आयु तेंतीस सागरोपम बताई गई है वे भी जब च्यवन को प्राप्त होते हैं तो फिर सामान्य प्राणियों की गिनती क्या ? भवनपति व्यन्तर ज्योतिष्क तथा वैमानिक देव भी जब च्यवन को प्राप्त होते हैं तो फिर मनुष्य लोक में रहनेवालों की क्या गणना ? इन तीन लोक में सुखसमृद्ध सिद्धभवन्तों को छोड़कर एक भी प्राणी ऐसा नहीं जो मृत्यु के वश में न पड़ा हो, देव ? इस तरह सकल त्रिभुवन को काल कवलित जानते हुए भी रानी की मृत्यु से आप बेकार क्यों शोक करतें हैं, केवल रानी की ही मृत्यु होती तो शोक करना योग्य था किंतु मृत्यु तो साधारण है तो फिर शोक करना, रोना व्यर्थ है, राजन ? यह जीवन अत्यंत पतले कुशाग्र भाग पर लटकते हुए जलबिंदु के समान चंचल है, जीव निद्रा लेकर उठ जाता है यही आश्चर्य की बात है, राजन ! इस प्रकार जगत की स्थिति को देखकर रानी-मरण का शोक करना आपके लिए योग्य नहीं है। इस प्रकार सुमति के द्वारा समझाए जाने पर राजा ने रानी का अग्नि संस्कार किया। उसके बाद कुछ दिन तक राजा ने लोक संभावन आदि अपना आवश्यक कार्य भी छोड़ दिया और रानी के शोक में ग्रह से ग्रसित की तरह रहने लगे। सुमति आदि मन्त्रियों ने शोक छुड़ानेवाली बातों से राजा को समझाया, जिससे धीरे-धीरे राजा शोक से मुक्त हुआ। मुझे

आठ वर्ष का जानकर अत्यंत पुत्र स्नेह से उपाध्याय के पास मुझे कलाओं का ज्ञान कराने लगे, कला कुशल जानकर राजा ने मुझे हज़ार गाँव दिए और मुझे देख-देखकर रानी के शोक को भलने लगे।

एक समय राजा सभामण्डप में विराजमान थे कि इतने में सुभग नाम का द्वारपाल प्रणाम कर उनसे इस प्रकार कहने लगा। देव ? चम्पापुरी से कीर्तिधर्म राजा का सामंत आपके दर्शन की इच्छा से द्वार पर खड़ा है, राजा की आज्ञा से वह सामंत सभा में आया और प्रणाम कर के उचित आसन पर बैठ गया। ताम्बूल आदि से सत्कार करते हुए राजा ने आने का कारण पूछा, तब वह कहने लगा कि आपको यह विदित है कि श्री कीर्तिधर्म चम्पापुरी के राजा है जिनकी निर्मल कीर्ति दशों दिशाओं में फैली है, देवांगनाओं के रूपातिशय को जीतनेवाली समस्त स्त्री समाज में सन्मानित लोकविख्यात कीर्तिमती उनकी पटरानी है, उस रानी की सौभाग्य विज्ञान आदि से पूर्ण पातालकन्या के समान सुंदर कनकवती नाम की पुत्री है, यौवन प्राप्त होने पर राजकुमारी कनकवती को भूषणों से अलंकृत कर के माता ने उसके पिता के पास भेज दिया ताकि उसके स्वरूप को देखकर उसके योग्य वर का अन्वेषण करें, राजकुमारी ने जाकर पिताजी को प्रणाम किया, उसे गोद में विठाकर आलिंगन करते हुए राजा ने कहा, पुत्रि ? इन सामंत-महंत राजकुमारों में जो तुझे इष्ट लगे उसका नाम बता, जिससे कि मैं उसके साथ तेरा विवाह कर दूँ, पिता की बात सुनकर राजकुमारी ने लज्जा से अपना मुख नीचा कर लिया, बार-बार पूछने पर भी जब राजकुमारी ने उत्तर नहीं दिया तब पिता को मालूम पड़ा कि यह बिचारी लज्जा के कारण

कुछ कह नहीं सकती है, अतः इसके योग्य वर का अन्वेषण मुझे ही करना पड़ेगा, एक क्षण के बाद कुछ सोचकर राजा ने कहा, पुत्रि ! मैंने तेरे अनुरूप वर को ढूंढ लिया है, सिद्धार्थपुर का राजा सुग्रीव, जो कि मेरा घनिष्ठ मित्र है, उसको ही वरण करो, देव ? पिता के द्वारा आपका नाम सुनते ही राजकुमारी हर्ष से रोमांचित हो उठी, राजकुमारी के भाव को जानकर राजा ने मेरी ओर देख-कर कहा कि महाबल ? तुम शुभ तिथिकरण नक्षत्र में कुछ सैनिकों के साथ पर्याप्त धनराशि लेकर कनकवती को स्वयंवर के लिए साथ कर के सिद्धार्थपुर जाओ। राजा की आज्ञा के अनुसार कनकवती को लेकर मैं वहाँ से चला और यहाँ से एक योजन को प्राप्त हुआ । रात बीतने पर कुछ तेज चलनेवाले घोड़े से आगे आकर आपसे यह प्रिय निवेदन करने के लिए यहाँ आया हूँ । देव ! मेरे आने का यही कारण है अब आपकी जैसी आज्ञा । राजा ने हर्षित होकर अपने परिजन से कहा कि खूब धूमधाम के साथ कन्या का नगर में प्रवेश कराओ । परिजनों द्वारा कन्या को नगर में लाए जाने पर शुभ मुहूर्त में राजा ने उसके साथ विवाह किया धीरे-धीरे वह कनकवती राजा की अत्यंत वल्लभा बन गई, मेरी माता के स्थान में अब कनकवती पटरानी बन गई, मनुष्य का प्रेम ऐसा है कि वह देशकाल की दूरी से अत्यंत प्रेम-पात्र को भी भूल जाता है, लता के समान समीपवर्ती के ऊपर चढ़ जाता है, कनकवती के ऊपर राजा का राग इतना बढ़ा कि अंतःपुर की अन्य रमणियो से उनका चित्त इतना हट गया कि उनके पास जाना-आना भी बंद हो गया ! इसके बाद कनकवती को एक पुत्र उत्पन्न हुआ । जिसका नाम 'सुरथ' रक्खा गया । धीरे-धीरे वह कुमारावस्था को प्राप्त हुआ । कनकवती ने एक दिन एकांत

में राजा से कहा कि देव ? मेरे पुत्र सुरथ को युवराज पद पर क्यों नहीं अभिषिक्त करते हैं ? राजा ने कहा कि सुप्रतिष्ठ ज्येष्ठ पुत्र के रहते हुए सुरथ को युवराज पद पर स्थापित करना उचित नहीं हैं । रानी ने कहा कि मैं आपकी प्रिया हूँ, अतः आप मेरे पुत्र सुरथ को युवराज बनावें, राजा ने कहा कि यह बात ठीक है लेकिन सभी सामंत-महंत सुप्रतिष्ठ को अधिक चाहते हैं । दूसरी बात यह है कि वह बड़ा शक्तिशाली है, अपमानित होने पर मेरे राज्य को भी ले सकता है, इस पर रानी ने हँसकर कहा कि इस पराक्रम पर विधाता ने आपको राजा कैसे बना दिया ? आपको तो भील बनना चाहिए । जिससे सुप्रतिष्ठ कुमार इतना शक्तिशाली है, इसीलिए तो उसे पकड़कर जेल में डाल दीजिए । और मेरे पुत्र सुरथ को युवराज बनाकर निःशंक होकर रहें, रानी के वचन सुनकर उत्तर दिए बिना ही राजा उठकर सभा-मंडप में जाकर बैठ गए । देवी की बात सुनकर सुभगिका नामक दासी ने आकर मुझे ज्यों की त्यों कह दी । धनदेव ? तब मेरे चित्त में ऐसा विचार आया कि क्या कनकवती के कहने से पिताजी ऐसा करेंगे ? स्त्रियों के वश में पड़ा मनुष्य न तो पूर्व स्नेह को गिनता है न नीति का ही विचार करता है और न लोकापवाद से डरता है और न भविष्य में आनेवाली विपत्तियों से डरता ही है । इसलिए पिताजी जब तक रानी के वचन से कुछ करते नहीं उसके पहले ही पिता को मारकर मैं राज्य को अपने अधिकार में कर लूं । अथवा मुझ विवेकी के लिए ऐसा करना ठीक नहीं है, अतः पिताजी को बाँधकर कारागृह में डाल दूं, अथवा सुरथ के साथ कनकवती को यमराज के मुख में पहुँचा दूं ? अथवा दोनों को जेल में दे दूं ? अथवा पहले देखूं कि पिताजी क्या करते हैं ? क्यों कि

पानी को देखे बिना जूते खोल लेना उचित नहीं । इसके बाद प्रियतमा के कथनानुसार मेरे ऊपर पिताजी का स्नेह कुछ कम होने लगा क्यों कि कान का विष बड़ा भयंकर होता है, दूसरे दिन एकाएक राजा ने किसी बहाने मेरे अधिकार के एक हज़ार गाँव मुझसे छीन लिए और एक छोटा-सा गाँव मुझे दे दिया । क्रोध में आकर मैंने पिताजी को मारकर राज्य लें लेने का विचार कर लिया । फिर मैंने सोचा कि मेरे पूर्वजों ने ऐसा पापकर्म नहीं किया, तो फिर इस असार राज्य के लिए मैं ऐसा क्यों करूँ ? रागांध राजा स्त्री वचन से भले ही अन्याय करें किंतु मुझ विवेकी के लिए ऐसा करना उचित नहीं । पिताजी के द्वारा किया गय अपमान असह्य है, आत्महत्या भी अनुचित है अंतः देश का त्याग ही सर्वोत्तम है, अन्य देश में जाकर किसी दूसरे राजा की सेवा करना भी अपमानजनक ही होगा, क्यों कि ऐसा करने से जहाँ-तहाँ लोग मेरा उपहास करेंगे, फिर मेरे लिए वहाँ रहना भी कठिन हो जाएगा । इसलिए कुछ विश्वासपात्र पुरुष को साथ लेकर किसी एकांत समीप प्रदेश में जाकर रहूँ और पिताजी के मरने के बाद जैसा उचित होगा वैसा करूँगा, ऐसा निश्चय करके साथ में कुछ प्रिय परिजन को लेकर सामंत मंत्री नगर नायक राजा आदि से अज्ञात ही में वहाँ से निकल पड़ा और इस सिंहगुफा पल्ली में रहने लगा । चोरी आदि कुंकर्मों में निरत अनेक भील मिलें, उनके साथ रहता हुआ अभी पल्ली पति रूप में रह रहा हूँ ।

धनदेव ! आपने जो पूछा था कि इन भीलों के साथ आप क्यों रहते हैं ? इस का उत्तर मैंने संक्षेप में दे दिया । आश्चर्यचकित होकर धनदेव ने कहा कि पिता भी अपने पुत्र का इस प्रकार अपमान करते हैं ! अरे ! अरे ! इस संसारवास को धिक्कार

है । इस संसार में कोई भी स्वार्थ लेकर ही प्रिय होता है, कारण-वश वही प्रिय शत्रु भी बन जाता है । पारमार्थिक दृष्टि से देखने पर तो संसार में न कोई प्रिय है, न शत्रु । न माता, न पिता सभी लोग स्वार्थ में पड़े हैं । स्वार्थ की पूर्ति न होने पर पिता भी विनीत से विनीत पुत्र को शत्रु के समान देखने लगता है । इस संसारवास को सर्वथा धिक्कार है । कुमार ? आप ही महात्मा हैं । आपने ही शांति मार्ग को प्राप्त किया है, आप ही विवेकी हैं और आपसे ही यह पृथिवी अलंकृत है । पिता के द्वारा अपमा-नित होने पर भी दूसरे अनुचित कार्य को न करते हुए आपने देश त्याग किया । यह बहुत ही अच्छा किया । स्नेहपूर्वक वार्तालाप करते-करते पाँच सात दिन बीत गए । तब समस्त सार्थ को जाने के लिए अत्यंत उत्सुक देखकर धनदेव ने विदा होने की इच्छा प्रकट की उसने कहा, कुमार ? एक तरफ आपका वियोग दुःसह है, दूसरी तरफ सार्थ जाने के लिए अत्यंत उत्सुक है, इसलिए मेरे लिए एक तरफ बाघ और एक तरफ नदीवाली बात चरितार्थ हो रही हैं, इसी कारण सज्जन लोग सज्जन संसर्ग को भी नहीं चाहते हैं क्यों कि वियोग से विदीर्ण हृदय का दूसरा औषध नहीं है, यद्यपि ऐसा वचन बोलने में मेरी जीभ समर्थ नहीं है फिर भी मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे जाने की आज्ञा दें, धनदेव की बात सुनकर कुछ विचार करके दीर्घस्वास लेकर दुःखपूर्वक सुप्रतिष्ठ इस प्रकार कहने लगा कि ऐसे स्थान पर रहते हुए हम घर पर आए हुए आपके जैसे मेहमान का क्या स्वागत कर सकते हैं ? फिर भी मैं कहता हूँ, आप मेरी प्रार्थना को अवश्य मानेंगे क्यों कि सज्जन तो दूसरों के कार्य को करनेवाले होते हैं, तब उस पल्लीपति ने फैलती हुई निर्मल किरणों से दश दिशाओं को

प्रकाशित करनेवाली अनेक गुणोंवाली एक श्रेष्ठ मणि धनदेव को उपहार रूप में दी । अनेक लक्षणोंवाली उस दिव्यमणि को देखकर विकसित नेत्रोंवाला धनदेव इस प्रकार कहने लगा कि ऐसी श्रेष्ठ मणि मनुष्य लोक में संभवित नहीं, यह तो केवल देवलोक में उत्पन्न हो सकती है । ऐसा निश्चय होने पर भी मेरे चित्र में कौतुक है ही, अतः आप कृपा कर बताइए कि यह मणि आपको कहाँ से प्राप्त हुई, तब सुप्रतिष्ठ ने कहा कि आपका निश्चय बिलकुल ठीक है, क्यों कि यह मणि मनुष्य क्षेत्र में संभवित नहीं है, यह मणि देवलोक में उत्पन्न है, इसकी प्राप्ति का निदान बतलाकर मैं आपके कौतुक को दूर करता हूँ, आप एकाग्रचित्त होकर सुनें, किसी समय प्रातःकाल होते ही हाथ में धनुषबाण लेकर साथियों के साथ शिकार के लिए चला, यहाँ से दो कोस उत्तर घने पत्तोंवाले वृक्षों से व्याप्त एक वन में जब पहुँचा तो एकाएक आकाश में ज़ोर-ज़ोर शब्दों से रोती हुई एक स्त्री को सुना, वह इस प्रकार बोलती थी कि हे प्रियतम ! मेरे कारण आप कितने बड़े संकट में पड़ गए हैं, आर्यपुत्र ? मैं आपके विरह में जीवित नहीं रह सकती हूँ । उसके बाद किसी पुरुष के अत्यंत कठोर शब्द सुनें, जो कह रहा था कि मेरे वश में आ जाने पर अब तुमको कौन सहारा दे सकता है । उसको सुनकर मेरे मन में अत्यंत कुतूहल उत्पन्न हुआ, दो-तीन कदम आगे जाने पर एक वननिकुंज में नहीं दिखते हुए किसी मनुष्य का दुःखसूचक मंद-मंद रोने का शब्द मुझे सुनाई पड़ा ।

उसके बाद और अधिक कौतुक से मैं उसी तरफ चला और एक विशाल ऊँचे सीधे शेमल के वृक्ष को देखा । केवल देखने से

ही भय देनेवाले, लाल-लाल आँखोंवाले, काले शरीर से निकलने-वाली कांति से आकाश को भरनेवाले, निर्मल रत्नों की प्रभा से चमकते हुए मुखवाले, अत्यंत क्रोध से अपने फणों को बार-बार फैलानेंवाले, लंबी चंचल हजारों जिव्हाओं से भयभीत करनेवाले। भयंकर क्रोध से बार-बार फुँफकार करनेवाले सर्पों से चारों ओर से घिरे हुए उस वृक्ष के नीचे बैठे हुए, एक दिव्य आकारवाले पुरुष को देखा। वह अत्यंत दुःसहवेदनाओं से बार-बार मंद-मंद हुंकार करता हुआ, कंठपर्यंत सर्पों से लिपटा हुआ था। उसको देखकर मैं बिना विचारे काम करनेवाले विधाता को धिक्कारने लगा, इतने में उसने कहा कि विलाप करने से कुछ फायदा नहीं। तुम मेरी बात तो सुनो, मेरी चूड़ा (चोटी) में चमकीली एक दिव्यमणि बँधी है, वह सर्पों को दूर करनेवाली है। जिसके प्रभाव से घोर विषवाले ये सर्प मुझे डँसना चाहते हुए भी डँस नहीं सकते हैं, मानो इनके मुख बंद कर दिए गए हो। अतः इस श्रेष्ठ मणि को लेकर जल से प्लावित कर उस जल को मेरे अंगों पर चिपके हुए सर्पों पर छिटको। हाँ, कहते हुए मैंने उस जल को छींटा, छींटते ही सब सर्प तीक्ष्ण अग्नि से तपाए गए मोमपिंड की तरह विलीन हो गए। इसके बाद प्रसन्नवदन वह पुरुष शीतल वृक्ष की छाया में मेरे पुरुषों द्वारा रचित कोमलपत्तों से आच्छादित बिछौने पर बैठ गया। पहले उसने ही मुझसे पूछा कि आप कहाँ से आए हैं? आपका नाम क्या है? आप किस निर्मल कुल में पैदा हुए हैं? और आपके पिता का नाम क्या है? पूछने पर मैंने सारा वृत्तांत कह सुनाया, जो मैंने आपको पहले कह सुनाया है!"

विद्याधर मोचन नाम द्वितीय परिच्छेद स०।

० ० ०

तृतीय-परिच्छेद

उसके बाद मैंने भी उससे पूछा कि भद्र ? आपको व्यर्थ इस विपत्तिं में किसने डाल दिया ? उसने दुःख के साथ लंबी साँस लेकर आँसू बहाते हुए कहा कि राग से मोहित चित्तवालों के लिए इस संसार में विपत्तियाँ अत्यंत सुलभ हैं, अतः असंयमी जीवों के लिए यह पूछने की आवश्यकता ही नहीं है, पूर्व कृतकर्म दोष से सभी जीवों को सुख-दुःख मिलते रहते हैं, दूसरा तो केवल निमित्त ही होता है, तब मैंने कहा कि यह ठीक है, इस में कोई संदेह नहीं, फिर भी मैं विशेष कारण जानना चाहता हूँ, मेरी बात सुनकर उसने कहा कि सुंदर ? यदि आपको आग्रह है तो मैं कहता हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनें ।

इसी भरत क्षेत्र में सब प्रकार की ऋद्धियों से संपन्न वैताढच नाम का पर्वत है, जिस पर अनेक विद्याधर रहते हैं, जो चांदी का ऊँचा ढेर जैसा है, जिसकी कांति चारों ओर फैल रही है, जिसके झरने की आवाज़ से दिशाएँ बहरी हो रही हैं, जिसके बनमें मधुपान लोभी भ्रमरो का मधुर गुंजन हो रहा हैं, जिसकी बहती हुई नदियों की कलकल ध्वनि दिशाओं में फैल रही है, जिस पर जगह-जगह विद्याधरों के नगर शोभते हैं, एकांत स्थान में विद्याधर विद्याओं का साधन कर रहे हैं, जिसके शिखर सिद्धायतनों से भूषित हैं । जिन में प्रतिष्ठित जिनबिंब की पूजा के लिए आते हुए देवों से जिसका आकाश भाग सुशोभित है, जिस पर कान्ता

सहित विद्याधर संगीत कर रहे हैं, स्थान-स्थान पर चारण मुनियों के द्वारा देशना से जीवों को प्रतिबोधित किया जाता है, पूर्व से पश्चिम सागर तक फैले हुए जिस पर्वत से भरत खंड के दो भाग किए गए हैं, अत्यंत विशाल दक्षिण और उत्तर की दो श्रेणियों से जो अत्यंत शोभायमान है।

उस पर्वत पर दक्षिण श्रेणी में विद्याधरों से परिपूर्ण, विचरती हुई विद्याधरियों के नूपुर के झंकार से शब्दायमान, मकर तोरणादि अलंकृत द्वार देशोंवाले विद्याधरों के भवनों से विराजित, तीनों लोक की लक्ष्मी से परिपूर्ण रत्नसंचय नाम का एक नगर है, जहाँ के स्त्री-पुरुष अत्यंत प्रसन्न हैं। और नगर के सभी गुणोंसे जो विभूषित हैं, अनेक जातीय लाखों विद्याधरों से परिपूर्ण जिस नगर में सकल गुणनिधान पवनगति नामक श्रेष्ठ विद्याधर रहते हैं, विज्ञान-विनय संपन्न पति में अनुरक्त, अपने सौरभ से पवन को जीतनेवाली बकुलावली उनकी भार्या है, उसके साथ विषयसुख का अनुभव करते हुए उनका कालक्रम से मैं ही एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जन्मदिन में ही हर्ष से पिताजी ने हर्ष से इस प्रकार वर्धापनक कराया जिससे नगर के लोग चकित हो गए, बारहवें दिन माता-पिता ने प्रसन्नतापूर्वक "चित्रवेग" मेरा नाम रक्खा। कुछ बरस बीतने पर शुभतिथि नक्षत्र में पिताजी ने मुझे एक सुयोग्य अध्यापक के पास रक्खा। थोड़े ही दिनमें अध्यापक के प्रभाव तथा मेरी बुद्धि के सामर्थ्य से मैं सभी कलाओं में निपुण बन गया। पिताजी ने भी आकाशगामिनी आदि कौलिक विद्याएँ साधन करने के लिए दीं, क्रमशः मैं युवतियों के चित्त को हरनेवाले नवयौवन को प्राप्त हुआ।

एक दिन समान अवस्थावाले अपने मित्रों के साथ अनेक वृक्षों लताओं से भूषित मनोहर उद्यान में गया। उनके साथ क्रीड़ाओं को करते हुए मैंने आकाश में दिव्य विमान पंक्तियों को देखा। जिनके रत्नों की कांति से आकाश चमक रहा था, जो उत्तर दिशा को जा रही थीं, और जिनमें देवांगनाएँ सुंदर गीत गा रही थीं, उनको देखकर मैंने मित्रों से पूछा कि चंचल कुंडल मुक्ताफल से सफेद कपोलवाले ये देवगण कहाँ जा रहे हैं ? कुछ हँसते हुए मेरे मित्र बंधुदत्त ने कहा कि वैताढचवासियों के लिए यह बड़ी प्रसिद्ध बात है कि सिद्धायतनों में जिनवंदन के लिए देवता लोग नित्य आते हैं तो फिर पूछने की क्या आवश्यकता है ? तब मैंने कहा, देवता लोग आते तो अवश्य हैं। किंतु आज सब प्रकार की ऋद्धियों से संयुक्त अत्यंत हर्षित होते हुए जा रहे हैं, इसीलिए मित्र ? मैंने पूछा हैं। इसके बाद कुछ सोचकर बंधुदत्त ने कहा कि मलयानल से सुगंधित, नवीन पल्लवों से रमणीय वसंत का आगमन हुआ है, अंतः सिद्धायतनों में देवों की यात्रा निकली है, देखो न मित्र ? वसंत के आगमन होने से वृक्ष चलते हुए मलय पवन से चंचल पत्तोंवाली शाखाओं के द्वारा मानो हर्ष से नाचते न हो। भ्रमरों के झंकारों से मानो गाते न हो, वसंत को आए देखकर मकरंद से पीली, सुगंधित कुसुम रूप मुखवाली वन-राजियाँ हँसती न हों, नए पल्लवों से हरे-भरे वृक्षों को देखकर पलाश का मुख काला हो गया है। फलने का समय तो दूर है, खिलने के समय में ही इनका मुख काला हो गया है, यह सोचकर पत्तों ने इसे इस प्रकार छोड़ दिया है जिस प्रकार पात्र व्यक्ति कृपाण को छोड़ देते हैं, वन समृद्धि को देखकर पलाश का मुख संकुचित हो गया है, दूसरे क्षुद्र लोग भी दूसरे के अभ्युदय को नहीं सहते हैं, इतना ही

नहीं, अत्यंत लाल होता हुआ यह पलाश पिशाच की तरह विरही लोगों को सताता है, वसंत की सहायता लेकर कामव्याघ बड़ी निर्दयता से विरहिणी स्त्रियों का वध करने को तैयार हो गया है, कोयल कंजन ही उसका हास है। आम की मंजरियाँ ही उसके दाँत हैं, उसके द्वारा पथिकों की दुर्दशा देखकर नम्रमुखी लताएँ कुसुम के आँसू से रो रही है, जगह-जगह पलाश वृक्षों के बहाने भरे पथिकों की चिताएँ जल रही हैं, भ्रमर गुंजन मानो जलती चिता का शब्द है, वृक्ष शाखारूप हाथ से मानो झरने द्वारा पथिकों को जलांजलि देते हैं।

धार्मिक लोग ऐसे समय में भक्ति से श्रीजिनेश्वर देव दर्शन के लिए यात्रा करते हैं, इसलिए देवता लोग बड़े समारोह से वैताढच पर्वत पर जा रहे हैं, तब मैंने कहा, मित्र ! हम लोग भी सिद्धकूट पर जाकर भक्तिपूर्वक शाश्वत-सर्वज्ञ प्रतिमाओं को प्रणाम करके अपने जीवन को सफल करें, विद्याधरों से की जाती हुई जिन यात्रा को भी देखें, सभी मित्रों ने ज्यो ही स्वीकार किया इतने में बल नाम का मेरा धाईपुत्र वहाँ आ पहुँचा, उसने कहा कि चित्रवेग ! आपके पिताजी ने कहा है कि रत्न-संचय नगर के सभी विद्याधर गण स्नान विलेपन करके सुंदर वेष में बड़ी विभूति से जिन यात्रा में सिद्धकूट पर चले हैं, इसलिए हम लोग भी चल रहे हैं, अतः तुम भी आओ, जिससे साथ ही चलें, उसकी बात सुनकर मैं अपने घर आया और मेरे मित्र भी अपने-अपने घर आए, स्नानादि कर के धूप पुष्पादि पूजा सामान लेकर नगर-वासी सहित पिताजी के साथ तलवार के समान श्यामल गगन में उड़ते हुए क्रमशः मैंने जिन भवन को देखा। उसके द्वार देश पर निर्मल जल से भरी वापी में पैर धोकर अपने मित्रों के साथ जिन-

भवन के द्वार पर रहे हुए मालियों से अनेक प्रकार के फूलों को लेकर विधिपूर्वक अंदर में प्रविष्ट हुआ। जिन बिम्बों की पूजा कर के चैत्यवंदन कर के बाहर निकलकर विद्याधरों के बीच में बैठ गया। कुछ देर के बाद मित्रों के साथ कहीं विलासिनी स्त्रियों का नाच देखता था, कहीं कवियों के द्वारा वर्णित जिनेश्वर के चरित्र को सुनता था, कहीं वीणा की मधुर ध्वनि को सुनता था, कहीं अनेक प्रकार के दिए जाते हुए उपहार को देखता था। इतने में मातुल पुत्र भानुवेग मेरे पास आया और स्वागत कर के कहा कि बहुत दिनों के बाद आप देखने में आए। आपके पिताजी और मेरी फुई बकुलावली ये सब सकुशल तो हैं न ? तब मैंने कहा कि सब का कुशल है और वे सब भी यहाँ आए हैं। मैं उनके साथ ही आया हूँ, फिर उसके साथ मैं माता-पिता के पास गया। उन्होंने आदरपूर्वक उसका आलिंगन किया, कुशल पूछा, उसने कहा कि किसी विशेष कारण से उनका (मेरे माता-पिता) का आगमन नहीं हुआ। उसके बाद मैंने उससे कहा कि जिन-यात्रा समाप्त होने जा रही है, अतः आप आइए और हमारे मेहमान बनें, उसने कहा, बात ठीक है किंतु मेरे पिता चित्रभानु ने मुझे शीघ्र आने के लिए कहा है, अतः अभी आप मेरे नगर को ही चलें क्यों कि आपके मामाजी भी आपको देखने के लिए बड़े उत्कण्ठित हैं, उसके ऐसा कहने पर माता-पिताजी से आज्ञालेकर उसके साथ मैं कुंजरावर्त पहुँचा, चित्रभानु मुझे देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि बहुत अच्छा हुआ जो तुम हमारे पाहुन हुए। उनसे अपनी सारी प्रवृतियों बतलाईं, उसके बाद भोजनादि से निवृत्त होकर रात में सुंदर शय्या पर सो गया। वहाँ प्रातः काल में जब कुक्कुट आदि पक्षी बोल रहे थे, मैंने एक अपूर्व स्वप्न देखा वह स्वप्नयह था कि "सफेद

फूलों कीं एक मनोहर माला को देखकर उसको लेने की इच्छा से मैं चला, जब मैं किसी प्रकार से भी मैं उस माला को ले न सका तब किसी मित्र ने मुझे प्राप्त कराई, मैंने ज्यों ही उसे गले में लगाना चाहा, वह मेरे हाथ से गिर गई, कहाँ चली गई यह मैं नहीं जानता हूँ, उसके विरह में मुझे बड़ा दुःख हुआ। "सूख गई थी फिर भी मैंने इसे विकसित फूलोंवाली बनाया है" "यह कहकरकिसी ने मेरे गले में पहना दी," इतने में अनेक बाजाओं के शब्द से मिश्रित तूर की आवाज़ सुनकर मेरी निद्रा टूट गई, हर्ष विषाद कारी उस स्वप्न को देखकर मैंने मन में सोचा कि इस स्वप्न का तात्पर्य क्या है ? वह माला क्या थी ? कोई विद्या भी याकोई सम्पत्ति थी ? किसी ने दी, नष्ट हो गई, फिर मुझे प्राप्त हो गई, स्वप्न के स्वरूप को जब मैं नहीं समझ पाया तो उठ गया। प्रातःकृत्य कर के भानुवेग के साथ प्रासाद के ऊपर चित्रशाला में मणिमयी भूमि पर बैठा प्रातः-काल में देखे गए स्वप्न का स्वरूप उससे पूछा। वह भी जब स्वप्न के स्वरूप को समझ नहीं पाया, हम दोनों स्वप्न फल के विषय में संकल्प-विकल्य कर ही रहे थे इतने में बहुमूल्य आभरणों को धारण किए हुए सुंदर वेष में कहीं जाने के लिए तैयार नगर के लोगों को देखा, मैंने भानुवेग से पूछा कि ये लोग कहाँ जा रहे हैं ? उसने कहा, आज मदनत्रयोदशी है, अतः मदनोद्यान में मदन की पूजा के लिए ये लोग वहीं जा रहे हैं, हम भी चलकर मदन यात्रा देखें, मैंने भी स्वीकार किया। सुंदरवेष धारण कर के हम दोनों भी मदनोद्यान पहुँचे, क्रीड़ा करती हुई कामिनियों के नूपुर शब्द से मानो वहाँ के वृक्ष सुंदर गीत गा रहे थे, कोयलों के पंचमनाद नवपल्ल विभूषित वृक्ष लोगों को अपनी ओर बुला रहे थे, मधुमास को प्राप्त कर वहाँ के वृक्ष मानो मत्त बने हुए थे, धने वृक्षों से

मण्डित अत्यंत रमणीय दर्शन मात्र से काम उत्पन्न करनेवाले उस मकरंदोद्यान में जब पहुँचे तो रतिसहित मदनपूजा के लिए नगर के लोगों से भरे ऊँचे प्राकारवाले मदन मंदिर को देखा, जहाँ मृदंग बज रहे थे। कामिनियों के गीत से कामुकजन आकृष्ट हो रहे थे, अपनी प्रियतमा के साथ कामी लोग कदली वन में क्रीड़ा कर रहे थे, बालिकाएँ दोला पर चढ़ी थीं, कुछ लोग जलक्रीड़ा में व्यस्त थे, एक-दूसरे के ऊपर पानी कीचड़ उछालते थे, मंदिर में प्रवेश कर रति युक्त मदन का दर्शन कर के हम दोनों बाहर की वेदी में बैठे, कुमार ? इतने में मैंने सखियों के बीच में विराजमान पास के वृक्ष में दोलारोहण करती हुई नवीन यौवत में प्रविष्ट अपूर्व सौंदर्यवाली एक युवती को देखा, पीन उन्नत धन स्तनों पर उछलती हुई हारावली से वह शोभायमान थी, तपाए गए सोने के समान उसका वर्ण था। वणिकुण्डल से उसके कपोल मण्डित थे, विधाता ने उसे अमृतमयी बनाया था। वह लोगों के लोचन को आनंद देनेवाली थी, उसको देखकर मैंने सोचा कि यह मनोहर स्वरूपवाली कौन है ? क्या यह नागकन्या है ? क्या वनलक्ष्मी है ? या देवलोक से च्युत कोई देवांगना है ? क्या मनवियुक्त शरीरधारिणी रति है ? इस प्रकार विकल्प करता हुआ मैं उसे देख रहा था, वह भी स्नेहपूर्वक मुझे देखने लगी, मैंने भानुवेग से पूछा, यह कौन है, किसकी स्त्री है ? कुछ हँसते हुए भानुवेग ने कहा कि इसकी बात करने से कोई लाभ नहीं, चलें, यह भी अत्यंत वक्र दृष्टि से आपकी ओर देखती है, ऐसी स्त्री को दृष्टि पड़ने से शरीर अस्वस्थ हो जाता है, ऐसी स्त्री दृष्टिपात से ही मन को भी हर लेती है, मैंने कहा कि यह केवल परिहास है और आप तो कुछ दूसरा ही सोचते हैं, इस पर

भानुवेग ने कहा कि इसी नगर में अत्यंत यशस्वी अमितगति नामक एक विद्याधर है, उनकी भार्या चित्रमाला है। यह उनकी अत्यंत गुणवती एक ही लड़की है, इसका नाम कनकमाला है। तब मैंने कहा, मदन की पूजा करनेवाली यह कौन है? सखियों के बीच कथा कहती हुई यह कौन है? इस तरह जब मैंने पूछा तब उसने कहा कि आप मुझे क्यों ठगाते हैं? बिल्ली को काँजी से कौन ठग सकता है? इन प्रश्नों को पूछकर आप मेरी बुद्धि को मार नहीं सकते हैं। क्या चटाइयों से सूर्य को ढाँका जा सकता है? भानुवेग के ऐसा कहने पर मैंने लज्जा से अपना मुख नीचा कर लिया, यह देखकर भानुवेग कुछ अलक्ष्य जैसा हो गया। उस समय में लज्जा से अपनी दृष्टि दूसरी ओर करता था फिर भी उसीके मुखकमल पर मेरी दृष्टि पड़ जाती थी। अनुराग तंतु से बेंधी दृष्टि लोगों से भरे मार्ग में भी धीरे-धीरे प्रियजन पर पड़ ही जाती है, इसके बाद चंचल नयन बाण से जर्जर मेरे हृदय में काम के पाँचों बाण प्रविष्ट हो गए। इतने में उसका सखी-समूह अपने-अपने घर को चला, मुझे देखती हुई वह बाला भी उनके साथ चली, अपनी गर्दन पीछे करके स्निग्ध दृष्टि के धागे से उसने मेरे हृदय को खींच लिया। जब वह मेरी दृष्टि से बाहर हो गई मेरे चित्त में असह्य संताप होने लगा, भानुवेग की इच्छा से हम दोनों घर आ गए। मैं ऊपर महल में जाकर अपनी शय्या पर सो गया, भानुवेग मेरे पास बैठा था। उसने मुझ से कहा कि आप दुःखी क्यों हैं? विषादभरी लम्बी साँस क्यों छोड़ते हैं? आप का शरीर क्यों टूटता है। भाड़ के चने की तरह आप क्यों छटपटा रहे हैं? कुछ-कुछ सोचकर आप बेकार क्यों हँस पड़ते हैं? नाना रसमय नाटयकाव्य का अभिनय जैसा क्यों करते हैं? आप अपने

मन की बात क्यों नहीं करते ? इस प्रकार बहुत पूछने पर कुमार ? मैंने कहा कि मैं नहीं जानता हूँ कि मेरा शरीर इतना अस्वस्थ क्यों है ? हँसकर उसने कहा कि मैंने पहले ही कहा था कि ऐसी स्त्रियों का दर्शन अच्छा नहीं होता, उसी के नेत्रदोष से आपको इतना संताप हो रहा है। अभी आपकी पीठ पर हाथ फिराएगी जिससे आपको सुख मिलेगा ? निःश्वास लेकर मैंने कहा कि मैं प्राण संकट में पड़ा हूँ और आप भाई होकर भी मज़ाक कर रहे हैं। उसने कहा कि जब मैं आपकी स्थिति को जानता नहीं हूँ, आप स्वयं भी कुछ बतला नहीं रहे हैं तो मैं कर ही क्या सकता हूँ ? मैंने कहा कि उससे कुछ कहा जाता है जो नहीं जानता है आप तो जानते हुए भी परिहास की बातें करते हैं, इस तरह जब हम दोनों कुछ-कुछ बातें कर रहे थे इतने में गृहदासी चूतलता ने आकर कहा कि कनकलता की दासी सोमलता आपके दर्शन के लिए द्वारदेश पर खड़ी है। भानुवेग ने उससे कहा कि उसको जल्दी भेजो। सोमलता आई और उसका सत्कार किया गया, उसने एकांत करने को कहा तब चूतलता को बाहर कर दिया, सोमलता ने कहा कि आप लोग शरणागत वत्सल हैं, मुझे भयानक संकट से बचाइए, हर्षित होकर मैंने कहा, भद्रे ? क्या संकट है ? उसने कहा कि मैं काम संकट में पड़ी हूँ, तब कुछ हँसते हुए भानुवेग ने कहा कि तुम्हारे शरीर की संधियाँ शिथिल पड़ गई हैं। कांति नष्ट हो गई है, सभी दाँत टूट गए हैं, बाल सफेद हो गए हैं, त्रिवली नीचे लटक आई है। ज़रा जर्जरित तुम को देखते ही दूर भाग जायगा तो फिर तुम को काम से क्या भय है ? तब उसने कहा कि आप हँसे नहीं जिस प्रकार मैं काम-संकट में पड़ी हूँ आपको बतलाती हूँ आप सुनें, उद्यान से क्रीड़ा करके कनक-

लता जब घर आई तो उसका मुख ग्रसितचंद्र के समान था। तब मैंने उससे पूछा कि पुत्रि ? आज तू खिन्न क्यों है ? उसने कुछ उत्तर नहीं दिया केवल वह दीर्घ निःश्वास छोड़ने लगी। उसकी आँखें अश्रुजल से भर गईं, तब दुःखी होकर मैंने उसकी सखी हंसिका से पूछा, उसने कहा माताजी ? आज हम उद्यान गई थीं, मदन पूजा करके जब हम बाहर निकलीं तो भानुवेग के पास साक्षात् कामदेव के समान महाभाग एक तरुण को देखा। उनको देखते ही इसकी आँखें निस्पंद हो गईं। उनके मुख की ओर देखती हुई यह एकदम चित्रलिखित-सी हो गई, उनकी दृष्टि अपने ऊपर नहीं पड़ती देखकर वह अपने को अभागिन जैसी मानती हुई कुछ सोचकर सखियों से बोली कि इस आम के पेड में दोला लगाकर खेलें, वैसा करने के बाद पास की सखियों को भी ज़ोर-ज़ोर से बुलाने लगी। तात्पर्य यह था कि मेरे शब्द को सुन-कर वह मेरी ओर देखेगा और मैं कृतार्थ हो जाऊँगी। तब मैंने परिहास में कहा, सखि ? आप ज़ोर-ज़ोर से क्यों बोलती हैं ? वे तो कौतुक में मग्न हैं, आपको उत्तर नहीं देंगे। मेरी बात सुनकर वह कुछ लज्जित जैसी हो गई, इतने में काम सुंदर उस तरुण ने इसकी ओर देखा। देखते ही कनकलता भय और हर्ष से अपूर्व रस को प्राप्त हो गई। अपने को कृतार्थ मानने लगी। उसके शरीर में रोमांच आ गया। सखियों का आलिंगन करने लगी, बिना कारण हँसने लगी। पैर के अंगूठे से भूमि को खोदने लगी। केशों को बाँधने लगी। कुछ देर इस प्रकार क्रीड़ा करके काम से संतप्त होकर यहाँ आकर ऐसी हो गई, मैंने हँसिका से पूछा, वह कौन था ? उसने सब समाचार बतलाया। योग्य स्थान में पुत्री का अनुराग हुआ यह सोचकर मैं उसके पास गई, मैंने उसको देखा।

उसका मुखकमल कुछ सफेद जैसा हो गया था। वह बिछौने पर लेटी थी। लंबे निःश्वास से उसका शरीर सूख रहा था। किसी-किसी तरह प्राण रक्षा कर रही थी। हार चंदनपंक कमलनाल कमलपत्र और अधिक उसके शरीर को संतप्त कर रहे थे, सुंदर शय्या भी अंगार की तरह उसे जला रही थी। पूछने पर कुछ उत्तर नहीं दे रही थी। श्रेष्ठ योगिनी की तरह ध्यान में लीन थी। केवल आपके नाममंत्र से उसे कुछ आश्वासन मिल जाता था। प्रिय विरह से पीडित मरणासन्न उसे देखकर उसके दुःख से दुःखी होकर मैं आपके पास आई हूँ, इसलिए सुंदर ? जब तक उस बिचारी की साँस समाप्त नहीं होती उसके पहले आप उसे आश्वासन दें, जब तक उसके प्राण निकल नहीं जाते तब तक आप कुछ उपाय करें। मर जाने पर पीछे आप क्या कर सकेंगे ? उसके वचन सुनकर हे राजपुत्र ? मैंने उससे कहा कि कनकमाला कौन है ? मैं तो जानता भी नहीं हूँ, मैं तो मेहमान हूँ, सर्वथा अपरिचित हूँ अतः इस विषय में भानुवेग से पूछो, भानुवेग ने कहा, मैं भी कुछ नहीं जानता हूँ तब वह कुछ रुष्ट होकर बोली, भद्र ? आप कितने निर्दय हैं, दृष्टिबाण से उसके हृदय को बींधकर मरणासन्न बनाकर आप अपने को उस विषय से अज्ञात बतलाते हैं।

जो मनुष्य जहाँ रहता है उस स्थान को बड़े आदर से बचाता है, आप उसके मन में बसते हैं और उसको ही जलाते हैं, उसके हृदय को चुराकर चोर की तरह अपलाप क्यों करते हैं ? आप इससे छूट नहीं सकते, कुछ उपाय करें। तब मैंने उससे कहा कि आप ही उपाय बतलाएँ, मैं कुछ नहीं जानता हूँ। उसने कहा कि उसके विश्वास के लिए अपना चित्र या पत्र भेजिए, जिससे वह तत्काल प्राण रक्षा करें। राजपुत्र ? तब मैंने कमलिनी पत्र इस

आशय का पत्र लिखा कि भ्रमर का अनुराग केवल कमल में ही हैं अन्य फूलों में नहीं, दूसरे पत्ते में तांबूलसहित उस पत्र को रखकर मैंने चूतलता के हाथ में दिया। वे दोनों वहाँ से गईं। कुछ ही देर के बाद चूतलता वहाँ से आई और उसने कहा कि जब मैं उसके घर पर गई तो मत्ता मूच्छिता पिशाचग्रस्त कनकमाला अत्यंत विषम अवस्था में पड़ी थी। जब उसकी सखियों ने कहा कि चित्रवेग की दूती आई है तो आपके नामाक्षर को सुनकर उसे कुछ चैतन्य आया। वह तुरंत उठकर बैठी। मुझे देखकर कुछ लज्जित जैसी हो गई, मैंने उसे ताम्बूल दिया। उसने सहर्ष लिया, फिर उसने पूछा कि यह तांबूल किसने भेजा है? मैंने कहा, सुंदरि? आपके मनोहर प्रियतम ने भेजा है, उसने कहा, भद्रे? मैं तो कन्या हूँ तो फिर मेरा प्रियतम कैसे? मैंने कहा कि जो आपका प्रियतम होगा। तब वह कुछ अस्पष्ट बोलने लगी कि मुझ अभागिन के इतने बड़े पुण्य कहाँ से? जिसका दर्शन भी दुर्लभ है वह भर्ता कैसे होगा? इतना बोलने के बाद उसकी आँखें आँसू से भर आईं और निःश्वास लेकर वह फिर मूर्छित हो गई, तब उसकी सखियों ने मुझ से कहा कि उनके प्रेम में इसकी जो अवस्था हो गई है, जैसा तुमने देखा है उनसे जाकर कहो और फिर उन्होंने आपसे कहने के लिए कहा कि यदि यह किसी तरह आज रात जी जाती है तो कल सबेरे यह उद्यान में आएगी वहाँ वे अपना दर्शन दें, यह उनके दर्शन से ही जीवित रह सकती है अन्यथा नहीं, उनके कथनानुसार मैं आपके पास आई हूँ, चूतलता की बात सुनकर उसके विरह में मेरा संताप पहले से द्विगुणा बढ़ गया, मैंने मन में सोचा कि यदि वह मेरे विरह में संतप्त होकर मरेगी तो इसी निमित्त से मेरा भी मरण होगा, अथवा यदि उसे मेरे

ऊपर स्नेह था तो उसने कुछ उत्तर क्यों नहीं दिया ? इससे मैं मानता हूँ मेरे ऊपर उसका स्नेह नहीं है, यदि नहीं है तो फिर उसके विरह में मेरा मन क्यों बेकार जलता है, उसको देखनेवाली तो मेरी आँखें हैं तो फिर उसका विरह आँखों को नहीं जलाकर मन को क्यों जलाता है ? इससे तो जो कर्म करता है वही उसका फल भोगता है यह बात मुझे असत्य लगती है। हृदय ? इन आँखों को रोने दें, तू क्यों विदीर्ण होता जा रहा है ? इतने में भुवन-मंडल में घूमने से श्रांत होकर सूर्य अस्ताचल पर विश्राम करने गए। अपनी किरणों से भुवन को इसने संतापित किया है, यह जानकर अस्ताचल ने अपने मस्तक से सूर्य को नीचे ढकेल दिया। सूर्य के नीचे गिरते ही क्रोध से लाल मुख किए संध्या आ गई, उसके बाद दिशाओं को अंधकारित करती हुई रजनी आ पहुँची। जिसमें तारे प्रकट थे और उलूकों के हुँकार से जो अत्यंत भीषण थी। कुछ ही देर के बाद अंधकार का नाश करते हुए मानिनी-जनों के मान को तोड़नेवाला चंद्र उदित हुआ। चंद्र-पवन से वियोगाग्नि अत्यंत तीव्र हो उठी, मेरा हृदय सौ गुना अधिक जलने लगा। तब मैंने सोचा कि अमृतमय होने पर भी चंद्र उसके विरह में बिजली की तरह क्यों जलाता है ? तब मैंने हृदय से कहा कि दुर्लभ जन के साथ तूने अनुराग ही क्यों किया ? जो स्नेह करे उसके साथ अनुराग करना चाहिए जो दूर से ही जलाती है उसमें तेरा अनुराग क्यों ? अब मैं अपनी स्थिति किससे बतलाऊँ ? क्या दिन होगा जब कमल कोमल उसके हाथ का स्पर्श प्राप्त होगा ? उसके साथ विवाह की बात तो दूर रहे उसका दर्शन भी मैं दुर्लभ मानता हूँ। मेरा जीवन बेकार है, इस मनुष्यजन्म से क्या लाभ ? जो उसका मुख भी मैं नहीं देख पा रहा हूँ, अथवा

चूतलता की बात से कल सबेरे उसका दर्शन होगा। यदि भाग्य साथ देगा तो, विरहाग्नि से संतप्त मेरे हृदय के लिए उसका दर्शन ही औषध है, इस प्रकार अनेक विकल्पों से मुझे नींद नहीं आई और चार पहर की रात हज़ार पहर की बन गई। मैं मानता हूँ, केवल उसके दर्शन की आशा से ही अत्यंत दुःख में भी मेरा हृदय विदीर्ण नहीं हुआ है। अपनी शीतल किरणों से भी मेरे संताप को दूर नहीं कर सके, इस लज्जा से मानो चंद्र अस्ताचल को प्राप्त हो गया। रात बीतने पर पूर्व दिशा एकदम लाल हो गई। कमलवन को प्रतिबोधित करने के लिए चक्रवाक दंपती को संयुक्त करने के लिए सूर्य का उदय हुआ। इसके बाद उठकर मैं प्रभात कृत्य करने लगा। प्रिया दर्शन की आशा से, हे सुप्रतिष्ठ? उस समय मेरा मन अत्यंत प्रसन्न था।

० ० ०

चतुर्थ-परिच्छेद

इसके बाद भानुवेग ने आकर हँसते हुए मुझ से कहा कि आप चूतलता के वचनानुसार उद्यान जाइए। बड़ी प्रसन्नता से हाँ कहकर मैं जाने की तैयारी कर ही रहा था कि इतने में मांगलिक तूर की आवाज़ सुनाई दी। मैंने भानुवेग से पूछा कि तुरही कहाँ बज रही है? उसने कहा कि मैं ठीक से तो नहीं बता सकता हूँ किंतु मुझे लगता है कि अमितगति के घर से आवाज़ आ रही है। मैंने सोचा कि प्रियासमागम नज़दीक होने पर भी संताप क्यों बढ़ रहा है? और बाँया नेत्र भी क्यों फड़क रहा है? अतः कुछ कारण अवश्य होना चाहिए, तब मैंने चूतलता को बुलाकर उससे जल्दी पता लगाने के लिए कहा, वह गई और एक क्षण के बाद ही आ गई, उसका मुखकमल मलिन था, उसने कहा कि अमितगति के घर पर इतनी भीड़ थी कि मैं अंदर जा नहीं सकी, फिर पूछने पर बंधुदत्ता ने कहा कि गंगावर्त के राजा श्री गंधवाहन के पुत्र नभोवाहन को कनकमाला दी गई है उसीका यह वरण महोत्सव है। सुनते ही मानो मुद्गर के आघात से मूर्च्छित होकर मैं एकाएक पृथ्वी पर गिर पड़ा। कर्पूरमिश्रितजल तथा पंखे के शीतल पवन के उपचार से होश में आकर मैं सोचने लगा कि दृष्ट विधाता की क्या लीला है? उसने मेरे प्रियासंगम के सारे मनोरथों कों चूरचूर कर दिया। मनुष्य क्या सोचता है और

दैव क्या कर देता है ? कहाँ कनकमाला ? कहाँ मैं ? और कहाँ हम दोनों का पारस्परिक अनुराग ? दुष्ट विधाता ने सब कुछ बदल दिया। उस दुष्ट की यदि यही बुद्धि थी उसका दर्शन ही क्यों कराया ? और जब वह अनुरागिणी बन गई तो फिर दूसरे के साथ जोड़ने में उसे लज्जा क्यों नहीं आती ?

इतना ही नहीं, इन आँखों के ऊपर वज्र या उससे भी कठिन कोई घातक वस्तु पड़े जो अज्ञातव्यक्ति के साथ भी संबंध करा देती हैं, मैं नहीं जानता कि मेरा हृदय अभी भी उसके प्रति अनुराग को क्यों नहीं छोड़ देता ? अवश्य मेरा हृदय वज्र का बना हुआ है, नहीं तो इतने बड़े दुःख वहन करते समय इस के सौ टुकड़े हो जाते, कुमार ! उसके विरह में दुःखी होकर मैं जब इस प्रकार चिंता कर रहा था इतने में सोमलता फिर मेरे पास आई, वह कुछ प्रसन्न दीखती थी, मेरे पास बैठी और मुझे दुःखी देखकर बोली कि सुंदर ? उसके वरण की बात सुनकर आप उदास क्यों हो रहे हैं ? आप मेरी बात सुनें, मैंने कहा, सोमलते ! क्या अब भी मेरे मन में कुछ आशा है जो तुम इस प्रकार बोलती हो ? उसने फिर कहा कि आपके विरह में कनकमाला को मूर्च्छित देखकर चूतलता को आपके पास भेज दिया था। कनकमाला को सखियों ने आपके समागम की बातों से बहुत आश्वासन दिए फिर भी वह बेचारी क्षण-क्षण में मूर्च्छित होती रही, वह कभी उठती थी, कभी हुँकार करती थी, कभी गाती थी, कभी हँसती थी, कभी डरती थी, उसकी स्थिति से चिंतित होकर मैंने जाकर उसकी माता चित्रमाला से उसकी सारी बातें कह दीं, मेरे साथ ही आकर गुप्तरूप से उसकी माता ने उसके स्वरूप को देखा और उसने कहा, पुत्रि ? तेरा मुख इतना उदास क्यों है ? तू क्यों मेरे साथ

बात भी नहीं करती? यह कार्य कठिन नहीं है, तू विषाद छोड़, चित्रभानु तो हमारे अधीन के हैं, तू कुमारी है, चित्रवेग रूप से कला से सर्वथा योग्य है, उसके ऊपर यदि तेरा अनुराग हुआ तो यह अनुकूल ही है अब तुझे चिंता करने की कुछ ज़रूरत नहीं, किंतु तेरे पिताजी गंधवाहन विद्याधर राज के पास गंगावर्त गए हैं। वे वहाँ से आते हैं तब बड़े समारोह के साथ तेरा विवाह कराऊँगी। चैत्र महीना बीत रहा है, शीघ्र ही विवाह-लग्न आएगा, तू उद्वेग छोड़, इस प्रकार माता के आश्वासन से वह कुछ स्वस्थ हुई और उसकी माता वहाँ से उठी। इतने में उसके पिता अमितगति गंगावर्त से आए, परिजन ने विनय किया। स्नान, भोजन के बाद वे जब ऊपर महल में बैठे तब चित्रमाला के साथ मैं भी वहाँ गई, कुशल-प्रवृत्ति पूछने के बाद चित्रलेखा ने कनकमाला की सारी बातें उनसे बतलाईं, सुनते ही उनका मुँह एकदम काला हो गया, उन्होंने कहा, मेरे ऊपर बड़ा संकट आ गया। चित्रमाला ने पूछा प्रियतम! संकट का कारण क्या है? अमितगति ने कहा, प्रियतमे? राजकार्य से मैं यहाँ से गंगावर्त पहुँचकर सभा में श्री गंधवाहन विद्याधर राज के पास बैठा और विनयपूर्वक राज कार्य बतलाया। इतने में एक विद्याधरकुमार ने सभा में प्रवेश किया और प्रणाम कर के कहने लगा, देव? विद्याधरचक्रवर्ती आपके पिता सुरवाहन जिन्हें सर्व विद्याएँ सिद्ध थीं, जो सुरासुरमनुज लोक में विख्यात थे, विद्याधर राजलक्ष्मी का अनुभव कर के अपने पद पर आपको स्थापित कर के सांसारिक विभूति की असारता जानकर जिन्होंने चित्रांगदमुनिवर के पास श्रीऋषभदेव जिनेश्वर प्ररूपित सर्वविरतिरूप चारित्र्य ग्रहण किया, गुरु के पास अभ्यास कर के जो सर्वशास्त्रज्ञाता बनें।

जो सर्वदा छट्ठ अट्ठम् दशम आदि नानाप्रकार के तप में तत्पर थे, वे आपके पिता सुरवाहन विद्याधर मुनिवर आज बैताढ्य के चित्रकूट शिखर पर आए हैं, उन्हें आज लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है, उसकी बात सुनकर गन्धवाहन राजा अत्यंत प्रसन्न हुए और अपने शरीर के सभी वस्त्र-आभूषण उसको पहनाकर कोषाध्यक्ष को आदेश देकर साढ़े तेरह करोड़ सोना मोहर प्रीतिदान दिलवाया। उसके बाद राजा विद्याधरों के साथ पिताजी की वंदना के लिए चले, उनके पीछे विद्यारचित श्रेष्ठ विमान पर चढ़े परिजन तथा सुंदर वेश विभूषित नागरिक भी चले, मुनिचरण की वंदना के लिए मैं भी उनके साथ चला, वहाँ पहुँचने पर चतुर्विध देवनिकाय को चित्रकूट पर उतरतें देखकर राजा अत्यंत प्रसन्न हुए। बड़ी शीघ्रता से उनके पास पहुँचकर तीन बार प्रदक्षिणा कर के भक्ति के साथ नमस्कार कर के उनकी स्तुति की, उनके पास की भूमि पर बैठ गए। इतने में परोपकार परायण केवली भगवंत ने गम्भीवाणी में देशना प्रारंभ की कि कर्माधीन जीवों के लिए मनुजत्व अत्यंत दुर्लभ हैं, यह शरीर रोग शोक व्याधि का मंदिर है, मनुष्यों की लक्ष्मी पवन से चंचल ध्वज वस्त्र के समान अत्यंत चंचल है, विषयसुख परिणाम भयंकर तथा नरक में कारण हैं, मिथ्या विकल्प से जीघों को संसार सुखमय प्रतीत होता है, मृत्यु जीवों का सतत अपहरण करती है, अतः हे भद्र ? केवलि प्ररूपित धर्म को छोड़कर जीवों को बचानेवाला कोई अन्य तत्त्व नहीं है, अतः दुर्लभ मनुष्य भव प्राप्त कर भागवती दीक्षा लेकर कर्मशत्रुओं का विनाश कर के मोक्ष को प्राप्त करें।

इस प्रकार केवली की देशना सुनकर, हाथ जोड़कर गंधवाहन राजा ने कहा, भगवंत ? आपका वचन सर्वथा सत्य है, मैं अपने पुत्र नभोवाहन को विद्यासहित राज्य देकर गृहवास का त्याग करता हूँ। इसके बाद अवसर पाकर प्रणाम कर के मैंने केवलिमुनि से पूछा कि भगवन् ? विज्ञान रूप सम्पन्न प्राणों से भी अधिक प्यारी कनकमाला नाम की मुझे एक ही पुत्री है, उसका हृदयवल्लभ स्वामी कौन होगा ? मेरे मन की शांति के लिए मुझे बतलाएँ कि कौन विद्याधर उसका पाणिग्रहण करेगा ? ऐसा पूछने पर केवली ने कहा, भद्र ! इस साधारण बात के लिए चिंता क्यों करते हो ? तुम्हारी पुत्री का भर्ता वह होगा जो इस वैताढ्य पर्वत पर विद्याधरचक्रवर्तित्व का पालन करेगा। तुम्हारी पुत्री उसकी सकल अंतःपुर में प्रधान प्राणप्रिया महादेवी (पटरानी) होगी। केवली के वचन को सुनकर मुझे बड़ा आनंद हुआ, इतने में मुनि की वंदना कर के राजा उठे, उसके बाद राजा के साथ उसी नगर में आया। राजा ने बड़े प्रेम से कहा कि लोकमर्यादा के अनुसार अत्यंत प्रिय होने पर भी लड़की तो किसी को देनी ही होगी, इसलिए आप अपनी पुत्री मेरे पुत्र नभोवाहन को दीजिए जिससे कि विवाह विधि सम्पन्न कर के नभोवाहन को अपने पद पर रखकर मैं पिताजी के चरणों की सेवा में लग जाऊँ, उसके बाद मैंने कहा कि पुत्री की तो बात ही क्या मेरे प्राण भी आपके अधीन है। वह लड़की भी कितनी भाग्यशालिनी होगी जो आपकी पुत्रवधू होगी। केवली के वचन से भी ऐसा ही लगता है क्यों कि आपके पुत्र को छोड़कर दूसरा इस वैताढ्य पर विद्याधर चक्रवर्ती होगा ही कौन ? मेरी बात सुनकर राजा का मुखकमल प्रसन्न हो गया और उसने सोमयश ज्योतिषी को बुलाकर

विवाहलग्न निकालने का आदेश दे दिया, ज्योतिषी ने वैशाख शुल्क पंचमी की रात्रि में विवाह का सुंदर लग्न बतलाया। तब मैंने राजा से कहा कि मुझे जाने की आज्ञा दीजिए जिससे कि अपने नगर जाकर मैं विवाह की तैयारी करूँ, प्रिये ? उनसे आज्ञा लेकर उनके मंत्री चंद्रयश आदित्य यश के साथ मैं यहाँ आया हूँ, वे लोग भी कनकमाला वरण के लिए मेरे साथ ही आ गए हैं, कल प्रातः-काल कनकमाला का वरण होगा।

ऐसी स्थिति में कनकमाला एक ही अत्यंत प्रिय पुत्री है, इसका अनुराग चित्रवेग में हो गया है, इसका मनोनुकूल विवाह यदि मैं नहीं कर पाता हूँ, तो मेरा जीवन बेकार हो जाता है। उधर राजा ने भी बड़े उपचार से कनकमाला की याचना की है और मैंने भी उनका वचन मान लिया है, अब मैं अपनी बात बदल नहीं सकता हूँ, प्रिये ? यही मेरे संकट का कारण है, उनका बात सुनकर चित्रवेग ? मेरी स्वामिनी चित्रमाला का भी मुख मलिन हो गया, फिर उसने कहा कि मुझे तो ऐसा लगता है कि चित्रवेग के विरह में कनकमाला अवश्य मरेगी, क्यों कि उसके साथ विवाह का आश्वासन देने से ही तो वह अभी तक जी रही है, अमितगति ने कहा कि ऐसी स्थिति में मैं क्या करूँ ? लड़की नहीं देने से राजा अत्यंत रुष्ट हो जाएँगे जिससे मेरी बड़ी हानि होगी। इस वैताढ्य पर्वत पर मेरा रहना भी भारी हो जाएगा, दूसरा अनिष्ट भी हो सकता है, इतना ही नहीं वह बलपूर्वक भी लड़की ले सकता है इससे तो प्रेम से स्वयं लड़की दे देना अच्छा होगा। अगर चित्रवेग के साथ इसका विवाह कराता हूँ तो चित्रवेग भी मारा जायगा और हम भी मारे जाएँगे। इसलिए सुंदरि !

दूसरा विकल्प छोड़कर कनकमाला से कहो कि वह चित्रवेग का मोह छोड़ दे !

दूसरी बात यह है कि वह राजकुमार कुलीन प्रियंवद, शूर, धीर, त्यागी, पिता की लक्ष्मी से अलंकृत, रूप यौवन, कला, विद्या आदि से अत्यंत गुणवान है अतः उसके साथ ही कनकमाला का विवाह अच्छा होगा। उनकी बात सुनकर चित्रमाला ने मुझ से कहा कि सोमलते ? अब इसका क्या उपाय करना चाहिए ? मैंने कहा उपाय तो आप ही जानती होगी क्यों कि उसका स्वरूप आपने देख लिया है, फिर उसने मुझ से कहा कि तुम जाकर उसका भाव लो, वह दूसरे पुरुष को चाहती है नहीं ? इतना ही नहीं उसके सामने उसराज कुमार की प्रशंसा और चित्रवेग की कुछ निंदा कर के भी उसे मनाओ। इस पर मैंने कहा, स्वामिनि ? क्या आप अपनी पुत्री का स्वभाव नहीं जानती हैं ? जिससे मुझे यह आदेश दे रही हैं, मैं तो मानती हूँ कि दूसरे के साथ विवाह करने की बात तो दूर रहे, इस समाचार को सुनते ही वह मर जाएगी, मेरी बात सुनकर अत्यंत दुःख से रोती हुई चित्रलेखा ने कहा कि भद्रे ! मेरे मन में भी यही बात आती है, हाय ! दुष्ट विधाता ने यह क्या कर दिया ? इसके बाद बड़े शोक से रोती हुई प्रिया को देखकर अमितगति ने कहा, सुंदरि ! रोने से क्या होगा ? मुझे भी क्या दुःख नहीं होता ? कितना सोचने पर भी मैं दूसरा उपाय नहीं देख रहा हूँ, अतः परिणाम का चिंतन करो, राजपुत्र को लड़की नहीं देने में गुणदोष का विचार करो, दूसरी बात यह भी है कि कनकमाला को माता-पिता के प्रति बड़ा बहुमान है, गुण-दोष का विचार कर वह हमारे वचन के प्रतिकूल नहीं चलेगी। इतना ही नहीं, माता-पिता के विचार से ही लड़की की शादी की

जाती है और स्वयंवर भी कराया जाता है, सुंदरि ? मैं मानता हूँ, कामदेव समान सुंदर उस राजपुत्र को देखते ही कनकमाला चित्रवेग के प्रति अनुराग छोड़ देगी और हमारा संकट भी दूर हो जाएगा। उनकी बात सुनकर चित्रकला ने मुझसे कनकमाला को मनाने के लिए आदेश दिया, अच्छा, कहकर मैं वहाँ से उठ गई, चंदना दासी से मैंने पूछा कि कनकमाला कहाँ है ? उसने कहा कि अभी ऊपर महल से उतरकर बगीचे की तरफ गई हैं किंतु उनका चेहरा अत्यंत मलिन था, उसकी बात सुनते ही मैं समझ गई कि छुपकर उसने पिता की बात सुन ली है। अतः वहाँ जाकर जब तक कुछ अनिष्ट नहीं कर पाती है तब तक मैं जाकर रोकूँ। यह सोचकर मैं भी उसी रास्ते से उद्यान तरफ चली। वहाँ पहुँचकर उसको ढूँढने के लिए इधर-उधर घूम रही थी, इतने में कदली गृहमनोहर उसी उद्यान के एक भाग में घने पत्तोंवाले तमाल गृह के नीचे बैठी हुई उसको देखा। तब मैंने सोचा कि घर छोड़कर अकेली यह बगीचे में क्यों चली आई है ? पिता की बात सुनने के बाद यह क्या करती है ? यह जानने के लिए चुपचाप केले के स्तम्भ की ओट में छिपकर मैं देखने लगी, कुमार ! उसके बाद जो हुआ सो आप सुनिए। लम्बी साँस लेकर वह बोलती है कि अब संकल्प विकल्प से क्या। विधाता की प्रतिकूलता से मुझ अभागिन का उस प्रियतम के साथ जब संगम नहीं हुआ, इतना ही नहीं, दर्शन की भी आशा नहीं र ी तो हृदय ! तू फूट क्यों नहीं जाता ? पिताजी के वचन सुनने के बाद भी जो तू फूट नहीं गया, इससे मैं मानती हूँ, तू वज्र से भी अधिक कठोर है, मेरे हृदय में जो अभिमान था कि माता-पिता का मेरे ऊपर बहुत स्नेह है, आज वह अभिमान भी नष्ट हो गया क्योंकि यह कार्य सुखसाध्य

ही है, यह कहकर माताजी ने मुझे ठग दिया। "तू जिसको चाहेगी, उसी के साथ तेरा विवाह कर दूँगा" यह कहकर भी पिताजी ने आज अपनी बात बदल ली, तो फिर मेरे लिए इष्ट संगम की आशा ही नहीं रह जाती। इस बात को जानकर भी हृदय ? तू अपनी आशा क्यों नहीं छोड़ देता ? अथवा पिताजी का क्या दोष है ? क्यों कि वे तो राजा के अधीन हैं भृत्यभाव से बढ़कर दुःखदायी और हो ही क्या सकता है ? कोई काम से भी अधिक सुंदर क्यों न हो ? कुबेर मे भी अधिक धनवान क्यों न हो ? साक्षात इन्द्र ही क्यों न हों, मैं तो अपने हृदयवल्लभ को छोड़कर अन्य किसी को भी नहीं चाहती हूँ, हृदय ! तो तू अपना चिंतित कार्य शीघ्र क्यों नहीं कर लेता ? ऐसा कर लेने से पिताजी के ऊपर भी दोष नहीं आएगा और मेरे वियोग-दुःख का भी अंत हो जाएगा, इस प्रकार मरने का निश्चय करके चित्रवेग ? वह बाला तमाल वृक्ष पर चढ़ गई। उसके साहस को देखकर मेरा शरीर कँपने लगा, मुख से आवाज़ नहीं निकलती थी। शरीर की संधियाँ शिथिल पड़ गईं, उसने तमाल वृक्ष की डाल में उत्तरीय वस्त्र से अपनी ग्रीवा को बाँधा, और बोलने लगी कि माताजी ? मैंने बाल्यकाल से जो आपको अनेक क्लेश, दिए आप उसके लिए क्षमा करेंगी। पिताजी ? आप भी क्षमा करेंगे क्यों कि आपको भी मैंने बहुत कष्ट दिया था। सोमलते ? तू भी क्षमा करना। सखी वर्ग ? जो कुछ मैंने अपराध किया हो, क्षमा करना। हृदयवल्लभ ? प्राण त्याग करते समय आपसे मैं कुछ प्रार्थना करती हूँ, आप सुनें, इस भव में मुझे आपका संगम प्राप्त नहीं हुआ, अतः स्वामिन् ? अन्य भव में भी आप ही मेरे वल्लभ हों, यद्यपि मेरा यह वचन अत्यंत निष्ठुर है, फिर भी आपसे कहती हूँ कि आप मेरे हृदय से निकल

जाएँ, नहीं तो पाश से जब कण्ठ बेध जाएगा तो आप उससे निकल नहीं पाएँगे, मैं मानती हूँ विधाता को मुझे मारने का दूसरा उपाय नहीं था, इसलिए ही आपका दर्शन कराया। वनदेवताएँ ? आप से मेरी प्रार्थना है कि आपकी कृपा से अन्य भव में मेरे वही भर्ता हों, यह कहकर ज्यों ही वह अपने को अधोमुख करके मरने के लिए तैयार हुई, इतने में एकाएक आकाशवाणी हुई कि भद्रे ? यह साहस मत करो वही चित्रवेग तेरा भर्ता होगा, उसी लग्न दिन में उसके साथ तेंरा पाणिग्रहण होगा, सुंदरि ? इस विषय में थोड़ा भी विषाद मत कर, इस प्रकार आकाशवाणी होते ही उसका पाश टूट गया, आकाशवाणी से ही मेरा भय छूट गया। और स्वस्थ होकर मैं उसके पास पहुँच गई, वह लज्जित हो गई, मैंने कहा, पुत्रि ? माता-पिता को दुःख देनेवाला यह काम तुझे करना चाहिए ? उसने कहा माताजी ? मेरे सामने मरना छोड़कर क्या दूसरा कोई उपाय था ? मुझे मरना अच्छा लगता है, अति दुःसह विरह किसी भी तरह अच्छा नहीं, मरने से विरह के सारे दुःख समाप्त हो जाते हैं, तब मैंने उससे सारी बातें कह दीं, और पूछा कि अब तू क्या करना चाहती हो ? उसने लज्जा छोड़कर मुझ से कहा कि इस जन्म में अन्य पुरुष के हाथसे मेरा हाथ नहीं लग सकता। हँसकर मैंने कहा कि देवता के वचन से यह बात तो सिद्ध ही है किंतु तेरे पिताजीं गंधवाहन से कैसे छुटकारा पा सकतें हैं ? इतने में फिर आकाशवाणी हुई कि विकल्प मत करो, सुनो, सोमलता जाकर इसके पिताजी से कहे कि बहुत समझाने पर कनकमाला बोलती है कि पिताजीं जो कुछ करते हैं वह मुझे सर्वथा मान्य है, उनके लिए जो अच्छा होगा वही मुझे करना चाहिए। इसके बाद वह वरण आदि को हर्ष से स्वीकार

करे, इसों में इष्ट प्राप्ति होगी। देवता के वचन को सुनकर चित्र-वेग ! हमारे चित्त में बहुत संतोष हुआ, तब मैंने कहा, पुत्रि ? अब इष्ट प्राप्ति में संदेह छोड़कर कपट से भी माता-पिता का कहना मान। देवता की बात किसी से कहना नहीं, नहीं तो जान लेने पर वह राजा कुछ प्रतिकूल काम कर बैठेगा। सब से पहले तेरे वल्लभ का अनिष्ट करेगा। तब कनकमाला ने कहा, यह सत्य है, इसमें कोई संदेह नहीं, अब आप इस कार्य के लिए प्रयत्न करें, तब मैंने जाकर चित्रमाला से कहा कि बहुत समझाने पर वह मान गई और वह कहती है कि पिताजी जो कहते हैं और माताजी जो चाहती है मैं उसको सर्वथा मानती हूँ, तब प्रसन्न होकर चित्रमाला ने अपने स्वामी से कनकमाला को बात बताई। वे अत्यंत खुश हो गए और उन्होंने कहा कि हमारी बात मानकर उसने पिता-माता के प्रति अपनी अपूर्व भक्ति दिखलाई है, तब प्रातःकाल में वड़े उत्साह के साथ कनकमाला की वरण-विधि समाप्त हुई।

ऐसी स्थिति में कनकमाला के वचन से आपकी प्रसन्नता के लिए मैं उन बातों को कहने के लिए आपके पास आई हूँ, इसलिए सुंदर ! वरण की बात से आप दुःखी न हों, क्यों कि देवता-वचन कभी मिथ्या नहीं होता। कनकभाला ने कहलवाया है कि " नाथ ! आपको छोड़कर इस जन्म में मैं किसी के हाथ से अपना हाथ नहीं लगाऊँगी। देवता-वचन यदि सत्य हुआ तो मैं प्राणधारण करूँगी अन्यथा फिर मरण ही मेरा शरण होगा। हे सुप्रतिष्ठ ! सोमलता की बात सुनकर मेरे चित्त में कुछ शांति हुई और फिर मैंने मन में सोचा कि केवली के वचनानुसार भी पूर्वभव स्नेहबद्धा होने से यह मेरी भार्या होगी क्यों कि दर्शनमात्र से हम दोनों का यह पारस्परिक अनुराग अवश्य पूर्वभव संबंध को

सूचित करता है। किंतु मुझे आश्चर्य लगता है कि राजपुत्र से वरण हो जाने पर फिर मेरी भार्या कैसे होगी? यह सोचकर पान देते हुए मैंने उससे कहा कि जो कुछ होगा आप देखेंगी। बहुत अच्छा।" कहकर वह अपने घर चली गई, इसके बाद भानुवेग ने कहा कि उस स्वप्न का कुछ स्वरूप मेरे मन में आया है आप सुनें, यह कनकमाला ही माला थी। उसमें राग ही माला का ग्रहण करना था। वरण उसकी अप्राप्ति थी। इतना तो स्पष्ट है, कुछ अस्पष्ट स्वरूप यह है कि– कोई (मित्र) उपाय से आपको कनकमाला अर्पित करेगा, वह फिर आपके हाथ से चली जाएगी और आप विपत्ति को प्राप्त करेंगे। अंत में फिर कोई उसे लाकर आपको अर्पित करेगा। उसकी बात सुनकर मैंने कहा कि आपके द्वारा बतलाया गया स्वप्न का स्वरूप बिलकुल सत्य है किंतु उसकी प्राप्ति अत्यंत असंभव है। तब उसने कहा कि अनुकूल रहने पर लोक में असंभवित वस्तु भी संभवित बन जाती है। हे सुप्रतिष्ठ! उसकी प्राप्ति की आशा से उसकी कथा करते-करते बहुत दिन बीत गए। लग्न का दिन भी नज़दीक आ गया। तब अनेक विद्याधरों के साथ अपने बंधुओं सहित विद्याधर राजपुत्र नभोवाहन विवाह के लिए पहुँच गया, वह पंचमी तिथि भी आ गई। अपराण्ह समय में मेरे मन में विकल्प उठा कि क्या देवता-वचन मिथ्या होगा? अथवा उसके अनुरूप कुछ नहीं देखने से लगता है कि सोमलता की बातें बिलकुल झूठ निकलीं, इस प्रकार चिंतन करने के बाद वहाँ शांति नहीं मिलने से मैं नगर से निकलकर उसी उद्यान में गया जहाँ मैंने उसे देखा था, जिस वृक्ष में दोला लगी थी वहाँ जाकर बैठ गया और मैं सोचने लगा कि अब मुझे क्या करना चाहिए। मेरे देखते मेरी प्रिया दूसरे के हाथ

चली गई देवता-वचन की आशा से कुछ उपाय भी नहीं किया, अब अभी मैं कुछ कर भी नहीं सकता हूँ, यह अनुराग यों ही टूटनेवाला नहीं है, विरहजनित संताप प्रत्येक क्षण में बढ़ता है। दुर्लभजन में जिसका अनुराग होता है वह पल्वल के जल की तरह अवश्य सूखता रहता है। प्रिया संगम की आशा टूटने पर अब मैं अपने मन को कैसे व्यवस्थित रक्खूँ? केवल प्राणत्याग से ही विरह दुखः की शांति हो सकती है। यद्यपि विवेकी उत्तम-पुरुष के लिए प्राणत्याग उचित नहीं फिर भी उसके विरह में मैं जी नहीं सकता। अतः उसकी दोला से पवित्र इस वृक्ष पर चढ़कर फाँसी लगाकर मैं प्राणत्याग कर लेता हूँ, यह सोचकर उस वृक्ष पर चढ़ा और गले में पाश लगाकर मैं बोला कि रे दैव? तुझ से यही प्रार्थना है कि अन्य जन्म में अप्राप्यजन में स्नेह नहीं करना, रे दैव? केवली का वचन, देवता की वाणी, वह स्वप्न, तूने सब को असत्य बनाया, यह कहकर ज्यों ही मैं नीचे को गिरा, इतने में किसी ने चिल्लाकर मुझ से कहा कि भद्र! यह अनुचित साहस मत करो, यह तो कायरों का काम है, इतने में किसी ने आकर लटकते हुए मेरे शरीर को ऊपर उठाकर पाश काटकर शीतल पवन का उपचार किया, शीतल जल से सींचकर संपूर्ण शरीर का मालिश मर्दन किया, मूर्च्छा टूटने पर कोमल पल्लव की शय्या पर मुझे सुलाया। इस प्रकार अनेक उपचार से होश में आने पर सामने एक विशिष्ट आकृतिवाले नवयौवन साक्षात् कामदेव के समान सुंदर पुरुष को देखा। उसने

कहा, भद्र ? क्या तकलीफ है ? मैंने अपना गला दिखलाया। संवाहन से उसने गला भी ठीक कर दिया। पीड़ा शांत होने पर स्वस्थ होकर मैं पल्लव रचित शय्या पर बैठा और लंबी साँस लेकर फिर उसी के विषय में चिंतन करने लगा।

पाशविमोचन नाम चतुर्थ परिच्छेद समाप्त।

० ० ०

पंचम परिच्छेद

उसके बाद आँसू बहाते हुए करतल पर कपोल रखे मलिन मुख मुझको देखकर उसने कहा, सुंदर ! आप जैसे उत्तम पुरुषों के लिए आत्मवध करना उचित नहीं, यह काम तो पामरों का है और कुगति देनेवाला है । दूसरे, आप कौन हैं ? क्यों आपने ऐसा करना चाहा था ? आप क्यों दुःखी हैं ? और क्यों इतने आँसू बहाते हैं ? लंबी साँस लेकर मैंने कहा, सुंदर ? इस विफल बात को कहने से क्या ? जिस बात को कहने से कोई लाभ हो तो उसे कहना चाहिए अन्यथा तुष-खंडन जैसी बेकार बात बोलने से क्या लाभ ? कार्य नष्ट हो जाने के बाद उसके विषय में कुछ कहना पानी वह जाने के बाद बंधा-बाँधना जैसा है, मैं तो असह्य दु.ख से मुक्त होने के लिए आत्मवध करने के लिए तैयार था। आपने मुझे क्यों रोक दिया ? इसलिए अब फिर आप विघ्न न दें, तब उसने कहा, भद्र ? आप ऐसा मत करें, आप इसका कारण बतलाइए जिससे कि उसके लिए कुछ उपाय किया जाए, तब मैंने शुरू से लेकर फांसी लगाने तक की बात मैंने उससे बतलाई, उसको सुनकर सुप्रतिष्ठ ! उसने मुझ से कहा कि एक युवती के लिए आप जैसे नीति-कुशल उत्तम पुरुष को ऐसा नहीं करना चाहिए क्यों कि जीते हुए मनुष्य कल्याण परंपरा का अनुभव करते हैं ।

दूसरे, आप तो बड़े पुण्यशाली हैं क्योंकि आप तो परस्पर बातचीत भी कर सकते हैं, देवता-वचन से कुछ आशा भी है, एक ही नगर में रहते हैं, एक-दूसरे के भाव को जान सकते हैं। मैं तो ऐसा अभागा हूँ कि उसके दर्शन की भी मुझे आशा नहीं है, फिर भी जीता हूँ, भद्र ! मैं तो अपनी प्रिया के निवास-स्थान को नहीं जानता हूँ, तब मैंने कहा कि आप अपना वृत्तांत बतलाइए क्योंकि आप अपनी प्रिया के निवास-स्थान को भी नहीं जानते ? आप किस नगर में रहते हैं ? यहाँ किस काम से आए हैं ? तब उसने कहा कि आप सावधानी से सुनें—

अनेक विद्याधर-नगरों से युक्त इसी पर्वत पर उत्तर श्रेणी में सुंदरत्रिक चतुष्कवाला, अनेक उद्यानों से रमणीय, अत्यंत विशाल प्राकार सुशोभित, इंद्रनगर जैसा सुरनंदन नाम का एक श्रेष्ठ नगर है। उस नगर में हरिश्चंद्र नामक विद्याधरेंद्र राज्य करते थे, सभी विद्याएँ जिनके अधीन थीं, सभी विद्याधर जिनके चरणकमल को प्रणाम करते थे, कमल-दल के समान जिनकी आँखें थीं। लोगों के नयन-मन को आनंद देनेवाले जो अत्यंत शूर थे, सूर्य के समान जो तेजस्वियों के तेज का नाश करनेवाले थे, जिनका प्रताप अखंडित था। मदोन्मत्त शत्रुरूप हाथी के लिए जो सिंहशावक जैसे थे, जो सभी विद्याधरों के लिए प्रसिद्ध तथा अत्यंत यशस्वी थे, कमल समान मुखवाली नीलोत्पल पत्र के समान विशाल आँखोंवाली, अत्यंत कांतिमती रत्नवती उनकी भार्या थी, उसके साथ त्रिवर्गसार विषयसुख का अनुभव करते हुए उनको उस भार्या में देवकुमार जैसा एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसका नाम प्रभंजन रक्खा गया। उसके बाद असाधारण रूप लावण्यवाली बंधुसुंदरी नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। क्रमशः दोनों प्रथम

यौवन में आए, परस्पर अत्यंत स्नेहवाले उन दोनों में एक दिन एकांत में बातचीत हुई, प्रभंजन ने कहा कि तेरी प्रथम संतान मेरे प्रथम पुत्र को देना, उन दोनों का परस्पर संबंध हम बड़े उत्साह से कराएँगे। भाई के ऊपर अत्यंत स्नेह होने से बंधुसुंदरी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

इधर वैताढ्य की उत्तर श्रेणी में सब ऋतुओं में फलने-फूलनेवाले वृक्षों से सुशोभित चमरचंचा नाम का एक नगर है, उस नगर में कामदेव से भी सुंदर कामिनियों के मन को आनंद देनेवाले अत्यंत बलशाली भानुगति नामक विद्याधरराज हैं, विद्याधरेन्द्र हरिश्चंद्र ने अपनी पुत्री बंधुसुंदरी भानुगति को दी, और भानुगति ने बड़े प्रेम से उसके साथ विवाह किया। उस सुंदरी के साथ भानुगति पाँचों विषयों का अनुभव करते हुए राज्य करते हैं, कुछ दिनों के बाद देवी बंधुसुंदरी को एक कन्या हुई। जो अपने रूप से दिशाओं को प्रकाशित करती थी। उसका नाम 'चित्रलेखा' रक्खा गया, उसके बाद देवी ने सुंदर स्वप्नों से सूचित पुत्र को शुभतिथि नक्षत्र में जन्म दिया, जिसका नाम रक्खा गया चित्रगति। इधर हरिश्चंद राजा सुमुखनामक चारण श्रमण के पास सिद्धि सुखदायी जिन धर्म को सुनकर अपने पद पर प्रभंजन को स्थापित कर के दीक्षा लेकर उन्हीं चारण श्रमण के आश्रय में श्रामण्य का विधिपूर्वक पालन कर के कर्म-समूह का विनाश कर अंतकृत केवली हुए, प्रतापी विद्याधरराज प्रभंजन निःशंकभाव से पिता से प्राप्त राज्य को भोगते हैं, सकल अंतःपुर में प्रधान उत्तमकुल में उत्पन्न कलहँसी और मंजूषा दो रानियाँ थीं, कलहँसी को ज्वलनप्रभ नाम का पुत्र हुआ और मंजूषा को

भी कनकप्रभ नाम का पुत्र हुआ। बंधु सुंदरी ने अपनी पुत्री चित्रलेखा को युवावस्था प्राप्त देखकर अपने भाई के वचन को स्मरण कर अपने पति भानुगति से अपने भाई की बात बतलाई, भानुगति ने अपनी पुत्री चित्रलेखा प्रभंजन के बड़े पुत्र ज्वलनप्रभ को दी। उसने भी बड़ी प्रीति से उसके साथ विवाह कर के अपने नगर में उसको लाया और देवलोक में देव के समान उसके साथ विषयभोग करता है।

एक समय विद्याधरराज प्रभंजन आकाश में चंद्र के समान धवल एक भवन को देखकर सोचने लगे कि यह कितना सुंदर भवन है ? ऐसा ही सुंदर जिन-मंदिर बनवाता हूँ, ज्यों ही मणिकुट्टिम में उस भवन का चित्र खींचने के लिए तैयार हुए, इतने में पवन के झकोरे से वह बादल नष्ट हो गया। यह देखकर वे सोचने लगे कि मनुष्य की लक्ष्मी भी इसी प्रकार चंचल है। इस संसार के रूप-यौवन बंधु सम्बंध आदि सभी पदार्थ क्षण मात्र आनंद देनेवाले हैं, वस्तुतः सब अनित्य हैं। अतः संसारवास को धिक्कार है, विषयासक्त जीव अनित्य वस्तु को भी नित्य मानते हैं यह अविवेक की महिमा है, जिनवचन को जानते हुए भी कामासक्त जीव आरम्भ परिग्रह में रहते हैं, यह महामोह का माहात्म्य है, इसलिए जिनेंद्रवचन को जानते हुए भी मेरे लिए दुःखमूल संसार निवास कारण इस राज्य से क्या ? अतः सावध कर्म को छोड़कर मैं प्रव्रज्या के लिए उद्यम करूँ, दूसरी बात यह है कि मेरे सभी पूर्वज राजा अपने पुत्रों को राज्य देकर श्रामण्य पालन कर के सुगति को प्राप्त हुए हैं, तो फिर मुझे भी ऐसा ही करना चाहिए। यह सोचकर राजा पास के विद्याधरों से कहते हैं; इतने में चतुर्ज्ञानी सुघोष नामक चारणमुनि भविकों को प्रतिबोध देने के लिए वहाँ

आए, प्रभंजन राजा ज्वलनप्रभ को राज्य और कनकप्रभ को प्रज्ञप्ति विद्या देकर सुधोष मुनि के पास दीक्षित होकर श्रामण्य पालन में लीन हो गए।

ज्वलनप्रभ चित्रलेखा के साथ राजलक्ष्मी का उपभोग करता है, विधिपूर्वक प्रज्ञप्तिविद्या का-साधन कर के उस विद्या के प्रभाव से कनकप्रभ अत्यंत प्रभाव शाली बन गया। अपने कुल की प्रतिष्ठा को छोड़कर अपयश दुर्गतिगमन आदि का विचार नहीं करते हुए राजलक्ष्मी के लोभ से कनकप्रभ ने बड़े भाई ज्वलनप्रभ से राज्य को छीनकर अपने तेज तथा सामादि के प्रयोग से विद्याधरों को अपने वश में कर के ज्वलनप्रभ को अपनी भूमि से निकाल दिया। वह अपने श्वशुर के पास चमरचंच नगर में आया, श्वशुर ने बहुमानपूर्वक अपने नगर में उनका प्रवेश कराया। चित्रलेखा के साथ उस नगर में रहते हुए उनके बहुत दिन बीत गए, एक समय ज्वलनप्रभ अपने साले चित्रगति के साथ नगर से निकल कर सुंदर वृक्षोंवाले अनेक उपवनों को भारंड चक्रवाक आदि अनेक पक्षियों से सुशोभित स्वच्छ जलवाले सरोवरों को सफेद कांतिवाले पर्वत के शिखरों को देखते हुए किन्नर मिथुनों से अलंकृत कदली गृह से शोभित कोयलों के कलकण्ठ से रमणीय भ्रमरों के झांकर से मधुर फलभार से नमें सैकड़ों वृक्षोंवाले एक वन निकुंज में प्राप्त हुआ। वहाँ उसने मंद-मंद पवन से आंदोलित पल्लवोंवाले रक्ताशोक वृक्ष के नीचे सुवर्ण-कमल पर विराजमान एक मुनिवर को देखा, मुनि को अभी-अभी केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था। इसीलिए विद्याधर किन्नर आदि नमस्कार करके उनकी स्तुति कर रहे थे। नज़दीक जाने पर ज्वलनप्रभ ने अपने पिता को पहचान कर चित्रगति से बतलाया। हर्ष से रोमांचित होते हुए दोनों ने तीन

बार प्रदक्षिणा की और केवली के चरणकमल को प्रणाम करके दोनों भूमि पर बैठ गए। उसके बाद सजल बादल के गर्जन को जीतनेवाली गंभीर वाणी से केवली नें उस सभा में अपनी देशना प्रारंभ की कि मनुष्यों की लक्ष्मी हाथी के कान के समान चंचल हैं, आयु अनित्य हैं, यौवन जरा से ग्रसित है, शरीर सैकड़ों रोगों से पीडित है। विषय कुगति के कारण और तुच्छ हैं, भ्रम से ही संसार में सारभूत वस्तु देखने में आती है, यह संसार सर्वथा दुःखमय है, यह जानकर आप लोग जिनधर्म का आश्रयण करें, भव समुद्र में यह अपूर्व सामग्री प्राप्त हुई है। इसको सर्वथा सार्थक करें। भव समुद्र परिभ्रमण से बचानेवाला केवल जिन-दर्शन ही है, अतः भागवती दीक्षा लेकर संयम पालन करके संसार का विनाश करके सिद्ध गति को प्राप्त करें। इस प्रकार केवली की देशना सुनकर कुछ लोगों ने प्रव्रज्या ले ली, कुछ उपासक बनें। और कुछ लोगों ने सम्यक्त्व प्राप्त किया, इतने में प्रणाम करते हुए ज्वलनप्रभ ने अपने पिता केवली से पूछा कि भगवन् ? क्या फिर मेरा राज्य मुझे मिलेगा या नहीं? केवली ने कहा कि भानुगति से दी गई रोहिणी विद्या सिद्ध होने पर फिर राज्य मिल जाएगा, इसमें संशय नहीं। केवलीं से राज्य प्राप्ति की बात जनकर प्रसन्न होकर ज्वलनप्रभ और चित्रगति ने उनकी वंदना की और सभा समाप्त हुई।

उसके बाद दोनों अपने नगर आए। चित्रगति ने अपने पिता से केवली की बात बतलाई। भानुगति ने शुभ नक्षत्र में दोनों को एक साथ रोहिणी विद्या दी। और कहा कि बस्ती में ही करजाप विधान से छ, महींनें तक पूर्वसेवा करो, यह सेवा एक साथ ही होगी किंतु उत्तर सेवा क्रमशः होगी। यह सेवा जंगल

में ही करनी पड़ेगी । एक के साधन करते समय दूसरे को उत्तर-साधक रूप में रहना पड़ेगा । बड़ी से बड़ी विभीषिकाओं में मन को स्थिर रखना होगा । सातवाँ महीना पूरा होने पर विद्या दर्शन देगी । राजा के इस प्रकार कहने पर उनके चरणकमल को प्रणाम कर दोनों ने पूर्व सेवा प्रारम्भ की, छः, महीने पर बीतने सातवें महीने में जंगल में जाकर ज्वलनप्रभ ने पहले जप-होमादि के द्वारा उत्तर सेवा शुरू की और वसुनंदक खड्ग लेकर चित्रगति उसका रक्षक बना । दूसरे दिन भय से अत्यंत काँपती हुई दौड़कर आई हुई चित्र लेखा को देखकर चित्रगति ने उससे पूछा, भद्रे ? इस घोर जंगल में तुम अकेली कैसे आ गई ? किसके भय से इस प्रकार काँप रही हो ? उसने कहा कि दास-दासियों के साथ नगर से निकलकर उद्यान में आकर कामदेव की पूजा कर के जब मैं अपने घर आ रही थी इतने में किसी ने मुझे विमोहित कर दिया । परिजन को छोड़कर मैं भागती हुई इस जंगल में आई और मैंने कनकप्रभ को देखा, उसने मुझ से कहा कि " तुम मेरी इच्छा करो । " मैंने बड़े कठोर शब्दों से उसकी निंदा की, उसने तलवार दिखाकर मुझ से कहा कि अगर तुम मुझे नहीं चाहोगी तो तुम्हारा सिर काट लूँगा । उसके भय से वहाँ से भागकर मैं आपके पास आई हूँ, आप मुझे उस पापी से बचाइए, वह इस प्रकार बोल ही रही थी कि इतने में एकाएक आकर उसका हाथ पकड़कर कनकप्रभ आकाश में उड़ गया । बचाओ, बचाओ, यह कहकर विलाप करती हुई उसके द्वारा हरकर ले जाई जाती हुई बहन को देखकर चित्रगति ने भी तेज तलवार लेकर " ठहर-ठहर नीच ? अब तू कहाँ जाएगा ? अपना पुरुषार्थ दिखा " यह कहते हुए उसका पीछा किया । विमोहिनी विद्या से चित्रगति को विमोहित कर कनकप्रभ अपने

नगर सुरनंदन आ गया । चित्रगति भी उसके पीछे-पीछे चलकर सुरनंदन नगर के बाहर उद्यान में ठहर गया । वहाँ ऋषभ जिनेंद्र के मनोहर मंदिर में यात्रा समय में मिले हुए सुंदर वेशवाले जन-समूह को देखकर मंदिर में प्रवेश कर जिनेंद्र की भक्ति से पूजा करके विद्याधरों के बीच बैठ गया । एक क्षण के बाद ज्वलन प्रभ से भेजा गया दमघोष नाम का एक मनुष्य उस जिन-मंदिर में आया, चित्रगति को देखकर प्रणाम कर उसे बाहर ले जाकर उसने कहा कि आप तो बहन को छुड़ाने के लिए आकाश में उड़ गए, फिर भी ज्वलनप्रभ अपनी साधना में निश्चल रहे, मंत्र जपते हुए उन्हें निश्चल देखकर रोहिणी विद्या प्रत्यक्ष हो गई और उसने कहा कि आपकी असाधारण धीरता से मैं प्रसन्न होकर आपकी वशीभूत हो गई, अतः आप मुझे अपने कार्य के लिए आदेश दीजिए । ज्वलनप्रभ ने कहा कि मेरी भार्या को हरकर कनकप्रभ ले गया हैं, उसको शीघ्र मेरे पास लाओ । इस पर विद्या ने कहा कि प्रज्ञप्ति विद्या से कनकप्रभ को आपकी रोहिणी विद्या साधना की बात मालूम पड़ गई, अतः आपके चित्त को चंचल करने के लिए वह आपके पास आया था, और उसने यह सब कुछ माया से किया है, आपकी भार्या तो अपने भवन में शांति से विराजती है, मोहिनी विद्या से उसने चित्रगति को मोहित कर दिया है, वह अभी सुरनंदन नगर में जिन-मंदिर में बैठा है । अतः आप अपने चित्त में थोड़ी भी अशांति मत रक्खें, यह कहकर विद्या अदृष्ट हो गई, तब ज्वलनप्रभ ने मुझे आपके पास भेजा, उसकी बात सुनते ही चित्रगति का मोह टूट गया और वह स्वस्थ होकर दम-घोष के साथ अपने घर को चला । इतने में जिनेंद्र का स्नपन समाप्त होने पर लोग अनेक प्रकार के वाहन पर चढ़कर नगर में

प्रवेश करने लगे। कुछ लोग पालकी पर, कुछ रथ पर, कुछ हाथी-घोड़े, खच्चर पर चढ़कर जा रहे थे। इतने में कनकप्रभ का एक मदमत्त हाथी बिगड़ गया और नगर से निकलकर घर के द्वारों को दीवालों को तोड़ने लगा, लोगों को मारने लगा, रथों को फेंकने लगा। यमराज के समान भयंकर मुखवाले उस हाथी को देखकर लोग अपनी जान बचाने के लिए चारों तरफ भागने लगे। कौतुकवश चित्रगति भी आकाश में ठहरकर उस हाथी की विनाशकारी लीला को देखने लगा। उसने देखा कि एक युवती रथ पर जा रही थी। घोड़े हाथी से डरकर उन्मार्ग से चलने लगे, रथ टूट गया, और वह युवती नीचे गिर पड़ी, उस बिचारी की आँखें नीलकमल के समान विशाल और चंचल थीं, उसके कुंडल टूट गए थे। बाल विखर गए थे, उसके हार कांची केयूरवलय ग्रैवेयक नूपुर रत्नमाला आदि अभी आभूषण अस्तव्यस्त हो गए थे, भूमि पर गिरी हुई उसको देखकर उसको मारने के लिए हाथी उसकी ओर चला, सब लोग हाहाकार करने लगे, सुंदर अंगों तथा उपांगोंवाली चंद्रमुखी कृशोदरी विशाल नितम्बवाली वह बिचारी हाथी को अपनी ओर आते-आते देखकर भी भागने मैं सर्वथा असमर्थ थी और चंचल आँखों से किसी बचानेवाले की प्रतीक्षा कर रही थी। चित्रगति आकाश में सोचने लगा कि हाय? काम निधान इस स्त्रीरत्न का विनाश अवश्यंभावी है, यह सोच-कर आकाशमार्ग से नीचे उतरकर, उस युवती को गोद में लेकर, किसी निरुपद्रव स्थान में रखकर वस्त्र के अंचल से पवन का उपचार कर उसे शांत करने के लिए आश्वासन देने लगा, तब लज्जा और भय से संकुचित आँखों से चित्रगति को देखकर वह युवती प्रसन्नमुखी हो गई। चित्रगति भी सौंदर्य से आकृष्ट

होकर एक टक लगाकर उस युवती को देख रहा था, इतने में उसकी धाई कुछ युवतियों के साथ आकर बैठ गई, फिर मधुर वचन से उसने कहा कि "सज्जन दूसरे के कार्य को करनेवाले होते हैं" यह बात आपने हाथी से इस कन्या को बचाकर सिद्ध कर दी, आपकी ही कृपा से यह बची है, इस प्रकार उसकी प्रशंसा करके संध्या हो रही है, यह कहकर चित्रगति से आज्ञा लेकर वे स्त्रियाँ अपने नगर को चलने लगीं, उसी समय एकाएक उस कन्या ने चित्रगति के हाथ से मुद्रारत्न ले लिया और अपने हाथ के मुद्रारत्न उसको दे दिया। जब वह नगर की ओर जा रही थी बार-बार पीछे की ओर मुड़कर सतृष्ण भाव से चित्रगति की ओर देखती थी। चित्रगति भी उसके रूप से इतना आकृष्ट हुआ कि वह भी उसी दिशा की ओर देखने लगा। इस बात को देखकर दमघोष ने धीरे से कहा, कुमार! अब संध्या होने आई, अतः अब अपने स्थान को चले, बेकार विलम्ब से क्या? उसकी बात सुन-कर चित्रगति ने कुछ व्यस्तता दिखलाते हुए कहा कि मैं यों ही विलंब नहीं कर रहा हूँ। मेरे हाथ का मुद्रारत्न कहीं गिर गया है, अतः मैं उसका अन्वेषण करके कल सबेरे आऊँगा, तुम चलो और ज्वलनप्रभ से सारा वृत्तांत बतलाना, उसकी बात सुनकर दमघोष ने कुछ हँसते हुए कहा, कुमार? क्या आपने नहीं देखा है कि आपके हाथ से उस लड़की ने मुद्रारत्न ले लिया है? तो फिर व्यर्थ क्यों इस प्रकार बोलते हैं। सीधे क्यों नहीं बोलते हैं कि कन्या का ठीक-ठीक पता लगाकर आऊँगा। उसकी बात सुनकर चित्रगति ने कहा, भद्र? तुमने ठीक ही समझा है, इसके बाद दम-घोष प्रणाम करके उड़ गया। चित्रगति भी वहाँ से चलकर युगादि देव के मंदिर में चला गया। उसके बाद मैं सोचने लगा

कि उसने मेरे हाथ से मुद्रारत्न क्यों ले लिया ? और अपने हाथ का मुद्रारत्न मुझे क्यों दे दिया ? मैं उसके कुल का कैसे पता लगाऊँ ? और उसके साथ कैसे मेरा विवाह होगा ? अगर वह मेरी पत्नी बने तो मेरा जीवन सफल हो जाए। उसके बिना तो जीना भी बेकार है ? वह पुरुष धन्य है जिसके साथ उसका विवाह होगा। क्यों कि रंभागर्भ के समान कोमल उसकी भुजलता है। *और हंस के समान चालवाली है, मैं इसलिए धन्य हूँ कि हाथी* से बचाते समय उसको अपनी गोद में लिया। किंतु अच्छी तरह से उसका आलिंगन नहीं कर सका, इसलिए वंचित भी हूँ, फिर यदि कभी ऐसा समय आएगा तो मैं ठीक से आलिंगन किए बिना नहीं रहूँगा। इस प्रकार चिंतन करते-करते रात बीत गई। प्रभात होने पर जिन की वंदना करके उसके घर का पता लगाने के लिए नगर की ओर चला। नगर में जाने पर देखा तो नगर एकदम शून्य था। नगर की शोभा से रहित ठीक जंगल जैसा वह नगर देखने में आ रहा था, मैं अत्यंत चिंतित हो गया ?। क्यों यह नगर एकाएक उजड़ गया। अथवा क्या वह इन्द्रजाल है ? अथवा किसी देव ने इस स्थान से नगर का अपहरण किया है ? अथवा किसी के भय से नगर के लोग यहाँ से चले गए हैं ? इस प्रकार जब चित्रगति सोच रहा था, इतने में सामने एक मनुष्य को आते देख मधुर वचन से संबोधित करते हुए उसने पूछा, भद्र ? यह नगर क्यों लोगों से शून्य दिखता है ? तब उसने कहा कि मैं कहता हूँ–सुनिए–

आप तो जानते हैं कि प्रज्ञप्ति विद्या से गर्वित शूरवीर विद्याधरराज कनकप्रभ इस नगर का पालन करते हैं, पिता के द्वारा

बड़े भाई ज्वलनप्रभ को दिए गए राज्य को छीनकर स्वयं राजा बन गए हैं।

अपने भाई को नगर से निकाल दिया। वह अपने श्वशुर के नगर में जाकर रह गया। कनकप्रभ यहाँ राज्य करता है। श्वशुर भानुगति ने ज्वलनप्रभ को रोहिणी विद्या दी। जब वह विद्या-साधन करने के लिए गया। किंतु उनके चित्त को चंचल नहीं कर पाया। तब डरकर आते समय उसने भूल से जिन-मंदिर का उल्लंघन किया। धरणेंद्र ने पहले नियम बनाया था कि जो जिन-मंदिर का लंघन करेगा उसका विद्याच्छेद हो जाएगा। यह बात वैताढ्य पर्वत पर सब को मालूम है। अतः जिन-मंदिर का लंघन करने पर धरणेंद्र ने कनकप्रभ का विद्या-च्छेद कर दिया। ज्वलनप्रभ की विद्या सिद्ध हो गई यह जानकर, डरकर इस नगर को छोड़कर दक्षिण श्रेणी में गंगावर्त नगर में अपने श्वशुर श्री गंधवाहन राजा के शरण में गया। इस बात को जानकर नगर के लोग भयभीत होकर यह सोचकर कि अब हमारी रक्षा कौन करेगा ? नगर छोड़कर जहाँ-तहाँ चले गए। और यह नगर एकाएक शून्य हो गया। तब चित्रगति ने पूछा कि वे लोग कहाँ चले गए ? उसने कहा, कुछ लोग गगनवल्लभ नगर चले गए। कुछ लोग विजयपुर, कुछ लोग वैजयंतपुर, कुछ लोग शत्रुंजय, कुछ लोग अरिंजय, कुछ लोग नंदननगर, कुछ लोग विमलनगर, कुछ लोग रथनेपुर, कुछ लोग आनंदपुर, कुछ लोग अरिजयपुर को चले गए, कुछ लोग शकटामुख, कुछ लोग वैज-यंती को चले गए, कुछ लोग रत्नपुर, कुछ लोग श्रीनगर, कुछ लोग रत्नसंचय, कुछ लोग जलावर्त, कुछ लोग शंखनामपुर को

चले गए। यह कहकर वह मनुष्य चला गया। उसकी बात सुनकर चित्रगति मानो मुद्‌गर से पीटा न गया हो। राक्षस से निगला न गया हो, वज्र से ताड़ित न हो, इस प्रकार अत्यंत व्याकुल होकर सोचने लगा कि अब मुझे उस बाला का दर्शन कैसे होगा ? जो बाला मेरे हृदय में आनंद देनेवाली थी। उसके कुल का तथा घर का पता भी नहीं हैं, तब फिर करोड़ों लोगों से भरे इन नगरों में कैसे उसका पता लगाऊँ, किससे पूछूँ ? कौन मुझे उसका पता देगा ? कैसे वह मिलेगी ? उसके नामाक्षर भी मुझे मालूम नहीं हैं, हाय ! मैं क्या करूँ ? हृदय ! अब तू उसको क्यों याद करता है ? जब उसके स्थान का भी पता नहीं, तब अब तुझे क्या आशा है ? अथवा चिंतित होने से क्या ? धीरता का अवलंबन करके कुछ उपाय सोचता हूँ, क्यों कि उपाय से मनुष्य दुष्प्राप्य वस्तु भी प्राप्त कर लेता है। अत: केवल एक ही उपाय है कि मैं नगर से नगर में घूमकर उसका अन्वेषण करूँ, कदाचित् कोई उसका पता बतलाए, अथवा कहीं मैं स्वयं उस चंद्रमुखी को देख लूँ। यह सोचकर चित्रवेग ? वह चित्रगति दयिता वियोग से अत्यंत संतप्त होकर अपने बंधुवर्ग को छोड़कर अकेला उत्तर श्रेणी के नगरों में घूमने लगा किंतु कहीं भी उसको उस बाला का पता नहीं चला। उसके बाद में दक्षिण श्रेणी में आया। वहाँ नगरों में घूमते हुए कहीं भी उसे नहीं पाकर आज आपके इस नगर में आया हूँ, इस उद्यान में प्रवेश करते समय मुझे बड़ा अच्छा शकुन आया, मेरे दक्षिण भुज, तथा मेरी दाईं आँख फड़कने

लगी थीं, तभी मेरे मन में विकल्प उठा था कि आज अवश्य उस चंद्रमुखी का दर्शन होगा, यह सोचता हुआ मैं कदलीवन में गया। पैर धोकर एक स्थान पर बैठा, इतने में आपके शब्द को सुनकर सावधान हुआ। और सोचने लगा कि यह किसका शब्द है ? यह सोचकर ज्यों ही इस तरफ देखा कि आपको वृक्ष की शाखा में लटकता पाया। हाय ! कामदेव के समान सुंदर यह क्यों मरने जा रहा है ? यह सोचकर हाहा शब्द करता हुआ मैं आपके पास आ गया। चित्रवेग ! उसके बाद की बात तो आप जानते ही हैं, अतः आपने जो पूछा कि " आप क्यों अपनी प्रिया का स्थान भी नहीं जानते " उसका उत्तर दे दिया। अब आपसे कहता हूँ कि उत्तम कुल में जन्म लेकर आप एक स्त्री के कारण आत्महत्या नहीं करें। सुप्रतिष्ठ ! चित्रगति ने जब इस प्रकार कहा, तब मैंने कहा कि आज रात में ही उसका विवाह होनेवाला है, इसीलिए मैं अत्यंत व्याकुल हो रहा हूँ, तब चित्रगति ने कहा कि एक उपाय मेरे मन में आता है। वह यह है कि दक्षिण श्रेणी के विद्याधरों का यह कुलाचार है कि विवाह समय में कन्या अकेली कामदेव की पूजा के लिए काममंदिर में जाती है। अतः वह भी मदनपूजा के लिए काममंदिर में आएगी। हम दोनों पहले से ही वहाँ पर रहें, और जब वह अंदर आएगी, तब उसका वस्त्र वेष पहनकर मैं बाहर निकलकर वर के पास चला जाऊँगा, और कनकमाला को लेकर आप पीछे निकलकर अपने इष्ट स्थान पर चले जाएँगे। ऐसा करने पर उसकी प्राप्ति होगी। भद्र !

अन्यथा आपको कनकमाला नहीं मिलेगी। पुरुष को पुरुषार्थ अवश्य करना ही चाहिए। पुरुषार्थ करने पर भाग्य के अनुकूल कार्य की सिद्धि होती है। इस प्रकार जब उसने उपाय बतलाया तब भावी भय की चिंता किए विना सुप्रतिष्ठ ! रागांध होकर मैंने उसका वचन स्वीकार कर लिया !

" कनकमाला प्राप्त "

नाम पंचम परिच्छेद समाप्त "

० ० ०

छठा-परिच्छेद

इतने में सूर्य समस्त आकाशमंडल में परिभ्रमण कर रास्ते की थकावट को दूर करने के लिए मानो स्नान करने के लिए पश्चिम समुद्र को प्राप्त हुआ । चित्रगति ने कहा कि हम अपने कार्य को सिद्ध करने के लिए अपरिचित रूप में ही मदनगृह में प्रवेश करें, मैंने भी स्वीकार लिया, उसके बाद उठकर उद्यान में कुछ फूलों को चुनकर मदनगृह में प्रवेश कर उनकी पूजा करके कहा कि भगवान ! आपकी कृपा से हमारा कार्य सिद्ध हो, यह कहकर हम दोनों मदन के पीछे छिप गए, एक पहर से कुछ अधिक रात बीतने पर मांगलिक उपचार किए सफेद आभूषणों से भूषित शरीरवाली सुगंधित फूलों की माला धारण किए सखियों के साथ उत्तम पालकी पर चढ़ी हुई कनकमाला मदनमंदिर के द्वार पर पहुँच गई, अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे, पालकी से उतरकर हाथ में पूजा के सामान को लेकर अपने परिजन को द्वार पर रखकर अकेली मंदिर में प्रवेश करके द्वार बंद करके मदन पूजा करने के बाद उनके चरणों पर गिरकर दीर्घ निःश्वास लेकर, आँसू बहाती हुई कनकमाला धीरे-धीरे उलाहना देती हुई इस प्रकार बोली कि भगवान् ! आप तो सुरासुरों को जीतनेवाले हैं, फिर स्त्रियों के ऊपर आप क्यों प्रहार करते हैं ? आपने यदि उसके प्रति इतना मेरा अनुराग किया तो फिर उसको छोड़कर

दूसरे के साथ मुझे क्यों जोड़ रहे हैं ? सुना जाता है कि आप्के पाँच ही बाण हैं तो फिर मेरे ऊपर हज़ारों बाण क्यों चला रहे हैं ? यदि आप मेरे ऊपर प्रहार करते ही हैं तो इस तरह प्रहार कीजिए कि मैं शीघ्र यमराज के भवन चली जाऊँ। आप तो इस प्रकार प्रहार कर रहे हैं कि मैं न तो जीती हूँ, न मरती ही हूँ।

अब मैं आपके शरण में आ गई हूँ, यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो आप मुझे ऐसा वरदान दीजिए कि अन्य जन्म में मुझे फिर ऐसी विडम्बना नहीं हो, जिस प्रियजन की आशा में मैंने इस जन्म को बिताया। जन्मांतर में उसी को मेरा भर्ता बनावें, हे सुप्रतिष्ठ ? यह कहकर अश्रुजल के प्रवाह से स्तनों को भिगोती हुई कनकमाला ने अनेक रत्नों से विरचित फैलती हुई किरणों-वाले घर के अंदर भाग के तोरण में अपने उत्तरीय वस्त्र से उसने पाश की योजना कर के फिर कहा, भगवन ? अब मैं आपके सामने मरती हूँ, कोई ऐसा नहीं कहे कि कनकमाला ने अनुचित किया, क्यों कि जिसकी आशा में मैंने इतना समय बिताया वह मिल न सका। तो फिर मैं अपनी प्रतिज्ञा क्यों तोड़ूँ, दूसरी बात यह है कि मुझ अभागिन के पाप से देवताओं का वचन भी सत्य नहीं निकला, अथवा नरवाहन भक्त ने पिशाच रूप धारण कर ऐसा कहा होगा। भगवन् ? आपकी कृपा से मेरी मृत्यु बिना बाधा से सम्पन्न हो। मुझे तो अभी भी शंका है कि मेरा मरण होगा या नहीं ? क्यों कि प्रिय-विरह दुःख को शांत करनेवाली मृत्यु भी बड़े पुण्य से ही मिलती है, यदि मुझे मृत्यु अभी प्राप्त हो जाए मैं अपने को अत्यंत कृतार्थ मानूँ, यह कहकर वह नीचे की ओर मुँह कर के गिर पड़ी, जल्दी से वहाँ जाकर मैंने उसके गले का पाश काटा और उसको अपनी गोद में लेकर मैंने धीरे से कहा,

सुंदरि ? सुरासुर को जीतनेवाले कामदेव तुम्हारे ऊपर अत्यंत प्रसन्न हैं, जिससे इसी जन्म से तुम को इष्ट जन प्राप्त कराया है। यह सुनकर वह बाला लज्जित हो गई और उसने अपना मुख नीचे कर लिया, इतने में चित्रगति भी वहाँ आ गया। तब मैंने कनकमाला से कहा कि प्रिए ? यही मेरा मित्र हैं। इसी ने तेरे वियोग में आत्महत्या से मुझे बचाया। तुम को इस प्रकार प्राप्त करने का उपाय भी इसीने बतलाया और अब इसकी ही सहायता से आगे का कार्य भी सिद्ध होगा। अब लज्जाभय को छोड़कर अपना वेश इस को दे दो क्यों कि तुम्हारा वेश धारण करके यह बाहर जाएगा। मेरे कहने पर उसने अपना वेश दे दिया और हम दोनों मदन के पीछे जाकर छिप गए। चित्रगति उसका वेष धारण कर बाहर निकलकर डोली में चढ़ गया। उसके निकलने पर मैंने कहा, सुंदरि ? अब क्या करना चाहिए ? मुख नीचा करके कँपती हुई उसने कहा, प्रियतम ? मैंने आपको प्राप्त किया, अब आपकी जैसी इच्छा हो। आप को जो उचित लगे वह करें, उसके ऐसा कहने पर मदनदेव को साक्षी करके मैंने उसके साथ गांधर्व-विवाह किया। कमशः भय छोड़कर उसके साथ रमण करके आलिंगन करके उसके साथ सो गया। नींद टूटने पर मैंने कहा, प्रिए ? अब हम चलें, क्यों कि ऐसा काम करके यहाँ रहना उचित नहीं है। लम्बी साँस लेकर उसने कहा, प्रिए ? मेरा मर जाना ही अच्छा था क्यों कि मेरे निमित्त आपके ऊपर विपत्ति आएगी। नरवाहन बड़ा प्रचण्ड है, उसके पास अनेक विद्याएँ हैं, भागने पर भी वह पीछा करके हम दोनों को पकड़ सकता है, नाथ ? आप के विरह में उतना दुःख नहीं था जितना कि आपकी विपत्ति की कल्पना से हो रहा है। मैं अभागिन हूँ, अतः आपको

प्राप्त करने पर भी सुख दुर्लभ है। सुप्रतिष्ठ ? यह कहकर मेरा कण्ठ पकड़कर वह रोनेलगी तब मैंने समझाते हुए कहा कि सुंदरि ! जो प्राप्त करना था प्राप्त कर लिया है, अब जो होगा वह होगा। तुम्हारा संगम नहीं होने पर यदि मृत्यू होती तो दुःख था, अब मृत्यु से भी मुझे दुःख नहीं, जिस प्रकार असंभवित तुम्हारा संगम प्राप्त हुआ उसी प्रकार आगे भी अच्छा होगा : उपाय करना चाहिए, उपाय करने पर फल नहीं मिलने से भी कोई दुःख नहीं, नरवाहणकी शक्ति को जानते हुए मैंने यह किया है, अतः अब पश्चात्ताप करने की आवश्यकता नहीं, अतः सुंदरि ? हम यहाँ से रत्नसंचय चलें पीछे जैसा उचित होगा, करेंगे। उसके बाद उसके साथ मदनदेव को प्रणाम करके गगनमार्ग से चला, इतने में राग-अंधकार से मोहित चित्तवाले मनुष्य के चरित्र को देखने के लिए सूर्य उदित हुआ, कुछ दूर चलने के बाद उसने कहा कि प्यास से कण्ठ जलता है। अब यहाँ से वह नगर कितनी दूर है ? मैंने कहा, सुंदरि ? नगर बहुत दूर है, यहाँ उतरता हूँ, कोई जलाशय अवश्य होगा। यह कहकर उत्तर गया, झरने का जल पीकर वह वृक्ष की शीतल छाया में बैठ गई, मैं भी शरीर स्नान करके वहीं आ गया। सुप्रतिष्ठ ? अपने नगर को चलने का विचार कर ही रहा था इतने में नज़दीक के कदलीवन में एक शब्द सुनाई पड़ा। मुझे लगा कि यह चित्रगति का शब्द होगा, फिर सोचा, इस वन-निकुंज में वह कहाँ से आएगा ? मैं इस प्रकार चिंतन कर ही रहा था इतने में कदलीवन से एक तरुणी स्त्री के साथ चित्रगति निकला, देखते ही मैं उसके पास गया, स्नेंहपूर्वक परस्पर आलिंगन के बाद बैठने पर मैंने कहा कि मदनगृह से निकलकर मित्र ?

तुमने उन लोगों को कैसे वंचित किया ? और छूटकर आए ? और मनोहर आकारवाली यह सुंदरी कौन है ? कहाँ प्राप्त हुई ? मुझे सुनाओ--

चित्रगति ने मुझ से कहा कि कनकमाला का रूप धारण करके मदन मंदिर से निकलकर, डोली पर चढकर क्रमशः वर के पास पहुँचा लग्न समय आने पर बड़े हर्ष से नहवाहण ने मेरा हाथ पकड़ा। क्रमशः विवाह-विधि सम्पन्न हुई। नहवाहण के आगे वेश्याओं ने अनेक अंगहार से सुशोभित नृत्य-गीत आदि शुरू किया। इतने में एक युवती ने मेरे पास आकर मुद्रा रत्न सहित अपना हाथ मुझे दिखलाया। देखते ही मैं सोचने लगा कि हाथी के भय से बचाई गई उस कन्या ने जो लिया था यह वही हैं, मैंने भी अपनी अंगूठी दिखलाई। बाद में मैंने निश्चय कर लिया कि हाथी से बचाई गई मेरी प्रिया ही हैं। मैंने सोचा कि अनुकूल भाग्य क्या नहीं प्राप्त कराता है ? यह सोचकर उससे दी गई मुद्रा से युक्त अपना हाथ उसे दिखलाया तब उसे भी निश्चय हो गया। उसने पास की सखी के कान में कहा कि कनकमाला का सिर दुखता है, अतः पास की अशोकलता में कुछ देर सोती है, तुम लोग देखो। नृत्य समाप्त होने पर हमें बतलाना। चित्रवेग ? यह कहकर उसने मुझे उठाया। हम दोनों वहाँ से चलकर गृहोद्यान के अलंकार रूप अशोक वनोद्यान में आसन पर बैठ गए। वह तो भय से कुछ बोल नहीं रही थी किंतु मैंने अपना सारा वृत्तांत उससे कह सुनाया। मैंने कहा, सुंदरि ? तुम्हारे लिए मैंने बड़े कष्ट उठाएँ। सभी विद्याधर नगरों में घूमकर मैंने तुम्हारी तलाश की। अतः लज्जा छोड़कर बतलाओ, तुम्हारा नाम क्या है ? किस कुल को अपने जन्म से

तुमने अलंकृत किया है ? तुम्हारे पिता का क्या नाम है ? इस नगर में कैसे आई ? मुझे कैसे पहचान लिया ? इस प्रकार मेरे द्वारा कहे जाने पर भय छोड़कर वह कहने लगी, सुनिए प्रियतम ? आपने जो कुछ पूछा है मैं सब आपसे बतलाती हूँ——

सुरनंदन नगर आपके लिए अत्यंत प्रसिद्ध है। उसमें प्रभंजन नामक एक विद्याधरराज रहते थे, उनका नीतिशास्त्र में अत्यंत कुशल, अनुरागी, चारों बुद्धियों से संपन्न मेघनाद नाम का एक मंत्री था। अत्यंत पतिव्रता रूपवती उत्तम कुल में उत्पन्न इंदुमती नाम की अत्यंत प्रिया उनकी भार्या थी। उसके साथ विषय-सुख का अनुभव करते हुए उनको अत्यंत सुंदर अशनिवेग नाम का एक पुत्र हुआ। अनेक कलाओं तथा विद्याओं का अभ्यास करने के बाद माता-पिता का आनंद देनेवाला वह यौवन प्राप्त हुआ। इधर दक्षिण श्रेणी में कुंजरावर्त नगर में चंद्रगति नामक विद्याधर रहते थे, मदनरेखा नाम की उनकी अत्यंत प्रिय भार्या थी। कालक्रम से उन दोनों को अमितगति नाम का एक पुत्र हुआ और चंपक गौरवर्णी चंपकमाला नाम की एक कन्या हुई। युवावस्था में आने पर चंपकमाला सुरनंदन के मंत्रिपुत्र अशनिवेग को दे दी गई। उसने उसके साथ विवाह किया, और अपने नगर ले जाकर उसके साथ भोग भोगने लगा। एक समय मेघनाद संसार से विरक्त होकर अशनिवेग को मंत्रिपद देकर राजा प्रभंजन के साथ-साथ सुगुरु के पास दीक्षित हो गया। बाद में अशनिवेग चंपकमाला के साथ गृहवास फल विषय-सुख का अनुभव करने लगा। चंपकमाला के क्रमशः वज्रगति, वायुगति, चंद्र, चंदन, सुसिंह नामक पाँच पुत्र हुए। पाँचों पुत्रों के ऊपर में एक पुत्री हुई।

जन्मदिन में पिताजी ने पुत्र जन्मोत्सव से भी बड़ा उत्सव बनाया। बारहवें दिन मेरा नाम प्रियंगुमंजरी रक्खा। क्रमशः बढ़ने पर मैं कौमारावस्था में आई। सर्व कलाओं का मैंने अच्छा अभ्यास किया। धीरे-धीरे युवावस्था में आने पर मैं सखियों के साथ अनेक क्रीड़ा करने लगी। किंतु प्रियतम ! मैं स्वभावतः पुरुष के साथ द्वेष रखने लगी। ऋद्धि-सिद्धि संपन्न अनेक वर आने लगे। किंतु मैं किसी को पसंद नहीं करती थी, वे सब चले जाते थे। मेरे इस आचरण से पिताजी बहुत दुःखी रहने लगे। एक दिन चंपकमाला मेरी माता ने उनसे पूछा कि आप इतने शोकित क्यों दीखते हैं ? पिताजी ने कहा कि पुत्री विवाह के योग्य हो गई। अविवाहित रखने से कुल में मलिनता आएगी, इसका इष्टवर कौन होगा ? इन बातों को सोचकर प्रिये ! मैं शोकित रहता हूँ, उनकी बात सुनकर मेरी माता भी चिंतित हो गई। एक दिन सबेरे सूर्यप्रभ की पुत्री धारिणी मेरे पास आई। उसने मुझ से कहा कि सखि ! तुम्हारा चित्त उद्विग्न क्यों दीखता है ? बहुत दिन के बाद मैं आई हूँ, फिर भी मेरे साथ संभाषण क्यों नहीं करती हो ? मैंने कहा, प्रियसखि ! तुमने ठीक ही सोचा है, मेरा समाचार सुनो। उस दिन तुम्हारे साथ खेलकर मैं घर आई। ऊपर महल में मणिमय पलंग पर मैं सोई। आधी रात के समय दुन्दुभि शब्द सुनकर मैं जग गई। दिव्य विमानों से पूर्ण आकाशमार्ग को देखा, गगन-मंडल प्रकाशित था। अनेक देवांगनाएँ सुशोभित हो रही थीं, मैंने सोचा कि इन विमानों को, देवांगनाओं को मैंने पहले कहाँ देखा था ? एकाएक मैं मूर्छित हो गई। मूर्च्छा टूटने पर मुझे जाति-स्मरण उत्पन्न हुआ। देवभव तथा मनुष्यभव दोनों भव की बातें मेरे स्मरण में आ गई। मैं कहती हूँ तुम सुनो—

जंबूद्वीप में सुमेरु पर्वत के उत्तर भाग में ऐरावत क्षेत्र तीनों लोक में विख्यात है। उसके मध्यम खंड में आर्य क्षेत्र में अमरपुर जैसा, शत्रुओं के लिए दुर्गम, हज़ारों धनिकों से सुशोभित, तीनों लोक की लक्ष्मी से परिपूर्ण सुप्रतिष्ठ नाम का एक नगर है। कुबेर के विभव को हँसनेवाला, देवगुरु पूजक, दया-दाक्षिण्य से युक्त हरिदत्त नाम का एक श्रेष्ठी रहता था। रति के सौभाग्य को जीतनेवाली शील विनय निधान विनयवती नाम की उनकी भार्या थी। उसके साथ विषय-सुख का अनुभव करते हुए श्रेष्ठी को वसुदत्त नाम का एक पुत्र हुआ। उसके बाद विनयवती को क्रमशः सुरेंद्र सुंदरी के रूपातिशय को जीतनेवाली सुलोचना, अनंगवती और वसुमती नाम की तीन कन्याएँ हुईं, युवावस्था प्राप्त होने पर सुलोचना का विवाह मेखलावती नगरी के सागर दत्त पुत्र सुबंधु के साथ, अनंगवती का विवाह विजयवती नगरी के धनभूतिसार्थवाहपुत्र धनवाहन के साथ, वसुमती का विवाह मेखलावती के समुद्रदत्त सार्थवाह पुत्र धनपति के साथ हुआ। कलाकुशल धनपति वसुमती के साथ विषयसुख भोगने लगा, परस्पर अत्यंत स्नेह होने से उन दोनों का समय आनंद से बीतने लगा। एक समय धनपति वणिक् वसुमती के साथ महल में सोया था, चंद्रकिरण प्रकाशित रात्रि के पिछले पहर में वसुमती की नींद खुली। अपनी शय्या पर पुरुष को सोए हुए देखकर वह भय से एकाएक पवन प्रेरित वृक्षलता की तरह काँपने लगी। मेरे घर में यह कैसे आया ? क्या इसने मेरे वल्लभ को मारकर यहाँ सो रहा है ? अथवा मुझे देखने में भ्रम हो रहा है ? इस प्रकार तर्क-वितर्क करने के बाद उसने निश्चय किया कि वह परपुरुष ही है, देव जैसा इसका रूप है, परगृह में प्रवेश कर विश्वस्त होकर सो

रहा है, अतः इसमें कुछ कारण होना चाहिए। किसी भी हालत में मुझे अपनी सासु से यह समाचार बतला देना चाहिए। नहीं तो मेरे ऊपर यह दुःसह कलंक लग जाएगा। यह सोचकर बाहर निकल-कर सासु सुदर्शना के पास आकर उसने धीरे से उठाया, उसने पूछा कि वत्से ! अभी यहाँ आने का कारण क्या है ? वसुमती नें सारी बातें कह दीं, उसने कहा कि यहाँ परपुरुष का संभव नहीं, निद्रावश तुमको भ्रम हुआ होगा। वसुमती ने कहा, माताजी ! आप ही चलकर देखें, सुदर्शना ने वहाँ जाकर देखा तो वह उसका पुत्र नहीं था, और गाढ निद्रा में सो रहा था। सुदर्शना ने ज़ोर से पुकारा 'दौड़ो-दौड़ो' एक अपूर्व मनुष्य जात अथवा चोर होकर मेरे घर में प्रविष्ट हो गया है, सुनते ही 'मारो पकड़ो' यह कहते हुए सभी परिजन वहाँ पहुँच गए, क्या है ? क्या है यह कहते हुए बहुत लोग इकट्ठे हो गए। समुद्रदत्त श्रेष्ठी भी उठकर बोले, प्रिये ! किसने चोरी की है ? कलकल शब्द सुनकर, उठकर उस पुरुष ने भी कहा, माताजी ! किसने चोरी की है ? जो आप ऐसा बोलती हैं, यहाँ तो कोई दुष्ट दिखता नहीं है तो फिर आप इतनी उद्विग्न क्यों हैं ? उसकी बात सुनकर सुदर्शना ने उससे पूछा, तुम कौन हो ? किसके लड़के हो ? मेरे घर कैसे आए ? दुष्ट ! तुम मुझे माता क्यों कहते हो ? मेरे पुत्र के बिछौने पर आकर तुम क्यों सो गए ? मेरे पुत्र धनपति को तुमने कहाँ रख छोड़ा ? सुदर्शना के कठोर वचन सुनकर उसके चित्त में आश्चर्य हुआ। वह अपने शरीर को बार-बार देखने लगा। बड़ी देर तक अपने शरीर को देखने पर उसका मुँह काला हो गया। उड़ने की इच्छा से आकाश की ओर देखने लगा "वुड-वुड" इस प्रकार अपनी विद्या का जाप कर उड़ना चाहा, किंतु भूमि पर गिर पड़ा।

विद्याच्छेद होने पर विद्याधर कुमार की तरह अत्यंत दीन बन गया। उसका शरीर काँपने लगा। फिर सुदर्शना उससे पूछने लगी, पापिष्ठ! बोल, तूने मेरे पुत्र को क्या किया? उसने अपना मुख नीचे कर लिया और जब कुछ जवाब नहीं दिया तब लोग अनेक प्रकार की बातें करने लगे। कोई कहता था कि धन चुराने के लिए आया है, दूसरे कहते थे कि धन चुराने के लिए आता तो शय्या पर क्यों सोता? कुछ लोग कहते थे कि वसुमती के रूप से आकृष्ट होकर कोई परदार भोगी है, तो दूसरे कहते थे कि तब माता क्यों कहता है? कुछ लोग कहते थे कि भूत या पिशाच है, तो कुछ लोग कहने लगे कि नहीं, नहीं यह तो वसुमती के शील की परीक्षा करने के लिए कोई देव आया है। इस प्रकार लोग जब भिन्न-भिन्न बातें करते थे, धारिणि! इतने में वहाँ क्या हुआ? सो सुनो--

केयूर हार अंगद आदि अलंकारों से सुशोभित दैदीप्यमान कांतिवाला मनोहर शरीर एक देव वहाँ प्रकट हुआ। और उसने कहा, भद्रा? सुनो, मैं इसका रहस्य बतलाता हूँ, बिना समझे तुम इतना विकल्प क्यों करती हो? यह सुमंगल नाम का विद्याधर है, अपनी इच्छा से आकाशमार्ग में घूमते हुए इस नगर के सामने आने पर महल पर स्नान करते समय इसने वसुमती को देखा। देखते ही इसके रूप पर मोहित होकर धनपति का रूप धारण करके नीचे उतर गया। फिर उसने सोचा कि मैं धनपति रूप में इसके साथ कामवासना सुख का अनुभव करूँ, अन्य विद्याधरियों से तथा अन्य युवतियों से अब कोई प्रयोजन नहीं, यह सोचकर इसने धनपति का अपहरण करके भरत क्षेत्र में विनीता नगरी में जाकर

छोड़ दिया और धनपति का रूप धारण करके वसुमती के साथ यह सुरत में आसक्त हो गया। वह बिचारा धनपति विनीता नगरी को देखकर आश्चर्य करने लगा कि यह तो दूसरी नगरी है, मेखलावती यह नहीं है। क्या किसी ने मेरा अपहार किया, अथवा मैं स्वप्न देखता हूँ? यह सोचते हुए नगर के बाहर जब घूम रहा था, इतने में वहाँ श्रीऋषभनाथ जिन वर के वंश में उत्पन्न राजर्षि दंडविरत नामक केवली ने मुनियों ने साथ समवसरण किया। अवसर पाकर प्रणाम करके धनपति ने विनय से पूछा, भगवन्? मेरा अपहरण किसने किया? यह कौन-सा क्षेत्र है? यह नगरी कौनसी है? केवली ने उससे सारा वृत्तांत बतलाया, वह अत्यंत दुःखी हो गया, केवली ने उसे आश्वासन दिया, भद्र? यह संसार ऐसा ही है, इस संसार में बसनेवाले जीवों को संयोग-वियोग होते ही रहते हैं, वस्तुतः दुःख तो अपने कर्म से ही होता है, फिर केवली ने उपदेश दिया कि तुम मन में ऐसा चिंतन करो कि उस विद्याधर ने मुझे दुःख नहीं दिया है, यह दुःख तो मुझे अपने अशुभ कर्म का ही है, भद्र? कर्म का छेदन करने के लिए जिन-धर्म में उद्यम करो। फिर तुम्हें ऐसा दुःख नहीं भोगना पड़ेगा। केवली भगवंत के वचन सुनकर संवेग में आकर धनपति ने दीक्षा के लिए प्रार्थना की और केवली ने उसे दीक्षा दे दी, लाखों पूर्व तक उग्र तपश्चरण करते हुए विधिपूर्वक श्रामण्य का पालन करके अनशन से अपना शरीर छोड़कर ईशान कल्प में अप्सराओं से युक्त चंद्रार्जुन विमान में चंद्रार्जुन नाम का देव बना। अवधि-ज्ञान से अपना सारा वृत्तांत जानकर वही देव मैं यहाँ आया हूँ, वसुमती के साथ इसे सोते देखकर मुझे बड़ा क्रोध आया और मैंने इसकी सारी विद्याओं का छेद किया, यह अपने स्वरूप में आ

गया, मेरे प्रभाव से वसुमती की निद्रा टूट गई, जागने पर इसे पता चला कि यह पर पुरुष है और उसने जाकर अपनी सासु सुदर्शना से कहा, सुदर्शना ने इसे देखकर हल्ला किया, इस दुष्ट ने भी जागने पर सुदर्शना के कठोर वचन सुनकर अपना पूर्व रूप देखकर यह आश्चर्य में पड़ गया और सोचने लगा कि आज मेरी विद्या का किसने अपहार किया। यह सोचकर उड़ने की इच्छा से इसने आकाशगामिनी विद्या का स्मरण किया, फिर भी जब उठ नहीं पाया तब इसको पता चला कि किसी ने विद्याच्छेद कर दिया है। इसीलिए मैं अपने पहले स्वरूप में आ गया हूँ और आकाश में उड़ नहीं पा रहा हूँ, इस प्रकार से विकल्प करके यह दीन बन गया है। प्रिय सखि ? धारिणि ? उस देव के वचन को सुनकर समुद्रदत्त श्रेष्ठी और उसकी भार्या सुदर्शना दोनों अपने पुत्र के दुःखों की बात से द्रवित होकर उस देव का आलिंगन करके करुण विलाप करके रोने लगे। उस दोनों के करुण विलाप सुनकर जो लोग वहाँ आए थे, सबके सब रोने लगे। श्रेष्ठी के रोने की आवाज़ सुनकर सारे नगर के बालवृद्ध सब वहाँ पहुँच गए। नगर के नरनारीगण सुमंगल की निंदा करने लगे, और कहने लगे कि इस पापी ने निर्दोष धनपति का अपहरण किया अतः इसके ऊपर बिजली गिर जाय और यह सोकर उठे नहीं, रे पाप ! क्या तेरे योग्य विद्याधरियाँ नहीं थीं जो तुमने बिचारी वसुमती का शील खंडन किया। इस प्रकार जब लोग उसकी निंदा करने लगे तब वह सुमंगल अत्यंत दीन बन गया। उस देव ने आश्वासन देकर माता-पिता को शांत किया और आँसू के प्रवाह को बहाती वसुमती से कहा, भद्रे ? वसुमति ? अब तुम्हें क्या करने का उत्साह है ? मुख को नीचा करके वसुमती

ने कहा, स्वामिन् ? आप जो करने के लिए कहेंगे उसी में मेरा उत्साह है। देवने कहा कि वसुमति ? यद्यपि तुमने अज्ञानवश यह काम किया है फिर भी इस पाप का प्रायश्चित प्रव्रज्या है। अतः तुम प्रव्रज्या लेकर कर्म को नष्ट करो। वसुमती ने स्वीकार किया, सभी लोगों नें अनुमोदन किया, बाद में उस देव ने उसी नगरी में सूरिवर सुधर्म की महत्तरि चंद्रजसा के पास वसुमती को रक्खा, उन्होंने भी विधिपूर्वक वसुमती को भागवती दीक्षा दी। अत्यंत क्रोध आने पर भी देव ने उस सुमंगल को मारा नहीं किंतु उसे ले' जाकर मानुषीत्तर पर्वत के पार छोड़ दिया, बाद में वह देव अपने विमान को चला गया। वसुमतीं ने भी समिति गुप्ति में रहकर स्वाध्याय में लीन होकर लाख पूर्व तक श्रामण्य पालन करके संलेखना से अपने शरीर को झौंस कर अनुरागवश हृदय में उसी देव का ध्यान करते हुए अनशन से काल धर्म प्राप्त करके ईशान नामक द्वितीय कल्प में चंद्रार्जुन विमान में चंद्रार्जुन नामक देव की चंद्रप्रभा नामक प्रधान देवी बनी !

'वसुमती देव लोक प्रयाण' नाम

षष्ठ परिच्छेद समाप्त--

० ० ०

सप्तम-परिच्छेद

उसके बाद पूर्व स्नेही चंद्रार्जुन देव के साथ वसुमती चंद्रप्रभा देवी अत्यंत अनुराग से दिव्य लोग के सुखों को भोगती है। इस प्रकार उस देव के साथ दिव्य सुख का अनुभव करते करते उसके बहुत दिन बीत गए। एक दिन अपने प्रियतम को विच्छाय (मलिन) देखकर भयभीत होकर उसने कहा, प्रियतम ? आप सशंक क्यों दीखते हैं ? आप पीड़ित क्यों हैं ? आपके शरीर में कांति क्यों नहीं हैं ? इतनी दीनता क्यों ? आपके मस्तक पर की पुष्पमाला एकाएक क्यों मुरझा रही हैं ? आपके वस्त्र क्यों काले पड़ रहे हैं ? आपकी आँख क्यों चंचल हो गई है ? आपकी कामुकता कहाँ चली गई ? आप अपने शरीर को इतना मरोड़ते क्यों ? उसकी बात सुनकर देव ने कहा, सुंदरि ? क्या तुम जानती नहीं हो कि ये सब च्यवन के चिह्न हैं ? इसलिए अब मेरा भी च्यवन समय नज़दीक आ गया है, उनकी बात सुनकर चंद्रप्रभा देवी नरक की यातनाओं का अनुभव करने लगी। उसके दु:ख का अंत नहीं रहा। एक दिन देवी के देखते-देखते तेज पवन से बुझे हुए दीप की तरह वे देव अदृष्ट हो गए। देव को च्युत जानकर चंद्रप्रभा देवी एकाएक मूर्च्छित हो गई, मूर्च्छा दूर होने पर इस प्रकार विलाप करने लगी, हे नाथ ? प्राण वल्लभ ? आप मुझे छोड़कर कहाँ चले गए ? अब मैं किसके शरण जाऊँ ? आपके बिना मैं एक क्षण भी

नहीं रह सकती हूँ, इस बात को जानते हुए भी आप मुझे छोड़कर कहाँ चले गए ? हजारों देवों से विभूषित यह देवलोक आपके बिना मुझे नरक जैसा प्रतीत हो रहा है, अनेक मणियों से चमकता हुआ यह सुंदर विमान घटीयंत्रगृह जैसा लगता है, पुंनाग नाग चम्पक मंदार आदि से विराजित यह उद्यान आपके बिना असिपत्रवन जैसा लगता है । निर्मल जलवाली यह वापी वैतरणी नदी जैसी लगती है । वे ही स्त्रियाँ धन्य हैं जो मरे पति का अनुसरण करती हैं, इस देव भाव में तो मेरे लिए यह भी संभव नहीं, इस प्रकार बोलती हुई वह देवी अपने हाथों से अपने अंगों को पीटने लगी । मूर्च्छित हो जाती है, फिर मूर्च्छा टूटने पर उसी प्रकार विलाप करने लग जाती है कि नाथ ? वल्लभ ? आप मेरे इस विलाप को क्यों नहीं सुनते ? आप क्यों रुष्ट हैं ? मैंने कौन-सा अपराध किया है ? मेरे प्रणय कोप को आप प्रियवचन बोलकर दूर कर देते थे, फिर आज आपने मुझे क्यों छोड़ दिया ? अपने प्रियतम के विरह में रोते उसका मुँख सूखे कमल जैसा मलिन हो गया । उसको अत्यंत दुःखसे मोहित देखकर उसकी अपनी प्रियसखी स्वयंप्रभा समझाने लगी कि प्रियसखि ? आप तो जिन-वचन सार को जानती हैं, संसार के स्वरूप से भी परिचित हैं तो फिर साधारण महिला की तरह क्यों विलाप है ? इस विलाप से कुछ होनेवाला नहीं है, यह विलाप तो अजागलस्तन के समान सर्वथा बेकार है । आप चाहे कितना विलाप करें, कितना शोक करें, अपने अंगों को भी चाहे जितना पीटें किंतु कालकृतांत से गृहीत आपके प्रिय आ नहीं सकते । अतः शोकवेग को शिथिल कर के सर्व विधि दुःखशमन जिनेंद्र धर्म में उद्यम करें, तप संयम रूप वह जिनेंद्रधर्म देव भव में प्राप्त नहीं हो सकता । अतः

सम्यक्त्व शुद्धि के लिए प्रयत्न करें, और विदेह क्षेत्र में जाकर त्रैलोक्यबांधव जिनेंद्रों को केवलि भगवंतों को संयमाराधनलीन साधुओं को शाश्वत जिनमंदिर में विराजमान जिन बिम्बों को भक्ति से प्रणाम करके सम्यक्त्वयुक्त होकर मनुष्यभव प्राप्त कर भागवती दीक्षा लेकर श्रामण्य पालन करने जब आप सिद्धगति को प्राप्त हो जाएगी तो फिर ये जन्म मरण, रोग-शोक निर्मूल हो जाएगी। इस प्रकार स्वयंप्रभा देवी की बात सुनकर शोक छोड़कर स्वयंप्रभा के साथ इस लोक में आकर नंदीश्वर में जिनेंद्र बिम्बों की वंदना करके भरतक्षेत्र में आने पर राजगृह नगर के बाहर के उद्यान में साधुओं से सेवित सुरासुर मनुज परिवेष्टित धर्म देशना देते हुए शुभंकर केवली को देखकर आकाश से उतरकर स्वयंप्रभा के साथ शुभंकर केवली तथा अन्य श्रमण संघ की वंदना करके उचित स्थान में बैठ गई। उसके बाद केवली भगवान ने गम्भीर वाणी से देशना प्रारम्भ की कि मनुष्यभव। उत्तम कुल में जन्म जिन धर्म ये सब अत्यंत दुर्लभ हैं, इनको प्राप्त कर आप कभी भी प्रमाद न करें, हाथ में रक्खे गए पानी की तरह यह आयु क्षण-क्षण में क्षीण होती जा रही है, जीवन कुशाग्रजल बिंदु के समान अत्यंत चंचल है, कर्मगति अत्यंत विषम है। प्रमाद उसका मूल है, इसलिए चारों गति में यह प्रमाद सर्वथा त्याज्य है। यही प्रमाद जन्म में कारण है, यही प्रमाद रोग-जरा-मरण तथा अनेक दुःखों में कारण है। अतः संसार समुद्र से पार करने में यानपात्र समान जिन धर्म में सर्वथा प्रमाद छोड़कर प्रयत्न करें और सभी पापों को दूर कर मोक्षसुखों को प्राप्त करें।

उसके बाद अवसर प्राप्त कर चंद्रप्रभा देवी ने केवली भगवंत से प्रश्न किया कि भगवन ? मेरे प्रिय चंद्रार्जुनदेव कहाँ उत्पन्न

हुए हैं ? मेरी आयु अब कितनी है ? च्युत होने पर मेरा जन्म कहाँ होगा, उनका दर्शन फिर मुझे प्राप्त होगा या नहीं ? भगवान् शुभंकर केवली ने कहा कि भद्रे ? वह तुम्हारा भर्ता इसी भरत-क्षेत्र में वैताढ्य पर्वत की उत्तर श्रेणी में चमरचंच नगर में भानुगतिनामक विद्याधर की प्रिय पत्नी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ है। तेरी आयु आठ पल्योपम की थी, उसमें अब एक लाख वर्ष बाकी है। एकलाख वर्ष पूर्ण होनें पर च्यवन प्राप्त करके तू भी उसी श्रेणी में सुरनंदन नगर में अशनिवेग विद्याधर की पुत्री होगी। तेरा नाम पियंगुमंजरी होगा। वहीं पूर्व वल्लभ के दर्शन होगा। देवी ने कहा कि मुझे उसका पता कैसे लगेगा ? और किस प्रकार उनके साथ मेरा विवाह होगा ? केवली ने कहा कि जिनेंद्र की यात्रा में पागल हाथी से जो तुझे बचाएगा वही तेरा भर्ता होगा। उसके साथ विशेष दर्शन इस प्रकार होगा कि तेरे मामा की कन्या कनकमाला के विवाह में अपने मित्र के कार्य से कनकमाला का रूप धारण करके वह आएगा, वहाँ जो कनकमाला रूप में रहेगा भद्रे ! तू नि.शंक होकर जान लेना कि वही तेरा पूर्वपति रहेगा। बाद में उसके साथ तेरा विवाह होगा और जातिस्मरण से तू मेरी इस बात का स्मरण करेगी। प्रियसखि ? धारिणी ? इस प्रकार केवली के वचन को सुनकर वह देवी हर्षित हुई और केवली के चरणकमल को प्रणाम करके उड़कर महा-विदेह में शाश्वत जिन बिम्बों को तीर्थंकरों को प्रणाम करके उसी चंद्रार्जुन देव का चिंतन करती हुई अपने स्थान पर आ गई और आयु पूर्ण होने पर वह भी वहाँ से च्युत हो गई।

सुंदरि ? जो आर्या वसुमती चंद्रप्रभा देवी थी वही मैं, आज मैं प्रियुंगमंजरी रूप में हूँ, देवों का दर्शन करने से जाति स्मरण

उत्पन्न होने से आज मुझे प्राणप्रिय देव की याद आ गई है, इसलिए उनका दर्शन करने के लिए मैं अत्यंत उत्कण्ठित हो गई हूँ, वह दिन कब आएगा जब मैं स्नेहभरी दृष्टि से अपने प्रियतम का दर्शन करूँगी ? यही सोचकर मैं शोकित थी, इतने में तुम आ गई और मैंने तुमसे अपने मन की सारी बातें कह दीं, उसकी बात सुनकर धारिणी ने कहा कि भद्रे ? केवली का वचन मिथ्या नहीं होगा, तो फिर तुम इतनी चिंतित क्यों हो रही हो ? तब मैंने हँस-कर कहा कि यह बात बिलकुल ठीक है, इसमें कोई संदेह नहीं, किंतु अत्यंत उत्कण्ठा से मेरा मन व्याकुल हो रहा है, इतने में प्रियतम ? मेरी माता चंपकमाला ने आकर मुझ से कहा, पुत्रि ? जल्दी स्नान, भोजन, श्रेष्ठ शृंगार कर, मैंने पूछा कि आज एकदम सबेरे भोजन का समय क्यों हो गया ? माता ने कहा कि आज उद्यान में, जिन-मंदिर में बड़े समारोह के साथ युगादि देव का स्नपन सूर्यास्त काल तक होगा । नगरवासी लोग सब जा रहे हैं, हम भी अपने परिजन के साथ चलेंगे, इस लिए आज जल्दी भोजन बन गया है, अब तू जल्दी तैयार हो जा जिससे हम भी समय पर यहाँ से चलें, माता का वचन सुनते ही उठकर भोजनादि करके सुंदर रथ पर चढ़ गई, परिजन सहित उद्यान भूषण जिन-मंदिर में जाकर अच्छी तरह से पूजा करके भगवान की वंदना करके भक्त विद्याधरों से किए जाते हुए स्नपन को मैंने देखा, स्नपन समाप्त होने पर परिजन के साथ रथ पर चढ़कर जब अपने नगर की ओर आ रही थी इतने में एक पागल हाथी नगर से निकलकर आया, उसको देखकर रथ के घोड़े चंचल होकर उन्मार्ग से चलने लगे, रथ टूट गया, मैं गिर पड़ी, मूर्च्छित हो गई । उसके बाद क्या हुआ कुछ पता नहीं, होश में आने पर अपने उत्तरीय वस्त्र

से पवन देते हुए आपको देखा। आपको देखने से मेरे चित्त में बड़ी प्रसन्नता हुई और प्रियतम ? मेरे मन में ऐसा विकल्प आया कि केवली का वचन सत्य हुआ, अवश्य ये मेरे पूर्वभव के वल्लभ हैं, क्यों कि इनको देखने से ही चित्त में आनंद हो रहा है, शरीर अमृतसिक्त जैसा लगता है, इतना ही, नहीं ये भी अत्यंत सानुराग की तरह मुझे देख रहे हैं, अतः अवश्य मेरे ही प्राणवल्लभ हैं, इस प्रकार जब सोच ही रही थी इतने में परिजन सहित मेरी धाई वहाँ आ पहुँची और आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करके जब उसने आपसे कहा, कि सूर्यास्त होनें जा रहा है अतः आप जाने की आज्ञा दीजिए, तब मैंने मन में सोचा कि बड़े पुण्य से इनका दर्शन हुआ है, इनको मैं छोड़ नहीं सकती। इनके मुखकमल का दर्शन छोड़कर मेरी दृष्टि पंक में फँसी दुबली गाय की तरह जा नहीं सकती। किंतु मेरो धाई तो जा रही है, लज्जा से मैं कुछ बोल नहीं सकती हूँ, अतः इनका कुछ आभरण ले लूं जिसे देख-देख कर मन को सांत्वना देती रहूँगी। दूसरी बात यह है कि केवली ने कहा था कि कनकमाला के विवाह समय दर्शन होगा तो यह आभरण ही पहिचानने में चिह्न बनेगा, तब मैंने अपना वलय आपको दे दिया और आपका वलय लेकर बड़े आनंद से मैंने पहन लिया, आपकी ओर अपनी दृष्टि किए परिजन के साथ मैं नगर को चली, तब धारिणी ने मेरे कान में कहा कि केवली का एक वचन तो सत्य हुआ, ये ही आपके वल्लभ देव जीव हैं जो पहले आपके प्रिय थे। मैंने क्रोध में आकर कहा कि मेरे सामने से हटो, तुम ऐसा क्यों कहती हो कि ये पूर्ववल्लभ हैं, अभी मेरे वल्लभ नहीं हैं क्या ? मेरी बात सुनकर कुछ हँसती हुई धारिणी ने कहा कि अवश्य पहले की तरह अभी ये आपके वल्लभ हैं किंतु आप

उन्हें छोड़कर चली आई, इस लिए मैं इस प्रकार कहती हूँ। संध्या समय घर आने पर धारिणी ने मेरी माता से जातिस्मरण आदि सभी बातें बतलाईं, प्रसन्न होकर उसने पिताजी से भी कहा, हर्षित होकर उन्होंने कहा कि मुझे बड़ी चिंता थी कि लड़की ने पुरुषवेश को क्यों धारण कर लिया है ? किसी वर को क्यों नहीं चाहती है ? अवश्य हमारे अभ्युदय के लिए ही इसे जातिस्मरण उत्पन्न हुआ ? लोगों ने आकर मुझ से कहा था कि प्रियंगुमंजरी को हाथी से बचानेवाला कुमार भानुगति का पुत्र चित्रगति था, यदि इसकी इच्छा हैं तो उसीको अपनी कन्या दूँगा, तब चंपक माला ने हर्षित होकर कहा कि इसके लिए वह कुमार सर्वथा योग्य है, इस का भी उसके ऊपर बड़ा अनुराग है, किंतु स्वामिन् ? ज्वलन प्रभ के कार्य से कनकप्रभ और भानुगति दोनों राजा में परस्पर बड़ा विरोध है, जो कि आप जानते हैं, तो फिर चित्रगति विवाह के लिए यहाँ कैसे आएगा। लड़की को स्वयंवरा बनाकर यदि उस नगर में भेज देती हूँ तो प्रियतम ? तो मेरे हृदय में आनंद नहीं आएगा क्यों कि एक ही तो लड़की है, इसका विवाह यदि मैं नहीं देखूंगी तो मेरा जीवन बेकार हो जाएगा। इतने में चंदन नाम का मेरा भाई आया और उसने कहा कि पिताजी ? आप लोग एकदम निश्चिंत कैसे हैं ? सारा नगर आकुल-व्याकुल हो रहा है, नगर में ऐसी बात चलती है कि कनकप्रभ राजा ने जिन मंदिर का उल्लंघन किया है इसलिए क्रोधित होकर धरणेंद्र ने उनकी सभी विद्याओं का नाश कर दिया है। आज ज्वलनप्रभ को रोहिणी-विद्या सिद्ध हो गई है, अतः भय से कनकप्रभ राजा यहाँ से भागकर विद्याधरेंद्र श्री गंधवाहन के शरण में चला गया है। यहाँ के लोग

ज्वलनप्रभ के भय से इस नगर को छोड़कर दूसरे-दूसरे नगर को जा रहे हैं, इसलिए पिताजी ! हम लोगों को भी नगर छोड़ देना चाहिए, खासकर आप तो कनकप्रभ राजा के मंत्री हैं, पुत्र की बात सुनकर अशनिवेग ने भी अपने भृत्यों को तैयार होने के लिए आदेश देकर विद्याबल से विमान की विकुर्वणा करके गृहसार वस्तु उस पर रखवाया। प्रियतम ! धारिणी ने आकर सारी बातें मुझ से बतलाई, मैं भी विमान पर चढ़ गई, विमान उड़कर गंगावर्त नगर में कनकप्रभ के आवास स्थान के पास उतरा। गंधवाहन ने भी उचित सत्कार किया और हम लोग वहाँ रहने लगे। प्रियतम ! हृदय से मैं बराबर आपका ही चिंतन करती थी। मैं कब उनको देखूँगी ? कब उनसे मिलन होगा ? कब कनकमाला का विवाह समय आएगा ? इस प्रकार सतत सोचने से रात को भी मुझे नींद नहीं आती थी। एक दिन मेरी माता चंपकमाला के भाई अमितगति किसी राजकार्य से उस नगर में आए। अशनिवेग को देखकर अत्यंत हर्षित होकर उन्होंने कहा कि श्रीगंधवाहन राजा ने बहुमानपूर्वक अपने पुत्र नहवाहण के लिए कनकमाला की मंगनी की है। भद्र ! मैंने भी प्रसन्नतापूर्वक नहबाहण को कनकमाला दे दीं है। इसी पंचमी को उसका विवाह लग्न है। आप लोग सबांधव अवश्य आएँगे। अशनिवेग ने कहा कि मुझे तो स्वयं वहाँ जाना चाहिए किंतु आपके कहने पर तो आना ही होगा, किंतु एक कारण ऐसा है कि मेरा जाना ठीक नहीं होगा। कनकप्रभ राजा की दशा अभी अत्यंत विषम है। क्यों कि विद्या का नाश, राज्यनाश, अपने नगर का त्याग ये सब के सब अनर्थकारी हैं। जो भृत्य अपने स्वामी के दुःख में सुख का उपभोग करना चाहता है वह दोनों लोक से

गिरता है। तब अमितगति ने कहा कि यदि ऐसा है तो प्रियंगु-मंजरी को जाने दीजिए। मेरे पिता ने स्वीकार किया और मैं मामा के साथ, यहाँ आ गई। यहाँ आने पर कनकमाला से मिलने पर बड़ी प्रसन्नता हुई, तब से कनकमाला के विवाह की प्रतीक्षा कर रही थी। पंचमी आने पर विवाह संपन्न होने पर नाटक प्रारंभ होने पर मैंनें सोचा कि कनकमाला, जो सखियों के बीच में बैठी है, अवश्य वह मेरा वल्लभ है। क्यों कि केवली का वचन कभी भी मिथ्या नहीं हो सकता। कदाचित् सूर्य पश्चिम दिशा में उदित हो जाए। फिर मैंने सोचा कि मुद्रारत्न दिखलाकर इसका निश्चय किया जाए। मैं आपके पास आई और मैंने मुद्रारत्न समेत अपना हाथ दिखलाया, फिर आपने भी जब मुद्रासहित अपना हाथ दिखलाया तो मैंने मन में निश्चय कर लिया कि मेरे ही वल्लभ हैं, आश्चर्य इस बात का हुआ कि नहवाहण से भी इनको भय क्यों नहीं लगता है ? बाद में शिरोवेदना का बहाना करके सखियों को ठगकर मैं आपको अशोक वाटिका में ले आई। यद्यपि मैं कन्या हूँ अपने वल्लभ के सामने इतना मुझे नहीं बोलना चाहिए था, फिर भी मैंने सब बातें कीं, जाति-स्मरण हो जाने से आप मुझे अत्यंत परिचित की तरह लग रहे हैं, चित्रवेग ! उसकी बात सुनकर मुझे भी जाति-स्मरण हो आया। मैंने भी अपने पूर्व-चरित्र का स्मरण किया।

इसके बाद उसने कहा, प्रियतम ? अब मैं क्या करूँ ? तब मैंने कहा, तुम्हारा बड़ा प्रतिष्ठित है अतः तुम अपने घर जाओ और मैं भी अब यहाँ से भाग जाऊँगा। तुम कह देना कि कमलावती कुएँ में गिर गई, ऐसा कहने से चित्रवेग के ऊपर

किसी को आशंका भी न होगी, मेरा मित्र नहवाहण से बच जाएगा। सुंदरि ? सुना है कि सुरनंदन में आकर ज्वलनप्रभ ने फिर अपना आधिपत्य जमाया है, और नगर के लोगों को संमानित किया है। इसलिए मैं तुम्हारे पिताजी को वहाँ मंगवा ऊँगा, ज्वलनप्रभ राजा भी बड़े गौरव से उन्हें देखेंगे, वहाँ माता-पिता की आज्ञा से तुम्हारे साथ विवाह भी करूँगा. यह सर्वथा अच्छा होगा। चित्रवेग की बात सुनकर प्रियंगमंजरी ने कहा कि आपकी आज्ञा मानने के लिए मैं तैयार हूँ, किंतु इतने दिन के बाद आपको प्राप्त कर के फिर मैं आपको नहीं देखने से मैं जी ही नहीं सकती, अतः नाथ ? यदि आप जाते हैं तो मुझे भी साथ ले चलिए। दूसरी बात यह भी है कि ज्वलनप्रभ राजा के कहने पर भी यदि मेरे पिताजी कनकप्रभ को छोड़कर सुरनंदन नहीं गए तो मुझे आपका दर्शन भी दुर्लभ हो जाएगा। अतः प्रियतम ? अन्य जो कुछ भी आप कहें मैं मानने के लिए तैयार हूँ किंतु मैं आपको छोड़ने में असमर्थ हूँ, चित्रवेग ? जब उसने इस प्रकार कहा तब मैंने उससे कहा, सुंदरि ! यदि ऐसा है तो तैयार हो जाओ, जब तक रात बीत नहीं जाती और ये लोग नृत्य देखने में व्यस्त हैं तब तक हम दोनों चल दें, उसने कहा, नाथ ? मैं सर्वथा तैयार हूँ, तब उसके साथ मैं आकाश में उड़ गया। कुछ ही दूर जाने के बाद उसने कहा कि मेरे पेट में दर्द हो रहा है, हृदय में शूल-सा हो रहा है, अतः नाथ ! आप इसका कुछ प्रतिकार करें, तब मैंने कहा, सुंदरि ! तुम्हारा शरीर अत्यंत सुकुमार है, रात में तुम्हें नींद नहीं आई, अतः चिंता करने की आवश्यकता नहीं, यहीं उतरकर इसका प्रतिकार करता हूँ, यह कहता हुआ मैं नीचे उतर गया और इस पवन संचार रहित कदलीगृह में इसको रक्खा।

अरणिकाष्ठ को घिसकर आग सुलगाई और सेंक किया, कुछ देर में मैंने कहा, सुंदरि ! अब तुम स्वस्थ हो गई । अब अपने स्थान को चलें, उसके द्वारा स्वीकार कर लेने पर हम दोनों निकलें तब चित्रवेग ! मैंने आपको यहाँ देखा । यही कनकमाला की बहन प्रियंगुमंजरी है । मित्र ! आपका उपकार करने से मुझे यह लाभ हुआ । सुप्रतिष्ठ ! आपने जो पूछा था उसका उत्तर दे दिया । चित्रगति ने जब उस प्रकार कहा, तब मैंनें कहा, मित्र ! मैं अत्यंत निर्दय हृदयवाला हूँ जिससे कि आपको मैंने संकट में डाल दिया । आपको तो अपने पुण्य से अभीष्ट सिद्धि हुई, मित्र ! आपने तो दयिता प्राप्त कराकर मुझे जीवनदान दिया है, अतः आपके समान उपकारी तो दूसरा हो ही नहीं सकता । तब चित्रगति ने कहा कि मैंने आपका क्या उपकार किया ? आपके शुभकर्म का ही यह सुंदर परिणाम है । आप तो सज्जनतावश मेरी प्रशंसा कर रहे हैं । फिर उसनें कहा कि नहवाहण बड़ा प्रचंड है । उसने अनेक विद्याएँ सिद्ध कर ली हैं, अतः उससे बचने का उपाय आपने क्या सोचा है ? तब मैंनें कहा, अधिक सोचने से क्या लाभ ? जिस प्रकार अत्यंत दुर्लभ इस कनकमाला को मैंने प्राप्त किया उसी प्रकार मित्र ! आगे भी कुछ अच्छा ही होगा । मेरी बात सुनकर चित्रगति ने कहा, कि आपका यह कहना ठीक है फिर भी यों बैठना ठीक नहीं है । अतः आप यहाँ से दूसरे स्थान को चले जाइए । किसी भी प्रकार शरीर-रक्षा आवश्यक है । मैं भी यहाँ से सुरनंदन जाऊँगा और ज्वलनप्रभ राजा को अशनिवेग के साथ मित्रता कराकर उसके द्वारा दी गई पूर्वभवदयिका इस प्रियंगु-मंजरी के साथ विवाह करूँगा । सुप्रतिष्ठ ! यह कहकर प्रियंगु-मंजरी के साथ चित्रगति आकाश में उड़ गया और अपने स्थान को चला गया ।

मैं भी प्रिया कनकमाला के साथ आकाश में उड़कर विकसित कमलादि से सुशोभित अनेक सरोवरों को फलभार से नम्र शाखाओं से शोभित वृक्षों से भरे बड़े-बड़े उद्यानों को पर्वत के अनेक झरनों को किन्नर मिथुन आदि से रम्य, अनेक पर्वत के शिखरों को देखता हुआ दक्षिण दिशा की ओर चला। कुछ दूर जाने के बाद बिजली के समान दैदीप्यमान एक तेज को देखकर कुछ विकल्प कर रहा था, तब मेरी प्रियतमा ने कहा, प्रियतम ! यह बिजली या उल्का नहीं है, क्यों कि यह स्थिर है, अतः कोई देव अथवा देवविमान होना चाहिए ! सुप्रतिष्ठ ! हम दोनों इस प्रकार बात कर ही रहे थे, इतने में एक भास्वर कांतिवाला देव वहाँ आया। जब मैंने प्रणाम किया तब उस देव ने मुझ से कहा कि चित्रवेग ? सर्वथा कुशल तो हैं न ? मुझे आप पहचानते हैं या नहीं ? तब मैंने कहा कि सामान्य रूप से मैं जानता हूँ कि आप देव हैं, विशेष रूप से मैं नहीं पहिचान रहा हूँ, इस भव में तो नहीं किंतु अन्य भव में आपके साथ परिचय अथवा सम्पर्क अवश्य रहा है क्यों कि आपको देखने में आनंद का अनुभव हो रहा है। इतना कहने पर उस देव ने एक दैदीप्यमान मणि निकाल कर मुझ से कहा, मित्र ? आप इस मणि को ग्रहण कीजिए। तब मैंने कहा कि आप मुझे यह बतलाइए कि इस मणि का क्या उपयोग होगा ? आप मुझे यह मणि क्यों दे रहे हैं ? पूर्व भव में आपके साथ मेरा कैसा सम्बन्ध था ? तब उस देव ने कहा कि अभी पूर्वभव संबंध बतलाने का समय नहीं है, अभी आप इसको ग्रहण कीजिए। यह मणि सभी विपत्तियों को दूर करेंगी, तब मैंने कहा कि मेरे ऊपर कौन-सी विपत्ति आनेवाली है ? तब उस देव ने कहा कि विद्या बल से नहवाहण ने सारी बातें जान ली हैं,

दयिता के अपहरण होने से वह अत्यंत क्रोधित हो उठा है और बहुत विद्याधरों के साथ आपका वध करने के लिए चला है। और वह आपके पीछे है, अतः प्राणनाश करनेवाली विपत्ति आपके ऊपर आ रही है, अतः आप यह मणि ले लें और प्रयत्न से अपने बाल के अंदर इसको बाँधकर रखिए, मणि रखने से नहवाहण की विद्याएँ बेकार हो जाएँगी, यदि कभी वेदना शांत न हो, तो इस मणि के जल से सेंक करने पर पीड़ा दूर हो जाएगी। आप इस मणि को बराबर साथ रक्खेंगे। आप चिंता नहीं करें, मैं भी आपकी सहायता करूँगा, अभी मैं किसी खास कार्य से जा रहा हूँ, वहाँ से लौटने पर आपको सारी बातें बतलाऊँगा। दूसरी बात यह है कि वह विद्याधर विद्याबलपूर्ण है, अतः आप उसके साथ युद्ध नहीं करेंगे। उसके साथ युद्ध करने से निश्चय आपकी मृत्यू हो जाएगी। सिंह संकुचित शरीरवाला होकर ही हाथी के ऊपर आक्रमण करता है। क्या उससे उसका पुरुषार्थ कम माना जाता है? अवसर प्राप्त कर के, विद्या साधन करके पीछे जैसा अच्छा लगे, सो आप करेंगे। यह दिव्यमणि उसके प्रभाव को अवश्य कम करेगी, देव के इस प्रकार कहने पर मैंने हाथ जोड़कर कहा कि जो आपकी आज्ञा उस देव ने अपने हाथ से मेरे मस्तक में दिव्यमणि बाँध दी और मुझे आशीर्वाद देकर वहाँ से प्रस्थान किया। सुप्रतिष्ठ! मणि बाँधते ही मेरी चिंता दूर हो गई, सारा भय चला गया।

दिव्यमणि समर्पण नाम।

सप्तम परिच्छेद समाप्त–

० ० ०

अष्टम-परिच्छेद

देव के अदृष्ट हो जाने पर मैं भी अपनी प्रियतमा के साथ दक्षिण दिशा की ओर चला। मैं सोचने लगा कि नहवाहण विद्याधर अब क्या करेगा? जब देव मेरी रक्षा करनेवाला है तो फिर उसकी विद्याएँ मेरा अपकार नहीं कर सकती हैं, अथवा बेकार चिंतन से क्या लाभ? पूर्व कर्म के अनुसार ही सुख दुःख प्राप्त होते हैं, दिव्यमणि के प्रभाव से तथा उस देव के साहाय्य से लगता है कि पूर्व पुण्यानुसार कुछ अच्छा ही होगा। इस प्रकार मन ही मन सोचता हुआ मैं जा रहा था कि इतने में भय से काँपती हुई मेरी प्रियतमा ने कहा, नाथ? हम लोगों के पीछे कोई आ रहा है। बहुत विद्याधरों के साथ होने से मैं मानती हूँ वह नहवाहण ही होगा। इसलिए आप कुछ ऐसा उपाय करें जिससे आपको कोई तकलीफ न हो और न मुझे ही फिर विरहदुःख का अनुभव करना पड़े; तब मैंने भी उधर देखकर कहा, सुंदरि? इसमें चिंता करने की बात ही नहीं है, तुम्हारे सामने हीं तो उस देव ने कहा कि आपके पीछे नहवाहण आ रहा है, घबड़ाने की आवश्यकता नहीं, सुंदरि? देव और इस दिव्यमणि के प्रभाव से अच्छा ही होगा। दूसरी बात यह हैं कि वह इतना नज़दीक आ गया है कि अब कोई उपाय भी नहीं किया जा सकता, इस की विद्या ऐसी है कि दूर रहने पर भी हम भाग नहीं सकते और अभी तो वह सामने

आ गया है। मेरे पूर्व कर्मों ने जैसा देखा होगा, वैसा होगा। चिंता करने से इस जीवलोक में कुछ मिलता नहीं, मेरी बात सुनकर भयशोक से अत्यंत संतप्त होकर उसने कहा कि वल्लभ ? दुष्ट विधाता ने मुझ पापिन को आपका विनाश करने के लिए बनाया है, यदि मैं उस समय मर गई होती तो आज आपके ऊपर यह संकट नहीं आता।

यदि मैं माता के गर्भ से गिर जाती या बाल्यकाल में ही मर गई होती तो क्या मेरे निमित्त आपके ऊपर यह विपत्ति आती ? हम दोनों का पारस्परिक अनुराग आज विनाश का कारण बन रहा है, स्वामिन ? आपने तो केवल कर्म का अवलम्बन ले लिया है, विपत्ति से बचने के लिए कुछ करना तो चाहिए ? तब मैंने कहा, सुंदरि ? चिंता मत करो, बिना विचारे काम करनेवालों को ऐसा ही फल मिलता है, जो अपना बल तथा शत्रुबल का विचार किए बिना कुछ करता है वह अवश्य अपमान का पात्र बनता है और नष्ट हो जाता है, नीति से चलनेवालों पर कभी विपत्ति नहीं आती, तुम्हारा हरण करके मैंने कौन-सी नीति अपनाई है ? अनुराग के पाश में फँसकर हम लोगों ने राज विरुद्ध कार्य किया है, सुंदरि ? अभी अब विषाद करने का समय नहीं है। ऐसी स्थिति में यदि भाग्य अनुकूल होगा तो यह विपत्ति भी सम्पत्ति का रूप धारण करेगी। यह शत्रु बड़ा बलवान है, इसलिए पुरुषार्थ का अवलम्बन ठीक नहीं, पूर्व भव के पुण्य से ही इसका वारण हो सकता है, यदि पुण्य है तो पुरुषार्थ की जरूरत नहीं और यदि पुण्य नहीं है तो भी पुरुषार्थ बेकार है, सुंदरि ? एक तरफ मेरा पुण्य है और दूसरी तरफ यह शत्रु। देखें, किसकी

विजय होती है ? सुप्रतिष्ठ ? इस तरह जब मैं अपनी प्रिया से बातचीत कर ही रहा था इतने में शीघ्र गति से वह नहवाहण मेरे पास आ गया। रोष से उसके कपोल पर जलकण झलक रहे थे। उसने कहा, रे नीच ? इस लोक-परलोक विरुद्ध कार्य कर अब तू कहाँ जाएगा ? राज विरुद्ध आचरण करके अब तू सूपकार की शाला में पड़े खरगोश की तरह कहाँ भाग जाएगा ? रे नीच ? किसके बल से तूने मेरी पत्नी का अपहरण किया ? रे मूढ ? किस पापी ने तुझे ऐसी बुद्धि दी ? अथवा दैव ही तेरे ऊपर क्रोधित हो गया वह क्या, पुरुष को दण्ड से थोड़े ही पीटता है। जिस बल से तूनें यह अनुचित काम किया है उसे अब मेरे सामने दिखला। पीछे नहीं बोलना कि तुझ से पुरुषार्थ दिखलाने के लिए मैंने कहा नहीं, इस तीव्र अर्धचंद्र से मैं तेरा सिर काटता हूँ यदि ताकत है तो सामने आ। सुप्रतिष्ठ ? यह कहकर उसने धनुष को खींचकर मेरे ऊपर बाण चलाया। उसका बाण मेरे पास आकर मानो शिला से टकराकर पीछे लौट गया। यह देखकर कुछ विस्मित होते हुए उसने कहा कि इस बार यदि किसी क्षुद्र विद्या के प्रभाव से बच गया तो क्या मेरे इन आग्नेय अस्त्रों से भी बच जाएगा ? यह कहकर मंत्र पढ़कर उसने मेरे ऊपर बाण चलाना शुरू किया। उसकी ज्वाला चारों ओर फैल गई, किंतु मेरे पास आकर चक्कर लगाकर वह अस्त्र भी शांत हो गया। इसके बाद उसने वारुणास्त्र आदि अनेक अस्त्रों का प्रयोग किया किंतु मेरे पास आकर वे सभी विफल हो गए। यह देखकर वह राजपुत्र चकित हो गया फिर उसने कहा, नीच ? तूने बड़ा पाप किया है, अतएव सुखमृत्यु योग्य नहीं है, यह समझकर ही इन दिव्यास्त्रों ने तुझे मारा नहीं, इसलिए, रे नीच ? दुःख मृत्यु

से तुझे मारने के लिए अब मैं तैयार हूँ, सुप्रतिष्ठ ? यह कहकर उसने नागविद्या का आवाहन किया बड़े-बड़े भयंकर सर्प आकर मेरे शरीर में चिपक गए । मैं उनसे इस प्रकार बद्ध हुआ जिस प्रकार सरागजीव कर्मों से बद्ध हो जाता है । तब मुझे बड़ी पीड़ा होने लगी और मैं आकाश से नीचे गिरा । और कुछ क्षण के लिए मुझे मूर्च्छा आ गई । मेरी प्राणप्रिया भी मुझे बड़े संकट में देखकर कहा, आर्यपुत्र ? आपके इस अनर्थ का कारण मैं ही हूँ, हा आर्यपुत्र ! अब आपके विरह में मैं जीवित नहीं रहूँगी, धनदेव ! उस विद्याधर की बात सुनकर मेरे मन में विकल्प आया कि पहले जो मैंने स्त्री का विलाप सुना था, निश्चय वह उसी कनकमाला का विलाप होगा । और उसके जो मैंने किसी पुरुष का निष्ठुर शब्द सुना था वह इसी के शत्रु नहवाहण का शब्द होगा, फिर मेरे मन में यह बात आई कि चिंतन करने की आवश्यकता क्या ? चित्रवेग सब अपना चरित्र कहता ही तो है । फिर मैं सुनने लगा, उसने कहा, सुप्रतिष्ठ ? विलाप करती हुई मेरी प्रिया को पकड़कर नहवाहण ले गया और मैं उसके शोक से संतप्त था, इतने में आप यहाँ आए । और मणिजल से-सींचकर आपने उन सर्पों को हटाया, इसलिए आपने मुझे जीवन दिया है, मणि के प्रभाव से सर्प मुझे काट नहीं सके, यमराज के वंदन के समान भीषण सर्पों से मेरा उद्धार नहीं था । आपने जो मुझे इस संकट में पड़ने का कारण पूछा था, मैंने आपको बतला दिया, धनदेव ? विद्याधर के वचन को सुनकर मैंने अपने मन में सोचा कि लोग अनुराग के वशीकृत होकर विषय के लोभी बनकर अनेक विपत्तियों को प्राप्त करते हैं, परलोक की बात तो दूर रहे इसी लोक में ही रागांध लोग कार्या-कार्य को नहीं जानते हुए

अनेक शारीरिक, मानसिक कष्ट को प्राप्त करते हैं, कांता वियोग संतप्त मनुष्य अनुचित चेष्टाओं को करते हुए नरक से भी अधिक पीड़ा का अनुभव करते हैं, राग से मोहित होकर ही लोग वध-बंधन आदि को इस लोक में प्राप्त करके अनंतकाल तक भव-भ्रमण करते हैं, जीव तब तक परमसुख को प्राप्त करता है जब तक उसके चित्त में राग प्रवेश नहीं करता।

धनदेव ! इस प्रकार चिंतन करके मैंने कहा, चित्रवेग ? अब आप शोक नहीं कीजिए। कारण यह संसार दुःखों से परिपूर्ण है। जरा, मरण, रोग, वियोग आदि से भरे इस संसार में अपने कर्मों के अनुसार जीवों को दुःख प्राप्त होते हैं, किंतु जब विपत्ति आ जाए तो विषाद करना व्यर्थ है, मेरी बात सुनकर चित्रवेग ने कहा कि मुझे दुःख केवल एक ही बात का है कि नहवाहन के द्वारा पकड़कर ले जाने पर वह बिचारी कनकमाला कैसी होगी ? मेरी इस विपत्ति को जानकर वह जीती होगी या नहीं ? धनदेव ! इस प्रकार वह विद्याधर मुझसे कह रहा था, इतने में वहाँ क्या हुआ, सो सुनो——

कमलपत्र के समान विशाल नेत्रवाला, दिशाओं को उद्योतित करता हुआ, एक देव एकाएक आकाश से वहाँ उतरा, उसको आए हुए देखकर चित्रवेग अत्यंत प्रसन्न हो गया और अभ्युत्थान करके विनयपूर्वक उसने देव को प्रणाम किया। आसन पर बैठकर उस देव ने चित्रवेग से कहा, भद्र ? आपका कुशल है ? मणि के प्रभाव से आपकी विपत्ति दूर हुई ? चित्रवेग ने कहा कि आपके प्रभाव से सब कुशल है। केवल मुझे बड़ा कौतुक है कि पूर्वभव में आपके साथ मेरा कैसा संबंध था ? और उस समय आप किस

कार्य के लिए उतने उत्सुक थे? देव ने कहा कि मैं कहता हूँ आप एकाग्रतापूर्वक सुनिए--

इसी जंबूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में आर्य देश में अमरावती जैसी एक विजयवती नाम की नगरी है, उसमें जैन धर्माराधक, दया-दाक्षिण्य युक्त, मित्रों का अनुवर्तन करनेवाला, चंद्र की तरह सकल कला परिपूर्ण एक धनभूति नाम का सार्थवाह रहता था, उसकी पतिव्रता अत्यंत रूपवती सुंदरी नाम की भार्या थी, श्रावक-धर्म का पालन करते हुए साधुओं में भक्तिभाव रखनेवाले, उन दोनों के दिन आनंद से बीतते थे।

इसके बाद एक समय सुंदर स्वप्नों से सूचित शुभ लक्षणों से युक्त पुत्र को जन्म दिया, वह कामदेव समान सुंदर, सूर्य समान तेजस्वी, चंद्रबिंब समान सौम्य तथा जिन-धर्म के समान सुखकारक था, बारहवें दिन माता-पिता ने उसका नाम 'सुधर्म' रक्खा, कालक्रम से उन द्रोनों को धनवाहन नाम का एक दूसरा पुत्र भी हुआ। जब सुधर्म आठ बरस का हुआ तब एक समय अप्रतिबद्ध विहारी चौदह पूर्व के ज्ञाता श्रमणों से परिवृत्त सुदर्शन नामक आचार्य आए और नगर के पूर्वोत्तर दिशा में नंदनोद्यान में उतरे, सभी नगर-निवासी सूरि की वंदना के लिए चले, तब पुत्र के साथ धनभूति भी भक्ति से चला, तीन प्रदक्षिणा करके धनभूति ने गुरु की वंदना की। गुरु ने भवसागर पार करने में प्रवहणरूप धर्म लाभ दिया, बाद में शेष मुनियों की भी वंदना करके धनभूति नगर निवासी लोगों के साथ भूमि पर बैठा, सूरि ने धर्मोपदेश प्रारंभ किया, उन्होंने कहा कि चारित्र कल्पवृक्ष है, सम्यक्त्व उसका मूल है, पंचमहाव्रत ही उसका स्कंध है, समिति

गुप्ति आदि उसकी शाखाएँ हैं, वह अनेक अभिग्रह रूप गुच्छों से सुशोभित है, शीलांग उसके पत्र हैं, लब्धि फूल है, स्वर्ग मोक्ष सुख उसका फल है, वह दुःख संतप्त जीवों का शरण है, चपल ईंद्रियाँ, विषयसंग दुःख में कारण हैं, क्रोधादि कषाय दुर्गति के साधन हैं, एक बार किया गया भी प्रमाद जीवों को भवसागर में गिराता है, सूरि के वचन सुनकर संवेग धारण करके नगरनिवासी लोग अपने-अपने घर चले, धर्मोपदेश सुनते ही संसार भय से उद्विग्न होकर सुधर्म ने प्रणाम करके सूरि से प्रार्थना की कि जन्म-जरा-मरण से मैं भयभीत हूँ यदि पिताजी आज्ञा दें तो मैं आपके पास प्रव्रज्या लेना चाहता हूँ, माता-पिता ने उसे मुक्त किया और सूरि ने उसे भागवती दीक्षा दे दी।

ग्रहण आसेवन रूप दोनों प्रकार की शिक्षा का अभ्यास करके संयम, तप आदि में तत्पर होकर वह गुरु के पास अध्ययन करने लगा। वह सूत्रार्थ का ज्ञान करते हुए क्रमशः चौदह पूर्व का ज्ञाता बन गया। योग्य समझकर शुभ नक्षत्र से सूरि ने उसे अपने पद पर अभिषिक्त किया और सुदर्शन सूरि संलेखना से मोक्ष में गए, श्रमणों से परिवृत्त सुधर्मसूरि ग्रामनगरादि में विहार करते हुए भव्यात्माओं को प्रतिबोध देने लगे। इधर धनवाहन भी कुमारभाव प्राप्त होकर अनेक कलाओं का अभ्यास करके उसने कामिनीजनों के चित्त को चुराने में समर्थ यौवन प्राप्त किया। पिता ने उसके लिए सुप्रतिष्ठ नगर के हरिदत्त श्रेष्ठी की विनयवती भार्या से उत्पन्न अनंगवती नामक कन्या का वरण किया। सुंदर लग्न में बड़े समारोह के साथ धनवाहन ने उसके साथ विवाह करके अपने नगर लाकर अनेक प्रकार के विषयसुख का

अनुभव किया। क्रमशः वह इतना विषयासक्त हो गया कि बीतें हुए समय को भी वह जानता न था। एक समय साधुओं के साथ वर्षावास निमित्त सुधर्मसूरि विजयवती नगरी में आए, साधुओं ने वासस्थान की याचना की, सार्थवाह ने ज्ञानशाला में उनका आवास कराया। अपने परिजन के साथ सार्थवाह आकर गुरु के पास धर्म श्रवण करने लगा। धनवाहन अनंगवती में इतना आसक्त हो गया कि पिता के कहने पर भी गुरुवंदना के लिए कभी नहीं आता था। छोटे भाई को अत्यंत विषयासक्त तथा धर्मनिरपेक्ष जानकर गुरु के मन में चिंता हुई कि दुर्लभ मनुष्यत्व को प्राप्त कर भी विषयासक्त होने से नरक तथा घोर तिर्यंच योनियों में परिभ्रमण करेगा। अतः किसी प्रकार से प्रतिबोध देकर इसे धर्म-मार्ग में ले आऊँ, यह सोचकर सूरि ने उसे बुलवाया। बड़े उपचार से आकर सूरि की वंदना करके जब उनके पास बैठा तब सूरि ने कहा, भद्र! अनेक पुग्दल परिवर्तन के बाद इस मनुष्यभव को व्यर्थ मत बनाओ, जीव विषयों में आसक्त होकर कर्म बाँधते हैं और इस संसार में उधम योनियों में परिभ्रमण करके नारक तिर्यंचगति में जाकर अनेक पीड़ाओं का अनुभव करतें हैं, एक-एक इंद्रिय के वश में रहनेवाले जीव भी जब कष्ट को पाते हैं तो फिर पंचेद्रियवशीभूत मनुष्य की क्या स्थिति होगी? अतः सुंदर! विषयसुख छोड़कर धर्म में अपने चित्त को लगाओ और अति-दुर्लभ मनुष्यभव को सफल बनाओ। उनकी बात सुनकर धनवाहन ने कहा कि मैं आपकी बात मानता हूँ किंतु वह बिचारी एक क्षण के लिए भी मेरा विरह सहन नहीं कर सकती है, इसीलिए तो मैं आपकी वंदना के लिए नहीं आ सकता हूँ, तब फिर गुरु ने कहा कि चंचल चित्तवाली स्त्रियों के लिए जो अपना दुर्लभ मनुष्यभव

को बिगाड़ता है वह का-पुरुष है, वह सुपुरुष नहीं हो सकता। स्त्रियाँ अंदर से विषभरी होती हैं बाह्यवृत्ति से गुंजाफल के समान मनोहर दीखती है, सत्य शौच दयारहित, अकार्य में रत स्त्रियों में विद्वान् कभी भी अनुराग नहीं कर सकता। अनुरक्त स्त्रियाँ धन-हरण करती हैं, विरक्त होने पर प्राण लेने के लिए भी तत्पर हो जाती हैं। राग-विराग दोनों स्थिति में स्त्रियाँ भयंकर होती हैं, स्त्रियाँ मन में कुछ और सोचती हैं, आचरण कुछ और ही करती हैं, जार के कारण पति को मारती हैं, अपने ऊपर विश्वास कराती हैं, खुद किसी के ऊपर विश्वास नहीं करती हैं, अधिक क्या ? वे तो अपने पुत्र को भी मार डालती हैं, अतः वत्स ! राग छोड़कर धर्माचरण में लग जाओ, गुरु की बात सुनकर हँसते हुए धनदेव ने कहा कि अन्य स्त्रियाँ भले ही वैसा आचरण करती हो किंतु मेरी भार्या अनंगवती तो पतिव्रता, सत्यशील, दया आदि से युक्त है, वह अत्यंत अनुरक्त है, विनीत है, स्थिर स्नेहवाली है, गुरुजन के प्रति भक्तिभाव रखनेवाली है, तो फिर अन्य स्त्री की तरह अनंगवती को कैसे माना जाए ? तब गुरु ने कहा, मैं मानता हूँ तुम्हारी स्त्री पतिव्रता होगी, फिर भी उसके साथ किया गया उपभोग नरक के कारण बनेगा। किंपाक फल की तरह स्त्री भी उपभुक्त होने पर विषम फल को देनेवाली होती है, स्त्री सुरत से बढ़कर दुःखदाई कर्म और क्या होगा ? जिस प्रकार विषमिश्रित सरस भोजन भी प्राण हरण करता है उसी प्रकार सुंदरी स्त्री भी उपभोग करनेवाले को दुर्गति में देती है। इसलिए दुर्गति कारण कांतानुराग को छोड़कर पंचमहाव्रतयुक्त होकर चारित्र में तत्पर हो जाओ। इस प्रकार प्रतिबोध पाने पर उसका अनुराग कुछ शिथिल हो गया और एक दिन एकांत में हाथ जोड़कर उसने

गुरु के सामने कहा कि आपके अमृतमय वचन सुनने पर भी दुष्ट सर्प के विष की तरह राग नहीं टूटता है। भगवन् ! यदि आपकी आज्ञा हो तो सुरत-सुख की पिपासा छोड़कर दयिता के साथ दीक्षा ले लूँ। केवल मैं उसको देखे बिना रह नहीं सकता हूँ। सूरि ने यह सोचकर कि अभी दीक्षा दे देता हूँ। सूत्रार्थ का अनुशीलन करने से इसका राग टूट जाएगा, यह सोचकर भार्यासहित धनवाहन को दीक्षा दे दी। चंद्रजसा महत्तरिका के पास अनंगवती साधुक्रिया सीखने लगी। सूत्रार्थग्रहण करने पर भी जब धनवाहन का राग नहीं टूटा तब फिर गुरु ने उसे समझाया कि भद्र ! अन्य स्त्री में राग से भी दुर्गति मिलती है किंतु श्रमणी के साथ अनुराग तो अनंतनरक को देनेवाला होता है। गुरुवचन सुनने पर उसने बड़ा पश्चात्ताप किया, फिर भी जब दोनों का अनुराग निःशेष नहीं हुआ, फिर भी गुरु आज्ञा पालन में दोनों का समय बीतने लगा। एक दिन वसुमती सहित अनंगवती ने बाहर जाने पर महिला सहित एक पुरुष को देखकर वसुमती से कहा कि आर्ये ? यह स्त्री तो बहन सुलोचना जैसी लगती है। उसकी बात सुनकर ठीक से देखकर वसुमति ने कहा कि यह मेरी बहन सुलोचना ही है, मेखलावति में सुबंधु के साथ इसका विवाह हुआ था। एक दिन राजकुमार कनकरथ ने इसे देख लिया और इसे अपने अंतःपुर में रख लिया। वह अंतःपुर में प्रधान बन गई, यह बात तो तुम्हें भी मालूम है। यह पुरुष वही राजकुमार कनकरथ है, सुलोचना ने कहा कि मैं इससे बात करती हूँ, देखूँ यह मुझे पहचानती है या नहीं ? तब दोनों ने उससे कुछ पूछा किंतु उसने

कुछ असम्बद्ध उत्तर दिया, उसकी बात सुनकर दया वशीभूत होकर उन दोनों को सुधर्म सूरि के पास ले गई, और उसने कहा, भगवन् ! यह हमारी बड़ी बहन है, यह क्यों पागल हो गई हैं ? गुरु नें कहा, यह वही सुलोचना है और यह वही राजकुमार कनक-रथ है, ईर्ष्यावश क्रोध में आकर एक सपत्नी नें सोए हुए इन दोनों के सिर पर उन्मादकारी चूर्ण छींट दिया। उसी से इन दोनों को उन्माद हो गया। राजा ने मांत्रिक-तांत्रिक को बुलाकर बहुत उपाय किया किंतु इन दोनों का उन्माद दूर नहीं हुआ। बाद में ये दोनों एक दिन नगर से निकल गए, वसुमती ने कहा, भगवन् ? यदि आप इसका उपचार जानते हों तो अवश्य दया करें, गुरु ने उन्मादनाशकारी प्रतियोग दिया, वे दोनों स्वस्थ हो गए। दोनों अत्यंत आश्चर्यचकित हो गए, दोनों बहनों को देखकर सुलोचना कहने लगी कि यह स्वप्न है ? या इंद्रजाल है ? कहाँ वह नगरी ? कहाँ वह वे अलंकार ? तब वसुमती ने उन दोनों से उन्माद का कारण बतलाया और गुरु की कृपा से तुम दोनों अब स्वस्थ हो गए। फिर वसुमती ने कहा कि भद्रे ? जिसी समय कनकरथ ने तुम्हें अंत:पुर में रख लिया उसी समय माया से सुमंगल विद्याधर ने धनपति के वेश में मेरे साथ संभोग किया। धनपति देव ने प्रतिबोध दिया और मैं चंद्रजसा आर्या के पास दीक्षित हुई। यह अनंगवती भी धर्मश्रवण करके संसारभय से उद्विग्न होकर स्वामी के साथ दीक्षित हो गई। देखो ! ये हमारे गुरु सुधर्म-सूरि हैं, दोनों ने बड़े विनय से गुरु की वंदना की। उपदेश सुनने के बाद दोनों दीक्षित हो गए। चंद्रजसा के पास सुलोचना अनेक साधु क्रियाएँ करने लगीं। इस प्रकार तीनों बहन तथा मुनि कनकरथ तथा धनवाहन के बहुत समय बीत गए। चित्रवेग ? उस समय

मुनि धनवाहन तथा कनकरथ में परस्पर अत्यंत अनुराग था। गुरु की आज्ञा से दोनों पंच महाव्रत पालन में लीन थे। उसके बाद अपनी आयु थोड़ी जानकर सूरि ने संलेखना के द्वारा अनशन-विधि से शरीर छोड़कर दूसरे देवलोक में चंद्रार्जुन विमान में विमान-स्वामी शशिप्रभ देव बनें। धनवाहन मुनि भी राग छोड़े बिना श्रामण्य पालन करके विधिपूर्वक कालधर्म पाकर उसी दूसरे देवलोक में शशिप्रभ देव के विमान-स्वामी बनें। उनका नाम विद्युत्प्रभ देव हुआ। अनंगवति साध्वी भी उनकी देवी चंद्ररेखा बनी। पूर्व वैर को स्मरण करके सुबंधुजीव अग्निकुमार देव ने अनेक उपसर्ग करके सुलोचना आर्या के साथ-साथ कनकरथ साधु को बड़ी निर्दयता से मार डाला। कालधर्म पाकर दोनों दूसरे देवलोक में उत्पन्न हुए। कनकरथ चंद्रार्जुन विमान में विद्युत्प्रभ सामानिक देव बने और सुलोचना उनकी देवी स्वयंप्रभा हुई। आर्या वसुमती भी काल धर्म पाकर पूर्ववल्लभ चंद्रार्जुन नामक देव की चंद्रप्रभा देवी हुई। इस प्रकार एक ही विमान में दिव्य सुख का अनुभव करते हुए आठ पल्योपम बीत गए। विद्युत्प्रभ देवच्युत होकर इसी वैताढ्य की दक्षिण श्रेणी में रत्नसंचय नगर में बकुलावती भार्या से पवनगति विद्याधर का पुत्र होकर उत्पन्न हुआ। वही धनवाहनजीव विद्युत्प्रभ देव आप चित्रवेग हैं, देवी चंद्ररेखा भी स्वर्ग से च्युत होकर वैताढ्य पर्वत पर कुंजरावर्त नगर में अमितगति विद्याधर की भार्या चित्रमाला की कुक्षि से कनकमाला रूप में उत्पन्न हुई। चित्रवेग ? पूर्व जन्म में श्रमणावस्था में भी आपने अपना राग नहीं तोड़ा इसीलिए आपको अभी रूप, बल, कांति, ऋद्धि आदि सब कुछ अल्प मिले। देवभव में भी आपकी आयु कम थी। इस मनुष्य भव में भी परस्पर दर्शन से

लेकर आज तक असह्य वियोगजनित दुःख का अनुभव करना पड़ रहा हैं, चित्रवेग ? अधिक क्या कहूँ ? श्रामण्य लेकर भी जो आपने राग नहीं छोड़ा, उसी से यह विपत्ति आपके ऊपर आई है। देवभव में आपका मित्र जो चंद्रार्जुन देव था वह भी च्यूत होकर चित्रगति रूप में उत्पन्न हुआ। वसुमती आर्या जो चंद्रप्रभादेवी थी। वही च्युत होकर प्रियंगुमंजरी रूप में उत्पन्न हुई। आपके पूर्वभव मित्र चित्रगति ने ही उपाय से आपको कनकमाला प्राप्त कराई थी। अभी कर्मवश से आपको कनकमाला के साथ वियोग हो गया है। चित्रवेग ? अधिक कहने से क्या लाभ ? आपने जो पूछा था, उसका उत्तर मैंने दे दिया। अन्य भव में कनकरथ नाम का साधू जो आपका अत्यंत प्रिय था। बाद में जो देवलोक में विद्युत्प्रभ नाम का देव हुआ। वही मैं हूँ, मैं आपका अत्यंत प्रिय मित्र आज भी उसी देवलोक में हूँ, इसीलिए अभी मैंने आपके साथ ऐसा व्यवहार किया है।

चिरपरिचितवर्णन नाम ॥

अष्टम परिच्छेद समाप्त

० ० ०

नवम्–परिच्छेद

उसके बाद चित्रवेग ने कहा, सुरवर ? आप कृपा कर यह भी बतलाइए कि उस समय मुझे मणि देकर आप वेग में कहाँ गए थे ? देव ने कहा, सुंदर ? मेरे द्वारा कही जाती हुई उस बात को भी सुनें–आज शशिप्रभ देव ने मुझे आज्ञा दी कि विद्युत्प्रभ ? आप शीघ्र जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में कुशाग्रपुर नगर में धन-वाहन मुनिवर के पास जाइए, क्यों कि उनके पूर्व वैरी ने ध्यानस्थ उन्हें देख लिया हैं, क्रोध में आकर वह बहुत उपसर्ग करेगा, मैं भी इंद्र की आज्ञा लेकर आ रहा हूँ, बहुत अच्छा, यह कहकर वहाँ से वेग में चलने पर यहाँ मैंने प्रियासहित भागते हुए आपको देखा। अवधि ज्ञान से मैंने जान लिया कि यह वही मेरा मित्र विद्युत्प्रभ है और नहवाहण के भय से भागता जा रहा है और नहवाहण भी इसके पीछे आ रहा है, तब पूर्व मित्र का कुछ उप-कार करूँ यह सोचकर मैं आपके पास आया। प्राण रक्षा के लिए दिव्य मणि देकर धनवाहन मुनिवर के पास गया, वहाँ उनका उपसर्ग करनेवाले उस देव से मैंने कहा, रे नीच ! देवोंद्रों के भी वंदनीय, समान शत्रु मित्रवाले मुनिवर को तू पीड़ा देकर अब कैसे बचेगा ? मेरी बात सुनकर चकित होकर वह भवन पति देव एकाएक भाग गया। इतने में शुक्ल ध्यान में आने पर मोह नष्ट हो जानें से उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हो गया, परम विनय से मैंने

केवली महिमा की, दुन्दुभि शब्द सुनकर बहुत देव-मनुष्य आए। केवली ने मोक्षसुख के लिए उन्हें धर्मोपदेश दिया, अवसर पाकर मैंने पूछा, भगवन्? आपने उस देव का कौन-सा अपराध किया था? जिससे वह पापी आपको मारने के लिए तैयार हो गया था। तब केवली ने कहा कि अन्य भव में उसके साथ मेरा कैसा व्रत था, सो सुनें—

घातकी खंड विदिह में चंपा नाम की एक नगरी है, जिसमें पद्म नामक राजा और समरकेतु नामक युवराज दोनों सहोदरभाई देश विरति और नीति से राज्यधुरा का पालन करते थे। उन्हें जिन-वचन में श्रद्धा थी और परस्पर अत्यंत स्नेह था। एक समय उनकी सभा में आकर नास्तिकवादी कपिल ने जीव, सर्वज्ञ, और मोक्ष का खंडन किया। युवराज ने अनेक हेतु दृष्टांत और युक्तियों से उसके मत का खंडन कर दिया। जब वह उत्तर न दे सका, तब मंत्री महंत सामंतों ने उसका बड़ा उपहास किया। महाजनों के बीच अपमानित होने से युवराज के ऊपर उसे बड़ा क्रोध आया और एकाएक सभा से निकलकर वह सोचने लगा कि आज तक मैं कहीं भी पराजित नहीं हुआ था। फिर इसने सभा में मुझे क्यों पराजित किया? अब मैं रात में इसके घर जाकर तलवार से जब इसका सिर काटूँगा तभी मेरे मन में शांति आएगी, रौद्र ध्यान में आकर इस प्रकार सोचकर रात में उसके घर जाकर शोचालय के पास छिप गया। युवराज को जब शौच जाने की इच्छा हुई तो दीपक लेकर आगे चलनेवाले लोगों ने शौचालय के पास हाथ में तलवार लिए उसको देखा और पकड़-कर बाँध लिया। उसको देखते ही युवराज समझ गया कि वाद में पराजित होने से यह मेरा वध करने के लिए यहाँ आया है।

किंतु उसके दीन-वचन को सुनकर कँपते हुए शरीर को देखकर कुमार को दया आ गई, उसने अपराधी कपिल से कहा कि नीच! तुझको जीवित छोड़ दिया जाता है किंतु तू मेरे देश को छोड़कर दूसरे देश में जाकर रह। युवराज की बात सुनकर वह वहाँ से भागा और दूर देश में भीलों की पल्ली में जाकर रहने लगा। एक समय पद्म राजा ने अपने पुत्र को राज्य देकर युवराज के साथ गुरु के पास दीक्षा ले ली, गुरुसहित दोनों भाई विहार करते हुए एक सार्थ के साथ रत्नपुर को जा रहे थे, दोनों भाई सार्थ से भ्रष्ट होकर घूमते हुए पानी पीने के लिए एक पल्ली में आए। कपिल ने इनको पहिचान लिया। समरकेतु मुनि को देखकर उसे बड़ा क्रोध आया। उसने मन में सोचा कि इस पापी ने मुझे वाद में जीतकर देश से निकाल दिया, अतः किसी छल से इसे अवश्य मारना चाहिए। यह सोचकर उसने अत्यंत विनय से उनकी वंदना की और अपने घर ले जाकर विषमिश्रित अन्नजल देकर विनयपूर्वक कहा कि भगवन्! आप बहुत थके हुए हैं अतः घर के एक भाग में एकांत स्थान में भोजन करके विश्राम कीजिए और प्रातःकाल यहाँ से विहार करें। उसकी बात सुनकर कुछ देर विश्राम करके स्वाध्याय करने के बाद ज्यों ही वे भोजन करने के लिए तैयार हुए मुनि अनुकंपा से सन्निहित देवता ने विष हर लिया, भोजन करके वे फिर स्वाध्याय करने लगे। तब कपिल ने मन में सोचा कि ये लोग विष से नहीं मरे, क्यों? हो सकता हैं मंत्रबल से इन्होंने विष की शक्ति नष्ट कर दी हो। इसलिए रात में इन्हें अवश्य मार डालना चाहिए क्यों कि इनके जीतेंजी मेरे चित्त में शांति नहीं आएगी। रात में स्वाध्याय कर सो जाने पर हाथ में तलवार लेकर उनको मारने के लिए तैयार हुआ।

क्रोधित होकर देवी ने उसी तलवार से उसे मार डाला। रौद्र ध्यान से मरकर वह दूसरे नरक में गया और मुनि भी निरतिचार श्रामण्य पालन कर विधिपूर्वक काल करके दोनों सौधर्म कल्प में अप्सराओं से सुशोभित विमान में उत्पन्न हुए। पद्म-जीव वहाँ एक सागरोपम आयु भोगाकर ऐरवत द्वीप में विजयनगरी में धनभूति श्रेष्ठी के सुधर्म नामक पुत्र हुए और दीक्षा लेकर दूसरे कल्प में चंद्रार्जुन विमान में शशिप्रभ नामक देव हुए। संपूर्ण दो सागरोपम उनकी आयु हुई। भद्र ! विद्युत्प्रभ ? अभी वे ही देव आपके विमान-स्वामी हैं, जिनके आदेश से आप अभी मेरे पास आए हैं, वह समरकेतु जीव आठपल्योपम अधिक एक सागरोपम आयु भोगकर देवलोक से च्युत होकर इसी भरतक्षेत्र में कुशाग्रपुर नगर में भद्रकीर्ति राजा की प्रिय भार्या सुबंधुदत्ता की कुक्षि में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ और धनवाहन नाम पड़ा। युवावस्था में आने पर उनको राज्य देकर उनके पिता श्रमण बने। धनवाहन ने भी अनेक पूर्वलक्ष राज्य का पालन करके अपने पुत्र नरवाहन को राज्य देकर दीक्षा ले ली। भद्र ! विद्युत्प्रभ ? वही मैं आज विहार कर इस नगर में आया। वह कपिल नरक में एक सागरोपम से भी कुछ अधिक समय तक अनेक दुःखों को भोगकर मगध देश में साभड़ नाम का अहीर बना। बाल तप करके उपरुद्र नामक भवनपति देव बना। मुझे यहाँ देखकर पूर्ववैर को स्मरण कर मेरा वध करने के लिए यहाँ आया, संक्षेप में, मैंनें आपके प्रश्न का उत्तर दे दिया। चित्रवेग ! उसके बाद फिर भी मैंने केवली से पूछा कि भगवन् ! मेरी आयु कितनी है ? और मेरा जन्म कहाँ होगा ? मेरे पिता कौन होंगे ? जिन-धर्म का उपदेश कौन देगा ? केवली ने कहा कि अभी इक्कीस कोड़ाकोड़ी वर्ष

आपकी आयु शेष है। देंवलोक से च्युत होकर हस्तिनापुर में श्री अमरकेतु राजा की देवी कमलावती की कुक्षि में पुत्ररूप से उत्पन्न होंगे। पूर्ववैरी देव माता के साथ आपका अपहरण करेगा। विद्याधर के घर में बढ़ेंगे, देवलोक से आते हुए आपने जिसको दिव्यमणि दी वे ही आपके वास्तविक पिता होंगे। सुप्रतिष्ठ सूरि के पास श्रावक धर्म को प्राप्त कर सम्यक्त्व प्राप्त कर संसार का अंत करेंगे। इस प्रकार केवली के वचन को सुनकर तीन प्रदक्षिणा करके फिर मैंने उनकी वंदना की, वहाँ से उड़कर आपके पास आया हूँ, अब आपका जो आदेश अनुसार करूँ, तब चित्र-वेग ने कहा, सुरवर ? आप मेरी बात सुनें, नहवाहन करुण शब्द से रोती हुई मेरी भार्या को हरण कर ले गया। उससे मैं अत्यंत दुःखी हूँ, आप तो अवधिज्ञान से प्रत्यक्ष की तरह जानते होंगे। अतः बतलाइए कि वह कैसे रहती है ? जीती है या नहीं ? कुछ हँसते हुए देव ने कहा कि रोती हुई आपकी भार्या को गंगावर्त ले जाकर नहवाहण ने अपने अंतःपुर में रख दिया, वह सोचने लगी कि मेरे प्रियतम सर्प से ग्रसित होकर अत्यंत पीड़ा से मर गए होंगे, अथवा जीते भी होंगे तो अब उनका दर्शन नहीं होगा अब जीना सर्वथा बेकार है" यह सोचकर उसने उग्र विष खा लिया, खाते ही पृथ्वी पर बेहोश होकर गिर पड़ी। हाहा शब्द होने लगा, नह-वाहण विद्याधर भी वहाँ आया, मंत्र-तंत्र का प्रयोग किया, उसके अंग में विषनाशन मणि को भी बाँधा, जब उससे भी लाभ नहीं हुआ, तब विषमंत्र जाननेवाले विद्याधरों को बुलाया, उनके द्वारा भी जब स्वस्थ नहीं की जा सकी तब उसे मृत मानकर अग्नि-संस्कार के लिए नहवाहण के बांधव श्मशान ले गए और चिता में फेंककर उन्होंने आग लगा दी। इतना सुनते ही हे धनदेव ?

चित्रवेग के अंग शिथिल पड़ गए, मानो वह वज्राघात से चूरचूर न हो गया हो, सर्प से ग्रसित न हो, राक्षस से गृहीतन हो, मुद्गर से ताडित न हो इस प्रकार दीर्घ निश्वास लेकर, मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ा, उसकी उस अवस्था को देखकर उस देव ने शीतल जल लाकर उसके शरीर को सींचा, मैंने भी अपने उत्तरीय वस्त्र से पवन दिया। एक क्षण के बाद मूर्च्छा टूट गई किंतु फिर मूर्च्छित हो गया। किंतु किसी-किसी तरह जब वह कुछ स्वस्थ हुआ और आँसू बहाते हुए मुख को नीचा कर बैठ गया तब उस देव ने बहुत समझाया कि एक स्त्री के लिए आप इतना शोक क्यों कर रहे हैं? सुंदर? अनंत संसार में परिभ्रमण करने वाले जीवों *को संयोग-वियोग सौ-सौ बार होते रहते हैं इसलिए विद्वानों को* चाहिए कि इष्ट संयोग में हर्ष तथा इष्ट वियोग में विषाद नहीं करें।

पूर्वभव में श्रमणत्व प्राप्त करने पर भी आपने जो अनुराग नहीं छोड़ा उसके प्रभाव से स्वर्ग में भी आप तेजबलहीन रहे और इस जन्म में भी वियोग दुःख को प्राप्त किया, फिर भी आप उसके ऊपर अनुराग नहीं छोड़ते, इन दुःखों का कारण वह राग ही तो है, देव की बात सुनकर चित्रवेग ने कहा, सुरवर? मेरी दाईं आँख फड़कती है, आपका मुख भी प्रसन्न दिखाई देता है अतः यदि आप अन्य जन्म के मेरे मित्र हैं तो यथार्थ बतलाइए कि वह जीती है या मर गई? जल्दी उसका दर्शन कराइए, नहीं तो अब मैं जी नहीं सकता, तब देव ने कुछ हँसते हुए कहा, भद्र! आप पीछे देखिए, आपकी प्रिया खड़ी है, जब उसने पीछे की ओर देखा तो उसे विभूषित अंगोंवाली अपनी प्रियतमा का दर्शन हुआ, फिर अपने मन में शंकित होते हुए चित्रवेग ने कहा कि सुरवर

आप हँसी छोड़कर सत्य बतलाइए कि नहवाहण के द्वारा हरी गई वही मेरी प्रिया है अथवा मुझे आश्वासन देने के लिए आपकी यह देवमाया है ? क्यों कि जब मेरे विरह में विष खाकर वह मर गई तो फिर वह कैसे हो सकती है ? देव ने कहा, ठीक वही है, यह मेरी देव माया नहीं है, मैंने जिस प्रकार इसको लाया सो आप सुनें–केवली महिमा करके जब मैं आपके पास आ रहा था तब अवधि ज्ञान से मैंने जान लिया कि आपकी भार्या ने मरने का निश्चय कर लिया है, तब आपकी भार्या को लेकर आपके पास आने का मैंने विचार किया, गंगावर्त जाने पर देखा कि विष से इसके अंग शिथिल पड़ गए हैं, मैंने सब की मंत्रशक्ति नष्ट कर विष स्तम्भित कर दिया, मृत जानकर अग्निसंस्कार के लिए श्मशान ले जाकर नहवाहण के परिजन जब इसे चिता पर रखकर आग लगाने लगे, तब विष दूरकर इसको लेकर आपके पास आया और इसके ऊपर आपके अनुराग की परीक्षा करने के लिए मैंने आपसे ऐसा कहा था, और इसे छिपा रक्खा था । आप विश्वास कीजिए यह वही कनकमाला है, देव की बात सुनकर चित्रवेग अत्यंत प्रसन्न हो गया, उसके बाद देव को प्रणाम करके हाथ जोड़कर चित्रवेग ने कहा कि आपने मेरा बड़ा उपकार किया, आपकी कृपा से अब मैं सर्वथा स्वस्थ हूँ, अब मैं आपका क्या करूँ, आदेश दीजिए । देव ने कहा कि देव दर्शन अमोघ होता है अतः आप कुछ कहे जो मैं आपको दूँ, चित्रवेग ने कहा कि यदि आप देना चाहते हैं तो आप ऐसी वस्तु दी जिए जिससे नहवाहण से फिर मुझे पराभव प्राप्त न हो, देव ने कहा कि उस समय स्त्रीसहित आपके ऊपर प्रहार करके उसने विद्याधर की मर्यादा को तोड़

दिया, इस से उसकी विद्या नष्ट हो गई। अब वह आपको पराभव देने में असमर्थ है।

दूसरी बात यह है कि उस समय मेरे भावी भव को बतलाते हुए केवली ने कहा था कि पूर्व वैरी के द्वारा अपहरण होने पर विद्याधरेंद्र के घर पर बढ़ेंगे, मैं मानता हूँ वे विद्याधरेंद्र आप ही होंगे, अतः मैं आपको वैताढच की दक्षिण श्रेणी में सर्व विद्याधर राजाओं का स्वामी बनाता हूँ, मेरे प्रभाव से आपको सर्व विद्याधर विद्याएँ पठित सिद्ध होगीं, आप वचन मात्र से दूसरे की विद्याओं तथा औषधियों को विफल बनाएँगे, बड़े से बड़े अभिमानी विद्याधर विनयपूर्वक आपके आज्ञाकारी बनेंगे, अतः अभी वैताढच के सिद्धकूट शिखर पर जाकर शाश्वत जिन-प्रतिमाओं का अष्टाह्निक महोत्सव करके धरणेंद्र की अभ्यर्थना करके आपको सब विद्याएँ देकर अपने स्थान को जाऊँगा। चित्रवेग ने उस देव को प्रणाम करके कहा कि सुरवर ? यह आपकी बड़ी कृपा होगी। उसके बाद बहुमानपूर्वक मेरे साथ बातचीत करके धनदेव ? बड़ी प्रसन्नता से मुझे यह मणि देकर उस देव के साथ कनकमाला सहित वह विद्याधर आकाश में उड़ गया। और मैं भी वहाँ से चलकर अपने स्थान पहुँचा।

इसलिए धनदेव ? यह मणि इस प्रकार से मुझे प्राप्त हुई थी, ठीक यह दिव्यमणि है। यह सभी दोषों को दूर करनेवाली है, विशेषकर विषों को दूर करता हैं। अतः धनदेव ? मेरे अनुरोध से आप इस मणि को स्वीकारें, उनकी बात सुनकर बोलने में अत्यंत कुशल धनदेव ने कहा कि आपका दर्शन आपका प्रेमपूर्वक संभाषण ही मेरे लिए लाखों मणि से बढ़कर है, इस पर फिर

सुप्रतिष्ठ ने कहा कि आप इस मणि को स्वीकार करेंगे, इससे मैं अपने को कृतार्थ मानूंगा, अतः मेरे संतोष के लिए आप अवश्य इसे स्वीकार करें, सुप्रतिष्ठ के अत्यंत आग्रह पर धनदेव ने मणि को ग्रहण कर लिया। फिर सुप्रतिष्ठ ने कहा, धनदेव ! कुशाग्रपुर से लौटते समय अवश्य यहाँ आने का अनुग्रह करेंगे। यह स्थान तो रास्ते पर ही पड़ता है। लौटने के समय अवश्य आऊँगा। इस प्रकार बातचीत करके उसके घर पर रात बिताकर सार्थ के तैयार हो जाने पर सुप्रतिष्ठ के घर से निकलकर सार्थ को चला। परिजन सहित पल्लीनाथ ने अनुगमन किया, किसी-किसी तरह धनदेव ने पल्लीनाथ को पीछे लौटाया। वेसर पर चढ़कर धनदेव सार्थ के साथ वहाँ से चला। थोड़े दिन में कुशाग्रपुर पहुँचा, वहाँ अत्यंत बहुमूल्यवस्तु राजा नहवाहन राजा को उपहार रूप में देकर राजा का प्रीतिभाजन बना। सागर श्रेष्ठी के मकान भाड़े पर लेकर उसमें अपना भाण्ड उतारा। इस के बाद वहाँ क्रय-विक्रय करते कितने महीने बीत गए ? व्यापार के प्रसंग में सागर श्रेष्ठी के पुत्र श्रीदत्त के साथ धनदेव को बड़ा प्रेम हो गया। एक दिन श्रीदत्त बड़े आदरभाव से भोजन कराने के लिए धनदेव को अपने घर पर ले गया। वहाँ भोजन करते समय अत्यंत रूपवती नवयौवन में प्रवेश करती हुई श्रीदत्त की बहन श्रीकांता जब पंखा झेल रही थी, उसको देखते ही धनदेव ने उसके प्रत्येक अंगों का निरीक्षण किया, उसने भी स्नेह से धनदेव को देखा। रोमांचित होकर धनदेव मन में सोचने लगा कि मांगने पर यदि ये लोग मुझे यह कन्या दे दें तो इस भार्या से मेरा मनुजत्व सफल हो जाए। यदि स्वयं याचना करूँ और ये लोग देना नहीं स्वीकार करेंगे तो लघुता होगी। अथवा समान जाति का हूँ, व्यसनरहित

हूँ, यह भी देने लायक है तो क्यों नहीं देंगे, यह सोचते हुए भोजन कर लेने पर श्रीदत्त ने ताम्बूल दिया और धनदेव वहाँ से निकलकर अपने घर जाकर, श्रीकांता में आसक्ति से चिंतित होकर बिछौने पर सो गया । इधर कामार्त होकर अत्यंत उत्कण्ठिता श्रीकांता गृहोद्यान में कदली गृह में जाकर सो गई। वहाँ उसकी बाँह में एक सर्प ने काट लिया । वेदना से पीडित रोती हुई अपनी माँ के पास आकर उसने कहा, माताजी ? एक बड़े कालेनाग ने मुझे काट लिया है, यह कहकर विष की प्रचण्डता से आँखें बंद कर धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ी । उसकी यहाँ स्थिति देखकर उसके माता-पिता, भाई, परिजन सब के सब व्याकुल हो उठे । विष-वैद्यों मांत्रिक-तांत्रिकों को बुलाया । वे लोग मंत्र जाप तथा जड़ी-बूटी आदि का प्रयोग करने लगे । माता विलाप करने लगी । पिता ने आश्वासन दिया, सुंदरि ! नैमित्तिक के वचन को ध्यान में लाकर शोक छोड़ो, दयिते ! अभी जामाता प्रकट होगा । क्यों कि सुमति का वचन कभी झूठा नहीं पड़ता । कमलावती के लिए उसने जैसा कहा था वैसा ही हुआ । जब उपस्थित सभी मांत्रिक विष दूर करने में असमर्थ हो गए तब दुःखी होकर माता-पिता, भाई, परिजन यही सोचने लगे कि क्या नैमितक का वचन झूठा होगा ? फिर भी नगर में डिण्डिम शब्द से घोषणा करवाई कि साँप काटने पर श्रीकांता को कोई जिला न सका । इतने में किसी प्रयोजन से वहाँ आए हुए धनदेव ने सकल परिवार को व्याकुल देखकर सामने आए हुए श्रीदत्त से पूछा कि मित्र ? आज आप लोग इतने व्याकुल क्यों हैं ? आप लोगों का मुख इतना मलिन क्यों ? श्रीदत्त ने कहा, मेरी बहन कुमारी श्रीकांता को सांप ने काट लिया है, कोई उसे जीवित नहीं कर रहा है अतः हम लोग चिंतित हैं ?

दूसरे, नैमित्तिक ने पहले बतलाया था कि साँप काटने पर जो इसे उज्जीवित करेगा वही इसका भर्ता होगा। किंतु लगता है आज नैमित्तिक का वचन झूठ हो जाएगा। धनदेव ? अब हम लोगों को इसकी जीने की आशा टूट गई है, बहन बड़ी प्यारी है अतः हम लोग अत्यंत व्याकुल हैं, उसके वचन सुनकर मन में हर्षित होकर धनदेव ने कहा कि आप लोग चिंता छोड़ दें, नैमित्तिक का वचन सर्वथा सत्य ही होगा। पहले आपकी बहन को दिखलाइए, श्रीदत्त धनदेव को वहाँ ले गया। धनदेव ने अपने आदमी से कहा कि सुप्रतिष्ठ से दी गई मणि लेकर आओ। वह जल्दी से जाकर मणि लेकर आ गया। निर्मल जल से मणि को सींचकर उसके पानी को श्रीकांता के ऊपर छिड़कते ही श्रीकांता मानो सोकर न जगी हो, इस प्रकार उठकर बैठ गई ?

उसको देखकर श्रीदत्त सागर श्रेष्ठी आदि ने हर्षित होकर कहा कि धनदेव ! यह कन्या आपको दी गई। बाद में शुभलग्न में दोनों का विवाह हुआ। श्रीकांता के साथ धनदेव कितने महीने तक वहाँ विषय-सुख भोगता रहा। तब तक धनदेव के लोगों ने बहुत लाभ से उसके सारे भांड बेच दिए। धनदेव ने श्वशुर आदि से बिदा मांगीं। श्रेष्ठी ने पर्याप्त धन तथा दासी-दासादि देकर श्रीकांता को बिदा किया। धनदेव पहले के ही मार्ग से कुशाग्रपुर नगर से चला। क्रमशः सिंहगुफा के समीप पहुँचने पर कहा कि यहाँ से सिंहगुफा नज़दीक है। सुप्रतिष्ठ ने उस समय कहा था कि मुझे संतोष देने के लिए इसी मार्ग से आना। यह सोचकर कुछ परिजन के साथ धनदेव सिंहगुफा को चला। वहाँ पहुँचने पर देखा कि गुफा का कहीं पता भी नहीं है। कहीं अग्नि की ज्वाला में जले गाय-भैंस के करंक पड़े थे, कहीं जले हुए घोड़ों

की दुर्गन्ध फैल रही थी। कहीं वीरों के मांस नोंच-नोंचकर कुत्ते खा रहे थे। कहीं कुत्तों के भय से दूर भागकर सियार फें-फें कर रहे थे। कहीं सियारों के फेंकार सुनकर गिद्ध इधर से उधर उड़ रहे थे, कहीं भीलों के बाल-बच्चों की हड्डियाँ दिख रही थीं, कहीं अग्नि में जले अनेक वीरों के शरीर पड़े थे। इस स्थिति को देखकर धनदेव बड़ा दुःखी हुआ और उसने कहा, हाय ! इस गुफा को किसने जलाया ? इतने में करंकों के बीच से किसी ने कहा, धनदेव ! यहाँ आइए। मैं देव शर्मा हूँ, मेरे हाथ-पैर दोनों कट गए, मुझे बड़ी प्यास लगी है। थोड़ा पानी मुझे पिलाइए। उसकी बात सुनते ही धनदेव ने अपने आदमी को पानी लाने के लिए भेज दिया और उससे पूछा कि देवशर्मन् ! गुफा को जलाया ? सुप्रतिष्ठ कहाँ है ? धनदेव की बात सुनकर देवशर्मा ने कहा कि आज से तीन दिन पूर्व सिद्धपुर से एक आदमी आया था। उसने एकांत में सुप्रतिष्ठ से कहा कि मुझे आपके पिता के मंत्री सुमति ने आपके पास भेजा है। उन्होंने मुझसे कहा कि जाकर कुमार से कहो कि उनके पिताजी अत्यंत संभोग प्रसंग क्षयरोग होने से शीघ्र मरनेवाले हैं, सुरथ प्रजावर्ग को बहुत पीड़ा देता है, इसलिए सामंत महंत उससे विरक्त हैं, सब आपको चाहते हैं, आपको मारने के लिए कनकवती ने एक सेना की टुकड़ी भेजी है। अतः आप अपनी रक्षा करेंगे, वह आदमी इस प्रकार बात कर ही रहा था इतने में सेना पहुँच गई। सेना चतुरंगिणी थी अतः उसने गुफा को घेर लिया। भीलों के साथ सुप्रतिष्ठ युद्ध करने के लिए निकल पड़े। भयंकर युद्ध हुआ। बहुत भील लोग मारे गए। हमारा पराजय हो गया। सारभूत वस्तुओं को लेकर, गुफा को जलाकर सेना चली गई। मैं भी इस स्थिति में आ गया। सुप्रतिष्ठ कहाँ

गए मैं कुछ नहीं जानता हूँ, धनदेव ने सम्यक्त्व व्रत देकर पंच-नमस्कार मंत्र सुनाया, भाव से वह बार-बार मंत्रोच्चारण करने लगा। इतने में आदमी पानी लेकर आ गया, पानी पीकर वह मर गया। धनदेव ने दुःखी होकर उसका अग्नि-संस्कार किया। अपने आदमियों से सुप्रतिष्ठ का अन्वेषण करवाया। कहीं नहीं मिलने पर धनदेव बहुत दुःखी हो गया, उसने दैव के आचरण की तथा संसार की बड़ी निंदा की। सुप्रतिष्ठ कहाँ चले गए ? जीते है या नहीं इत्यादि सोचते हुए अपने सार्थ में आकर क्रमशः हस्तिनापुर पहुँच गया। माता-पिता, बंधु, मित्र-परिजन सब अत्यंत प्रसन्न हुए। सुंदर दिन में बंधु का अपने घर में प्रवेश कराया गया। पूर्व स्नेह से श्रीकांता सासु की आज्ञा लेकर अपने परिजन के साथ कमलावती के पास गई। अत्यंत स्नेह से उठकर कमलावती ने उसका आलिंगन किया और कहा कि बहुत दिन के बाद तुम को आज देखा, अच्छा हुआ जो तुम भी यहीं आ गई, देवी ने उसका उचित सत्कार किया। बैठकर दोनों ने कुशल-क्षेम के बाद बहुत बातें कीं, कुछ देर बातचीत करने के बाद श्रीकांता ने कहा कि अभी मैं अपने घर जाती हूँ, कमलावती ने कहा कि रोज आना। श्रीकांता ने 'ऐसा करूँगी' यह कहकर वहाँ से प्रस्थान किया और अपने घर आई। श्रीकांता को श्वशुर कुल में— कमलावती के साथ बातचीत तथा धनदेव के साथ विषय-सुख का अनुभव करने में करोड़ों वर्ष बीत गए। एक समय ऋतुस्नान करके स्वामी के साथ सोई हुई उसने रात के पिछले पहर में स्वप्न देखा। देखते ही जग गई और उसने कहा कि प्रियतम ! मैंने अपने मुख में चंद्र को प्रवेश करते देखा है। और देखते ही

मैं जग गई हूँ। धनदेव ने कहा, सुंदरि ! स्वप्न के अनुसार सकल वणिग्वर्ग में श्रेष्ठ पुत्र होगा। श्रीकांता ने कहा कि शासनदेवी के प्रभाव से ऐसा ही हो, यह कहकर उसने गाँठ बाँधती। उसी रात श्रीकांता की कुक्षि में गर्भ उत्पन्न हुआ। क्रमशः दो महीने बीते। तीसरे महीने में अभयदान का दोहद उत्पन्न हुआ। उसनें धनदेव से कहा, धनदेव ने उसका दोहद पूर्ण किया। क्रमशः समय होने पर शुभ ग्रहों के उच्च स्थान से रहने पर शुभकरण मूहूर्त में श्रीकांता ने पुत्र को जन्म दिया !

—श्रीकांता पुत्र जन्म-नाम नवम्

परिच्छेद समाप्त —

० ० ०

दशम-परिच्छेद

प्रसूति कर्म में कुशल स्त्रियों के द्वारा प्रसूति कर्म किए जाने पर, गृहदासियों के द्वारा प्रसन्न मन से तात्कालिक कार्य कर लिए जाने पर परिजन जब हर्ष से बाजा बजाने लगे तब धनधर्म शेठ ने बधाई आरंभ की। नगर की स्त्रियाँ हाथ में अक्षतपात्र लेकर महल में प्रवेश करने लगीं, रमणियाँ मुख मंडन कार्य में लग गई, मुख्य द्वार पर वंदन माला लगाई, लोग परिपूर्ण कलश लेकर द्वार पर खड़े थे, नट-नटियों के संगीत सुननेवाले तथा सुंदर दृश्य देखने-वाले लोगों को जिसमें पान दिया जा रहा था। धनधर्म सेठ ने अहिंसा की घोषणा करवाई, बंदियों को छुड़वाया, दीन तथा अनाथों को अनेक दान दिए, प्रत्येक जिन-मंदिर में सुंदर स्नात्र करवाया, वस्त्रादि से साधुओं का सन्मान किया, स्वजनों को भोजन कराया, नगर के श्रीमंतों को सन्मानित किया, इस प्रकार लोगों के चित्त में आनंद देनेवाला पुत्रजन्म-महोत्सव किया। बारहवें दिन प्राप्त होने पर उपहार लेकर राजा के पास जाकर धनदेव ने विनयपूर्वक राजा से कहा, महाराज ! सेठ के वचन से देवी सहित आप आज हमारे घर पर भोजन करें, हँसते हुए राजा ने कहा, क्या यह सेठ का घर नहीं है ? सेठजी तो पिता के समान हैं, समस्त राज्य की चिंता रखनेवाले हैं, अतः सेठजी जो कहते हैं वही मुझे करना चाहिए, राजा के इस प्रकार कहने पर "बड़ी कृपा" यह कहकर अपने घर आकर समयोचित सभी कार्य करवाएँ,

इतने में हाथिनी पर चढ़े देवीसहित राजा सेठ के घर आए, बंदीजन जयशब्द बोलने लगे, मांगलिक उपचार के बाद राजा देवी सहित हथिनी से उतरकर मुक्ताफल विरचित सिंहासन पर बैठे, श्रेष्ठ रमणियों ने आरती उतारी, उसके बाद अपने परिजनों के साथ उत्तम भोजन करने के बाद राजा जब स्वस्थ हुए तब विनय से नम्र होते हुए धनदेव ने कहा, महाराज ! देवी की प्रिय बहन कहती है कि पिता के घर पर होती तो पहले वणिक स्त्रियाँ प्रवेश करतीं, किंतु किसी कारण से मेरे लिए वैसा नहीं हुआ। इस लिए देवी-दर्शन से मैं इसी को पितृगृह मानती हूँ, अतः देवी यदि यहाँ तक आवें तो में अपने को अधिक भाग्यशालिनी समझूँ, धनदेव के इतना कहने पर राजा की आज्ञा से कँचुकी सहित देवी श्रीकांता के पास आई, मनोरमा ने चंदन आभूषण-वस्त्र आदि से देवी की पूजा करके उससे पुत्र का नामकरण करने की प्रार्थना की, देवी ने कहा कि नामकरण करना तो आपको ही उचित है फिर भी आपके वचन से मुझे अवश्य करना चाहिए, यह कहकर कमल कोमल हाथों से बालक को अपनी गोद में रखकर देवी ने कहा कि धनदेव द्वारा श्रीकांता ने इस बालक को जन्म दिया है अतः माता-पिता दोनों के नाम के आधार पर बालक का नाम "श्रीदेव" रखती हूँ, देवी ने बड़ा अच्छा नाम रक्खा यह कहते हुए स्त्रीजनों ने मंगलगीत गाएँ, उसके बाद अत्यंत सुकुमार हाथ-पैरवाले उस सुंदर बालक को देखकर रानी मन ही मन सोचने लगी कि मेरी सखी धन्य है, जिसने ऐसे सुंदर पुत्ररत्न को जन्म दिया, मेरा जीवन सर्वथा बेकार है, यदि पुत्र नहीं तो मेरा राज्य भी व्यर्थ है, इस प्रकार सोचती हुई अपनी सखी से विदा लेकर राजा के साथ अपने घर आ गई। पुत्रजन्म के लिए उत्कण्ठित होकर

रानी अत्यंत खिन्न हो गई, मत्ता मूर्च्छिता ध्यानस्थ योगिनी की तरह सभी कार्य से विरत हो गई, उसका शरीर अत्यंत दुबला हो गया, मुख मलिन हो गया, राजा ने उसकी स्थिति देखकर पूछा कि देवी ? आपका शरीर इतना दुर्बल क्यों हो रहा हैं ? स्वाधीन मुझ सेवक के रहते आपकी कौनसी इच्छा पूरी नहीं हो रही है ? आँसू के जल से स्तन को सींचती हुई रानी ने कहा, प्रियतम। आपकी कृपा से मेरी सभी इच्छाएँ पूर्ण हैं, कोई ऐसा सुख नहीं जो आपकी कृपा से मुझे प्राप्त न हुआ हो, किंतु एक पुत्र-दर्शन-सुख मुझे स्वप्न में भी प्राप्त नहीं हो रहा है। वे ही स्त्रियाँ धन्य हैं जो स्तन्यपान करते अपने पुत्र का मुख दिन-रात देखती हैं, मुझसे पीछे श्रीकांता का विवाह हुआ किंतु उसको पुत्र उत्पन्न हुआ, अतः देव ! आप मुझे पुत्र दें नहीं तो मैं प्राणत्याग करूँगी। राजा ने कहा, देवि ! इसके लिए आप चिंता न करें, देवता की आराधना करके मैं अवश्य आपका मनोरथ पूर्ण करूँगा। यह कहकर जिनेंद्र-प्रतिमा की पूजा करके सभी आभूषणों को छोड़कर सफेद वस्त्र धारण करके पौषधशाला में जाकर विधिपूर्वक अेष्टमभक्त लेकर, कुशासन पर बैठकर, राजा इस प्रकार कहने लगे कि जिन-शासन में भक्ति रखनेवाले देव या दानव जो सन्निहित हों, शीघ्र आकर मेरा मनोरथ पूर्ण करें, इस प्रकार चिंतन करते हुए राजा जब तीन दिन तक वहाँ रहे तब रात के चौथे पहर में अपनी कांति से अंधकार समूह को नाश करनेवाले एक पुरुष को देखकर राजा सोचने लगे कि मनुष्य के शरीर में ऐसी कांति हो नहीं सकती, इनके चरण भी पृथ्वी का स्पर्श नहीं करते अतः ये अवश्य देंव होंगे, इस प्रकार विकल्प करते हुए राजा से उस देव ने कहा, हे अमरकेतु राजन ! उग्र तप से क्या आप क्लांत

नहीं हैं ? राजा ने पूछा, आप कौन हैं ? कहाँ से आए हैं ? दव न कहा, राजन् ? यदि कौतुक है तो सुनिए–

मैं ईशानकल्पवासी देव हूँ, च्यवन का समय नज़दीक आने पर परलोक हित के लिए तीर्थंकर की वंदना के लिए विदेह में आया, वहाँ मैंने भगवान से पूछा कि च्यवन होने पर फिर मेरा जन्म कहाँ होगा ? तब तीर्थंकर ने कहा कि भरतक्षेत्र में हस्तिनापुर नगर में पुत्र की इच्छा से पौषधशाला में पौषध लिए श्री अमरकेतु राजा हैं, आप उनके पुत्र होंगे, उनका वचन सुनकर राजन ? मैं आपके पास आया हूँ, अब आप चिंता न करें, मैं आपका पुत्र होऊँगा, राजन ? आप यह कुंडल स्वीकार करें, जिस देवी से पुत्र चाहते हों उन्हें यह कुंडल दे दीजिए, यह कहकर कान से कुंडल उतारकर राजा को देकर, वह देव अदृष्ट हो गया। रात बीतने पर देवी के पास जाकर बड़ी प्रसन्नता से राजा ने देवदर्शन से लेकर सभी बातें कीं, रानी को कुंडल देकर प्रातःकृत्य करके आहारदान से साधुओं का सत्कार करके राजा ने भोजन किया। इसके बाद दूसरे दिन ऋतुस्नातादेवी ने रात के पिछले पहर में स्वप्न देखा। उसका शरीर कँपने लगा, राजा ने पूछा, एकाएक शरीर क्यों कँपता है ? रानी ने कहा, प्रियतम ? अभी मैंने एक स्वप्न देखा है कि एक सुवर्णकलश मेरे मुख में प्रविष्ट होकर बाहर निकला है। कोई उसे फोड़ने के लिए दूर ले जाता है, फिर बहुत समय के बाद दूध से भरे उस कलश को प्राप्त कर सफेद फूलों की माला से मैंने उसकी पूजा की। इस प्रकार आरंभ में दुःखदाई किंतु परिणाम सुखद स्वप्न को देखने से मेरा शरीर कँप रहा है, रानी की बात सुनकर शोकित होते हुए राजा ने कहा, देवि ? यह स्वप्न पुत्र लाभ का सूचन करता है। स्वप्न-

फल जाननेवालों से पूछकर विशेष बात बतलाऊँगा, आप चिंता न करें, प्रातःकाल सभा में आकर राजा ने स्वप्नफल बतलानेवालों को बुलाया। सामंत मंत्री आदि से भरी सभा में स्वप्नफल जाननेवाले राजा के पास बैठे, धनदेव भी राजा के पास बैठा, राजा ने उनसे देवदर्शन से लेकर स्वप्न दर्शन तक की बातें बतलाई और कहा कि आप लोग अच्छी तरह निश्चय करके स्वप्न का फल बतलाइए, राजा के इस प्रकार कहने पर वे लोग स्वप्नफल का विचार करने लगे, तब धनदेव ने कहा, राजन ! आप स्वप्नफल जानने के लिए ध्यानपूर्वक इस वृत्तांत को सुनिए——

जंगल में मैंने भीलपति को देखा, उन्होंने सर्पों से बद्ध चित्रवेग को मणि के प्रभाव से बचाया। वे जब अपना चरित्र बतला रहे थे इतने में एक देव वहाँ आया, उस देव ने कुशाग्रनगर में केवली का दर्शन किया, भावी भव की बात पूछने पर केवली ने उससे कहा कि आप श्री अमरकेतु राजा के पुत्र होंगे, पूर्ववैरी देवमाता के साथ आपका अपहरण करेगा और आप चित्रवेग विद्याधर के घर में बढ़ेंगे, मैं मानता हूँ वही विद्युत्प्रभदेव देवी की कुक्षि में आ गया है, क्यों कि केवली का वचन कभी भी मिथ्या नहीं होता, पूर्व वैरी देवपुत्र का अपहरण करेगा, विद्याधर के घर में बढ़ेगा, अनेक विद्याओं का साधन करके फिर अपनी माता को प्राप्त करेगा, इष्ट कन्या का दान ही माला पूजन होगा, राजन् ? स्वप्न का परमार्थ यही मेरे मन में स्फुरित होता है, धनदेव की बात सुनकर स्वप्नफल जाननेवाले विद्वान चकित हो गए, धनदेव की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा कि राजन ! श्रेष्ठिपुत्र ने बड़ा संगत स्वप्नफल बतलाया है, राजाने ताम्बूल आदि कर आदरपूर्वक सबको बिदा किया, राजा ने फिर धनदेव से

पूछा कि देवी के विरह को रोकने का कोई उपाय है या नहीं ? धनदेव कहा कि केवली का वचन मिथ्या नहीं होगा, फिर भी कुछ उपाय तो अवश्य करना ही चाहिए, पल्लीपति ने मुझे यह दिव्य-मणि दी थी, इसकी शक्ति विचित्र है, इसके फल अनेक बार देखे गए हैं, अतः यह मणि देवी के हाथ में दे दीजिए जिससे पूर्व वैरी देव उनका अपहरण करने में असमर्थ हो जाए, यदि किसी तरह देवी का अपहरण करेगा भी तो वह देवी का अपकार नहीं कर सकेगा, राजन ! इस बात को जानकर आप शोक नहीं करें ?

स्वप्न के अनिष्ट फल को दूर करने के लिए जिन-मंदिरों में अष्टाह्निक महोत्सव कराइए, वस्त्रादि से साधुओं की पूजा कीजिए, अभयदान की घोषणा करवाकर अनेक अभिग्रह तथा तप में उद्यत हो जाइए, यह कहकर राजा को अंगूठी देकर प्रणाम करके धनदेव राजभवन से चलकर अपने घर आया। देवी-भवन में जाकर राजा ने देवी से सारी बातें कीं, और अंगूठी देकर कहा कि देवि ? इस अंगूठी को अपने हाथ से कभी हटाना नहीं, इसके प्रभाव से क्षुद्र शत्रु सामने आ नहीं सकते, राजा ने जिन-मंदिर-यात्रादि मांगलिक कार्य किए, कमलावती गर्भिणी हुई, सप्तम मास आने पर रानी को दोहद उत्पन्न हुआ। लज्जावश उसने किसी से जब नहीं कहा तब उसका शरीर सूखने लगा, राजा ने रानी को देखकर कहा कि आपकी कौन-सी इच्छा पूरी नहीं हो रही है जिससे आप इस तरह दुबली होती जा रही हैं ? तब देवी ने राजा से कहा कि मुझे ऐसा दोहद उत्पन्न हुआ है कि मैं हाथी पर च कर, आपकी गोद में बैठकर याचकों को दान दूँ और आप छत्र धारण किए रहेंगे, राजा ने कहा, सुंदरि ? मैं शीघ्र आपके इस दोहद को पूर्ण कर देता हूँ।

इसके बाद अनेक आभूषण से युक्त एक पट्टहाथी को मँगवाया, उस पर राजा चढ़े, रानी उनकी गोद में बैठी, मुक्ताफल से शोभित, धवल आतपत्र राजा ने अपने हाथ से धारण किया। लोग स्तुतिपाठ करने लगे, अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे, समस्त नगर में याचकों को दान देने लगी, नर-नारी आनंद से प्रशंसा करने लगे, क्रमशः हाथी जब नगर के बाहर आया, एकाएक पागल हो गया और लोगों को डराता हुआ अत्यंत वेग से ईशान दिशा की ओर चला, 'दौड़ो-दौड़ो, पकड़ो-पकड़ो' यह कहते हुए नौकर वर्ग हाथी के पीछे-पीछे चले, राजा ने रानी से कहा कि हाथी बिगड़ गया है। अतः हम लोग नीचे उतर जाए, नहीं तो जंगल में ले जाकर हमें गिरा देगा, रानी ने कहा, नरनाथ? मैं कैसे उतरूँ? राजा ने कहा कि देखो आगे एक वटवृक्ष आ रहा है, उसके नीचे से जब हाथी जाएगा तब वटवृक्ष की डाल पकड़ लेना, इस प्रकार राजा कह ही रहे थे, इतने में हाथी उस वटवृक्ष के नीचे पहुँच गया, राजा ने वटवृक्ष की डाल पकड़ ली किंतु रानी उसे पकड़ न सकी, क्यों कि हाथी अत्यंत वेग में दौड़ रहा था, राजा अत्यंत दुखी हो रहे थे, उन्होंने हाथी को आकाशमार्ग से जातें देखा और मन में निश्चय किया कि पूर्व गौरी देव हाथी का स्वरूप लेकर अपना चमत्कार दिखला रहा है, केवली का वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकता, इतने में हाथी अदृष्ट हो गया और पीछे-पीछे आती हुई सेना राजा के पास पहुँच गई, राजा ने रानी का पता लगाने के लिए समरप्रिय आदि बड़े-बड़े वीरों को सेना के साथ हाथी के रास्ते से भेजा। अत्यंत शोकित राजा सामंत-महंत आदि के कहने से किसी-किसी तरह नगर आए, राज्य से अपने चित्त को हटाकर कमलावती की प्राप्ति की आशा से राजा जीवन

धारण कर रहे थे, इतने में समरप्रिय आदि वीरों सहित सेना अत्यंत दीन तथा मलिन मुख किए वहाँ पहुँच गई, राजा ने समरप्रिय से पूछा, भद्र ? क्या वह दुष्ट हाथी मिला, क्या देवी को उससे छुड़ाया ? लम्बी साँस लेकर समर प्रिय ने कहा, राजन ! हाथी की दिशा में चलकर जंगल में पहुँचकर बहुत अन्वेषण करने पर भी न हाथी का और न देवी का ही पता लगा, भीलों को पूछते हुए बहुत दूर जाने पर दूसरे दिन एक जीर्णवस्त्रधारी यात्री ने कहा कि सात दिन पहले पद्मोदर नामक सरोवर में आकाश से गिरते हुए महिला सहित एक हाथी को देखा था, फिर भयभीत होकर अत्यंत घने जंगल में प्रवेश करके सरोवर के किनारे विचरते हुए नारीरहित हाथी को देखा, उसकी यह बात सुनकर मैंने कहा, भद्र ? आप शीघ्र उस सरोवर को दिखलाइए, उसने उस सरोवर को दिखलाया किंतु अन्वेषण करने पर भी देवी को नहीं पाया। सरोवर से एक योजन दूर पर हाथी मिला, उसको लेकर दुःखी होते हुए हम लोग यहाँ आए हैं, देवी क्या तो उसी सरोवर में डूब गई अथवा तो सरोवर से निकलकर किसी बस्ती में गई, अथवा जंगल में किसी दुष्ट जानवर ने उन्हें मार डाला ? राजन ? देवी का समाचार हम कुछ नहीं जानते हैं ?

इस प्रकार जब समरप्रिय राजा से कह रहा था, इतने में द्वारपाल ने आकर विनयपूर्वक कहा कि राजन् ! द्वार पर सुमति नैमित्तिक खड़े हैं, सुनते ही राजा ने कहा कि क्या वही सुमति नैमित्तिक ? जिसके आदेश से नरवाहन ने मुझे देवी दी थी ? पासके लोगों ने कहा कि राजन् ! वही सुमति हैं, तब राजा ने कहा कि जल्दी ले आओ क्यों कि उससे देवी का वृत्तांत पूछूंगा, द्वारपाल जब सुमति को अंदर ले आए तब राजा ने सत्कारपूर्वक

पूछा कि क्या देवी जीती हैं या नहीं ? सुमति ने उपयोग देकर कहा कि जीती हैं, राजा ने पूछा कि उनके साथ समागम कब होगा ? फिर उपयोग देकर सुमति ने कहा कि राजन ! जब आप स्वप्न में पुष्पमाला को देखेंगे उसके बाद मास दिन के अंदर समागम होगा, राजा ने पूछा कि गर्भ में क्या होगा ? सुमति ने कहा कि पुत्र होगा किंतु जन्म लेते ही माता के साथ उसका वियोग हो जाएगा, फिर जब राजा ने पूछा कि माता से वियुक्त होकर वह जीएगा या नहीं ? कहाँ बढ़ेगा ? और कब समागम होगा ? सुमति ने कहा, वह पुत्र बहुत दिन जीएगा यह जानता हूँ किंतु वह कहाँ बढ़ेगा यह मैं नहीं ानता । कुसुमाकर उद्यान में जब एक कन्या गिरेगी, उसके बाद त्र ही आपको पुत्र के साथ समागम होगा । सुमति के वचन सुन , प्रसन्न होकर राजा ने सुमति को लाख सोना-मोहर दिलवाया और रानी के समागम की आशा से उनका चित्त स्वस्थ हो गया । सुमति भी चला गया । कुछ दिन के बाद एक रात राजा ने स्वप्न देखा कि उत्तर दिशा की ओर जाते हुए मैंने एक कूप में पड़ी अर्द्धम्लान सफेद फूलों की माला है ज्यों ीं उस माला को लिया वह माला सुगंधित हो गई, इस स्वप्न को देखते ही राजा जग गए और उन्होंने सोचा कि सुमति ने जैसा कहा था वैसा ही स्वप्न मैंने देखा है अतः उत्तर दिशा में जाने पर विषम अवस्था में पड़ी देवी अवश्य मिलेगी । यह सोचकर देश देखने के बहाने कुछ सेना के साथ राजा हस्तिनापुर से निकले, कितने दिन के बाद एक पर्वत के पास घने वृक्षोंवाले एक जंगल में सेना सहित डेरा डालने पर राजा की चामरधारिणी लंबी घास से ढके एक कूप में भूल से गिर गई । राजा ने रज्जु प्रयोग से निकालने के लिए आदेश दिया । इसके बाद एक

आदमी ने रज्जुप्रयोग से अंदर जाकर इधर-उधर देखने पर तटभाग में एक युवती को देखा और पूछा कि सुंदरि ! इस अंधकार में भय से काँपती हुई तुम कौन हो ? जब तक उसने कुछ उत्तर नहीं दिया तब तक चामरधारिणी जीनी मिल गई, उसको लेकर बाहर आकर उसने कहा, राजन ! इसमें एक और दूसरी युवती भी है, पूछने पर कुछ बोलती नहीं है, भय से उसका शरीर काँपता है, इतने में राजा की दाईं आँख फड़कने लगी। राजा ने सोचा कि क्या देवी होंगी ? अथवा इस जंगल में देवी का संभव कहाँ ? अथवा कर्मवश जीवों का कहीं भी जाना असंभवित नहीं, यदि देवी होंगी तो अच्छा, नहीं तो दूसरी स्त्री कों निकालना भी अपना धर्म है। यह सोचकर राजा ने फिर उसीको आदेश दिया। रज्जुप्रयोग से अंदर जाकर उसने कहा, सुंदरि ! अमरकेतु राजा के आदेश से आपको इस नरकाकार कूप से निकालने के लिए आया हूँ। उसके इस वचन को सुनकर मंचिका पर चढ़कर रानी बाहर निकल गई। वह इतनी दुबली हो गई थी कि राजा ने उसे पहचाना नहीं, राजा को देखकर वह घर्घर शब्द से रोने लगी। आँसू बहाते हुए राजा उसको लेकर अपने आवासस्थान पर आए। वहाँ उसकी उस स्थिति को देखकर सब परिजन रोने लगे। इसके बाद कुछ स्वस्थ होने पर राजा ने पूछा कि हाथी आपको कहाँ ले गया ? इस कूप में कब और कैसे पड़ी ? इस भीषण जंगल में आई कैसे ? कमलावती ने कहा, राजन ! सुनिए, मैं कहती हूँ–

आपने जब उस वटवृक्ष को पकड़ लिया और उसे पकड़ न सकी, उसके बाद वह हाथी आकाश में उड़ गया, तब मैंने सोचा कि हाथी में प्रविष्ट होकर कोई देव मुझे ले जा रहा है क्यों कि

हाथी तो आकाश में उड़ नहीं सकता। यह सोचकर जब मैंने भूमि की ओर देखा तो मुझे लगा कि मुझे इस जंगल में अकेली जानकर मेरी सहायता के लिए सभी वृक्ष भी मेरे पीछे-पीछे दौड़ रहे हैं, जल से भरे सरोवर भूमि पर पड़े छत्र जैसे लगते थे, वन-राजियाँ साँप जैसी लगती थीं। बड़ी-बड़ी नदियाँ नहर जैसी दीखती थी, बहुत दूर जाने पर मुझे अंगूठी की याद आई, तब कुछ भय छोड़कर, हाथ में मणि लेकर हाथी के कुंभस्थल को पीटा। मानो वज्र से ताड़ित होकर हाथी नीचे की ओर मुड़ा। मैंने नीचे तरंगों से पूर्ण एक सरोवर को देखा। अनेक प्रकार की मछलियाँ उछल रही थीं, भौंरे से आच्छादित कमल सुशोभित हो रहे थे। टिट्टिम-चक्रवाक आदि अनेक प्रकार के पक्षी कलरव कर रहे थे, मकर आदि अनेक दुष्ट जलजंतु दिख रहे थे, मराल पंक्तियाँ, बक पंक्तियाँ शोभ रही थीं, सरोवर के चारों ओर तमाल वृक्ष सुशोभित हो रहे थे। जल से भरे अन्तर पार उस सरोवर में गिरा और डूब गया। मैं मणि के प्रभाव से जल के ऊपर ही रह गई, एक काष्ठ फलक के सहारे मैं सरोवर के किनारे आ गई। भय-भीत होकर मैं सोचने लगी कि उस प्रकार की समृद्धि से युक्त होने पर भी मैं आज एकदम अकेली कैसे हो गई। कर्म की गति अत्यंत विचित्र है। वे भृत्यवर्ग, विनीत परिवार आज कहाँ चले गए? इस प्रकार सोचकर उत्तरीय वस्त्र से अपना मुँह ढँककर मैं रोने लगी।

इतने में किसी नें मुझ से कहा, सुंदरि? क्यों रोती हो? मैंने वेग में आकर उसकी ओर देखा तो वह युवक मुझे कुछ परिचित जैसा लगा। मुझे देखते ही वह वेसर से उतरकर मेरे पैरों पर गिरकर बोला, बहन? मुझे पहचानती हो, मैं श्रीदत्त

हूँ, कुशाग्रनगर से व्यापार के लिए सार्थ लेकर दूसरे देश को गया था, बारह बरस पर फिर अपने नगर को चला हूँ, सार्थ के साथ आज ही यहाँ आया हूँ, बहन ! आप यहाँ अकेली क्यों है ? तब मैंने हाथी के द्वारा अपहरण से लेंकर सारी बातें कह दीं। तब उसने कहा कि हस्तिनापुर बहुत दूर है, दुष्ट जंतु तथा चोरों से रास्ता भी दुर्गम है, और कुशाग्रपुर नगर नजदीक है। बहन ! आपका क्या विचार है ? तब मैंने कहा, श्रीदत्त ! मैं भी कुशाग्र-पुर चलूंगी। बहुत दिनों के बाद बंधुवर्ग को देखूँगी। इसके बाद प्रसन्न होकर वह मुझे अपने स्थान पर ले गया और बड़े विनीत भाव से मेरे लिए सारी व्यवस्था कर दी। मैंने अंगूठी छोड़कर देंव से दिए गए कुंडल आदि सारे आभूषण श्रीदत्त को दे दिए। उसके बाद श्रीदत्त परिजनसहित मैं भी सार्थ के साथ चली। उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर मैं डोली पर चढ़ गई। कुछ दिन के बाद एक जंगल में पहुँचने पर अपशकुन हुआ, फिर भी उसकी अवहेलना करके सार्थ वहाँ से आगे बढ़ा। दूसरे दिन सबेरे ही भीलों ने ही आक्रमण कर दिया। कलकल शब्द को सुनकर सार्थ के लोग व्याकुल हो गए। भीलों से मार खाकर सार्थ के लोग जब भागने लगे तब मैं भी वहाँ से भाग गई और मैंने सोचा कि फिर सार्थ के साथ मिल जाऊँगी। जब मैं चली तो मुझे दिशा का भान नहीं रहा, सार्थ तो कहीं चला गया। तब मैं भय से काँपने लगी और इसी दिशा को पकड़कर आगे चली। बहुत दूर चलने पर, पीछे घूमकर उस बन में सार्थ का अन्वेषण किया पर कहीं भी सार्थ देखने में नहीं आया। भय से कँपती हुई जब मैं इधर-से-उधर चल रही थी तो मेरे पैर में काँटे चुभ गए थे। अत्यंत थक जाने पर बस्ती का अन्वेषण करने के लिए एक ऊँचे टीले पर चढ़कर जब

मैंने चारों ओर देखा, कहीं भी कोई बस्ती नहीं देखने में आई, चारों ओर जंगल ही जंगल देखने में आ रहे थे।

उस जंगल में कहीं भयंकर सिंह के गर्जन से हरिण काँप रहे थे, कहीं तो बड़े-बड़े जंगली भैंसें लड़ रहे थे, कहीं तो बंदरों के बुंकार से दिशाएँ बहरीं हो रही थी। कहीं दावानल में जलते जीवों के करुण शब्द सुनाई पड़ रहे थे, कहीं-कहीं गैंड़ों से मारे गए मृगों के खून से वनभूमि रंगी हुई थी, कहीं तो सिंहों के भय से बड़े-बड़े हाथी डरकर भाग रहे थे। कहीं-कहीं व्याध धनुष चढ़ाए हुए मृगों को मारकर उनका सिर हाथ में लिए घूमते थे, कहीं-कहीं बड़े-बड़े भालू विचर रहे थे। उस जंगल में घूमने पर अत्यंत प्यास लगने पर एक दिशा में जल से भरे एक सरोवर को मैंने देखा। उसी ओर चलकर मैंने किसी-किसी तरह उस सरोवर को पाया। पानी पीकर उसके तटवृक्ष की छाया में बैठ गई, इतने में सूर्यास्त हुआ और रात फैल गई। उसके बाद ज्यों-ज्यों सियारिन फेंकार करने लगीं और हिंसक जंतु भीषण आवाज़ करने लगे, त्यों-त्यों मेरा हृदय भय से कँपने लगा। आधी रात के समय मेरे पेट में असहय वेदना होने लगी, इतने में अत्यंत वेदना से पीड़ित मृगी की तरह, राजन ! बड़े कष्ट से मैंने प्रसव किया। कुछ देर के लिए मूर्च्छित रही। मूर्च्छा टूटने पर भूमि पर लुढ़कते हुए बालक को बड़े स्नेह से पकड़कर जलाशय में जाकर, उसे नहलाकर, अपने वस्त्रों को धोकर एकांत में एक निकुंज में जाकर बैठ गई। उसके बाद दिव्य मणिवाली अंगूठी को अपने हाथ से निकालकर यह कहते हुए पुत्र के गले में बाँध दिया कि इस मणि के प्रभाव से भरे बालक के अंग में भूत-पिशाच दुष्टग्रहादि स्पर्श न करें, फिर मैंने कहा कि हे वनवासिन वनद्रेवताएँ ? मैं इस जंगल

में आपकी शरणागत हूँ, अतः व्याघ्रादि दुष्ट जंतुओं से मेरी रक्षा करें, पुत्र ? आज की रात यदि मैं हस्तिनापुर में रहती तो इतने समय में राजा तुझे बधाई दिए होते। पुत्र ? तेरे जन्म से आज वहाँ मंत्री, सामंत, परिजन सब अत्यंत प्रसन्न होते।

दुर्भाग्य से इस घनघोर जंगल में तेरा जन्म हुआ तो फिर अभागिन मैं अभी क्या कर सकती हूँ ? पुत्र ! यहाँ तेरा जन्म होने से मैं इस जंगल को ही वस्ती मानती हूँ, तुझे गोद में आने से मेरा भय भी नष्ट हो गया। सूर्योदय होने पर दिन में तेरे मुख को देखकर मैं अपना मनोरथ पूर्ण करूँगी। इस प्रकार बोलने के बाद थकावट तथा पीड़ा-शांति से मुझे नींद आ गई, थोड़ी देर के बाद किसी के शब्द को सुनने से मेरी निद्रा टूट गई। मैंने सुना कि "पाप ? कितना अन्वेषण करने के बाद बहुत दिन पर आज तुम मिले, आज मैं वैर का अंत करूँगा, अपने कर्मों का फल तुम भोगो" तब मैंने सोचा कि यह कौन बोलता है ? इतने में मैं अपनी गोद में पुत्र को नहीं देखकर सोचने लगी कि क्या कहीं गिर गया है ? अथवा किसी ने उसे चुरा लिया है ? अथवा क्या मैं स्वप्न देख रही हूँ ? अथवा मुझे भ्रम हो रहा है ? इस प्रकार चिंतन करने के बाद मैं इधर-उधर खोजने लगी किंतु महाराज ? उसको कहीं नहीं पाकर मानो सिर में वज्र के आहत होने से मूर्च्छित होकर एकाएक भूमि पर गिर पड़ी।

कमलावती पुत्रहरण नाम का दशम परिच्छेद समाप्त।

० ० ०

ग्यारहवाँ-परिच्छेद

उसके बाद होश आने पर अत्यंत दुःखी होकर अपनी छाती पीटती हुई मैं इस प्रकार विलाप करने लगी कि हाय ! इस जंगल में मैं यों ही दुःख से पीडित थी, फिर भी अभी-अभी उत्पन्न मेरे पुत्र को कोई चुराकर ले गया, हाय ! मैं आशा कर रही थी कि कल सबेरे पुत्र का मुंह देखूँगी किंतु दुष्ट दैव ने कुछ और ही कर दिया, हा दैव ! वनवास का दुःख देने से भी तुमको संतोष नहीं हुआ, जिससे मेरे पुत्र का हरण किया, वनदेवताएँ भी मेरे पुत्र की रक्षा नहीं कर सकीं, हाय पुत्र ! जंगल में मुझे अकेली छोड़कर मेरी गोद से तू कहाँ चला गया ? निश्चय जिसके शब्द को सुनकर मैं एकाएक जग गई थी वही पिशाच मेरे पुत्र को हरकर ले गया है, जिस मणि के प्रभाव से वह दुष्ट हाथी सरोवर में गिरा था, वह मणि भी काम नहीं कर सकी, हाय पुत्र ? वह मणि तेरे गले में बाँध रक्खी थी, तुझे मैंने अपनी गोद में रक्खा था फिर भी वह दुष्ट तुझे हरकर ले गया। इस प्रकार मेरे विलाप को सुनकर मेरे दुःख से दुःखित होकर रात भी बीत गई, मुझे रोती देखकर तारों के आँसू बहाती हुई आकाश-लक्ष्मी रोने लगी, इतने में मेरे पुत्र को चुरानेवाले को देखने के लिए अंधकार का नाश करके सूर्य उदित हुआ। आध प्रहर दिन बीतने पर जब मैं रोती हुई इधर-उधर घूम रही थी,

इतने में हाथ में कमंडलु लिए सफेद वस्त्र धारण किए एक वृद्धा तापसी वहाँ आ पहुँची, उस घने जंगल में मुझे रोती देखकर वह मेरे पास आई, मधुर वचन से उसने मुझसे पूछा कि सुंदरि ? तुम क्यों रोती हो ? कहाँ से आई हो ? अकेली क्यों इस भीषण वन में घूमती हो ? प्रणाम करके मैंने हाथी के बिगड़कर भागने से लेकर पुत्र के अपहरण तक की बातें कह दीं, उसने मुझे बहुत आश्वासन दिया और कहा कि कर्मवश में रहनेवाले जीवों को अनेक कष्ट सहन करने पड़ते हैं, अन्य भव में तुमने ऐसे कर्म किए थे जिनके प्रभाव से अभी तुम्हें ऐसे दुखों का अनुभव करना पड़ रहा है, बेकार विलाप करने से क्या लाभ ? यहाँ से नजदीक ही हमारा आश्रम है वहीं आओ, यह स्थान तुम्हारे रहने योग्य नहीं है क्यों कि यहाँ ठण्ड़ी हवा चलती है और तुम नवप्रसूता हो, यह कहकर तापसी मुझे अपने साथ आश्रम ले गई, अकारण वात्सल्य से वहाँ उन लोगों ने मेरी बड़ी सेवा की । कुछ दिन में जब मैं स्वस्थ हो गई तब मुझे कुलपति के पास ले गई, कुलपति ने मुझे धर्मोपदेश देकर शांत किया, उस तापसी ने मेरे कान में कहा कि ये भगवान विशिष्ट ज्ञानी हैं इनसे अपने मन की बात पूछो, तब मैंने प्रणाम करके उनसे पूछा कि मेरे पुत्र का हरण किसने किया ? क्या मेरा पुत्र जीता है ? या मर गया, मैं कभी उसको देखूंगी या नहीं ? कुलपति ने उपयोग में आकर मुझ से कहा, पुत्रि ? पूर्वभव विरोधी देव तेरे पुत्र को मारने के लिए तेरे पास से हरण करके वैताढ्य पर्वत के वन-निकुंज में शिलातल पर छोड़-कर चला गया । दैववश एक विद्याधर अपनी भार्या के साथ वहाँ आया और पुत्र मानकर अपने घर ले गया, तेरा पुत्र वहीं बढ़ेगा,

युवावस्था में आने पर वह हस्तिनापुर में ही मिलेगा, उनकी बात सुनकर मैं अत्यंत प्रसन्न होकर वहाँ रहने लगी।

प्रियतम? कुछ दिन के बाद एक दिन हम सब जब धर्मकथा सुन रही थीं इतने में एक वेगवान घोड़े पर चढ़ा, अकेला एक राजपुत्र वहाँ आया। अत्यंत अतिथि वत्सल तापस कुमारों ने उसका सन्मान किया। बाद में विनयपूर्वक वह कुलपति के समीप आकर बैठा, कुलपति ने उससे पूछा कि भद्र? आप कहाँ से आए? उसने कहा, भगवन! मैं अपना समाचार कहता हूँ, सुनिए–

सिद्धार्थपुर के राजा सुग्रीव अत्यंत प्रसिद्ध थे, उनकी देवी कनकवती का मैं पुत्र हूँ, मेरे ऊपर अधिक स्नेह होने से ज्येष्ठपुत्र सुग्रीव के रहते हुए भी उन्होंने मुझे युवराज बनाया, क्षयरोग से राजा के मर जाने पर मंत्रियों ने मुझे राजा के पद पर अभिषिक्त किया, दूसरी माता के पुत्र सुप्रतिष्ठ ने किसी विद्याधर से प्राप्त नभोगामिनी आदि विद्याओं के बल से युद्ध करके अपना राज्य ले लिया। उनके डर से मैं माता के साथ अपने मातामह कीर्ति-धर्म की चम्पानगरी में आ गया, उन्होंने अपने देश के अंत में एक हज़ार गाँव दिए, माता सहित मैं अभी वहीं रह रहा हूँ, एक दिन मेरे पुरुषों ने जंगल में एक वणिक सार्थ को लूटा। बहुत धन के साथ अनेक घोड़े भी प्राप्त हुए, उन्हीं घोड़ों को फेरने के लिए आज मैं बाहर निकला, क्रमशः घोड़ों को फेर रहा था कि एक घोडे ने मुझे खींचकर यहाँ ले आया। इस प्रकार जब सुरथ कुलपति से अपना वृत्तांत बतला ही रहा था, इतने में उसकी सेना भी वहाँ पहुँच गई, सुरथ ने कुलपति से कहा, भगवन! अब मैं

अपने स्थान को जा रहा हूँ, मुझे अपने कर्तव्य का उपदेश दीजिए, कुलपति ने कहा कि गुरुजनपूजा आदि धर्मकार्य में यथाशक्ति प्रवृत्त हों तथा शरणागत वत्सल बनें, दूसरे, हस्तिनापुर के राजा श्री अमरकेतु की यह पत्नी कमलावती हाथी से हरण कर यहाँ ले आई गई है, यहाँ से हस्तिनापुर बहुत दूर है, बीच का रास्ता भयंकर है, ये तापसकुमार इसे वहाँ नहीं पहुँचा सकते हैं अतः आप यदि इसे हस्तिनापुर पहुँचा दें तो बहुत अच्छा हो, सुरथ ने कहा, भगवन ? आप जो कहें मैं अवश्य करूँगा, मैं स्वयं जाकर अमरकेतु को अर्पित कर दूँगा, कुलपति ने मुझसे कहा, वत्से ? तुम सुरथ के साथ जाओ नहीं तो फिर दूसरा सार्थ नहीं मिलेगा। मैंने सोचा कि इसके साथ जाना उचित होगा या नहीं ? फिर मैंने कहा भगवन ? जो उचित हो आप कहें, उन्होंने कहा, यदि ऐसा है तो जाओ, उनकी आज्ञा से मैं उसके साथ चली। वहाँ से चलकर जब इस प्रदेश में आई तब सुरथ ने कुछ बहाना बनाकर इसी जंगल में डेरा डाल दिया। वह मेरे पास आने लगा, मेरा बहुमान करने लगा। एक दिन कुछ आभूषण लेकर एकांत में मेरे पास आकर उसने कहा, सुंदरि ! आप विना आभूषण से शोभती नहीं हैं अतः इन आभूषणों को स्वीकार कीजिए। देव से दिए गए कुंडल आदि आभूषणों को पहचान कर मैंने कहा, सुरथ ? ये आभूषण तो मेरे हैं आपको कहाँसे प्राप्त हुए ? उसने कहा, सुंदरि ? कुशाग्रपुर जाते हुए एक वणिक सार्थ को लूटकर आपके योग्य आभूषण मैंने प्राप्त किए। मैंने कहा कि मैंने तो ये आभूषण श्री दत्त (श्री देव) वणिक को दिए थे, उसने कहा, सुंदरि ? तब तो अच्छा ही हुआ, आप स्वीकार करें, उसके दुष्ट भाव को नहीं जानते हुए मैंने आभूषण ले लिए, उसके बाद वह रोज़ मेरे पास

एकांत में आकर कुछ-कुछ परिहास की बात करने लगा। सविकार दृष्टि से मुझे देखने लगा, अपने को अत्यंत अनुरक्त दिखलाने लगा। एक दिन तो कामार्त उस पापी ने लज्जा कुलमर्यादा विवेक छोड़कर एकांत में मुझ से कहा कि मैं अत्यंत काम पीडित हो रहा हूँ, अतः अपने अंगों के संगम से मेरे जीवन को सफल बनावें, आपके आधीन मेरे प्राण हैं, मैं आपका किंकर तथा आज्ञाकारी हूँ, मैं अत्यंत अनुरक्त हूँ अतः आप मेरी इच्छा करें, प्रियतम ? उसकी बात सुनकर वज्राहत होकर मैं सोचने लगी कि यह पापी तो ज़बर्दस्ती भी शीलखण्डन करेगा ही। यदि अप्रिय वचन से इसे फटकारती हूँ तो भी कुछ अनुचित कर बैठेगा। अतः तत्काल मौन धारण कर लेती हूँ, पीछे अवसर पाकर इस पापी का साथ छोड़कर भाग जाऊँगी। जब मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया तब वह उठकर वहाँ से चला गया, रात आने पर सब के सो जाने पर अपने आभूषण लेकर पहरेदारों को वंचित करके उस सार्थ से निकलकर एक दिशा को पकड़कर घने जंगल के मार्ग से दुष्ट जानवरों की भयंकर आवाज़ सुनते हुए अंधेरी रात में विषम भूमि में चलते-चलते इस कूप में गिर पड़ी, पापी लोग जिस प्रकार नरक में कष्ट का अनुभव करते हैं उसी प्रकार कर्मवश मैंने भी पीड़ा का अनुभव किया किंतु सुरथ के भय से मुक्त होने से अपने को कृतार्थ मानकर भूख से व्याकुल बनकर इस कूप में चार दिन बिताए। मैंने जीने की आशा छोड़ दी थी। आज इस सार्थ के कलकल नाद को सुनकर सुरथ की शंका से मैं फिर भयभीत हो गई थी, उसके बाद आपके आदमी को ठीक से देखकर भी भय से कुछ कह न सकी। फिर उससे आपका नाम सुनकर शंका छोड़कर हर्षित होकर कूप से बाहर आई। इस प्रकार आपके विरह में मैंने

दु:ख का अनुभव किया, जिसका स्मरण करने से अभी भी डर लगता है।

कमलावती की बात सुनकर राजा की आँखें आँसू से भर आईं, अत्यंत दु:खी होकर उन्होंने कमलावती से कहा, देवि ? जीव कर्मवश अनेक दु:खों को भोगते हैं, अपने किए हुए कर्मों के फल को जीव अकेला भोगता है, माता-पिता भाई, बंधु-कोई साथ नहीं देता, आपको भी राग द्वेषाधीन किए गए पूर्व कर्मों का फल भोगना पड़ा है, फिर भी मैं अपना पुण्योदय मानता हूँ, जिससे आपको कूप में गिर जाने पर भी जीवित पाया। इस प्रकार अनेक वचनों से रानी को आश्वासन देकर अपनी सेना के साथ राजा अपने नगर हस्तिनापुर आए। नगर के लोगों के द्वारा अनेक मांगलिक उपचार से आनंदित राजा ने रानी के साथ अपने भवन में प्रवेश किया। इसके बाद रानी के साथ अनेक सुखों का अनुभव करते हुए राजा के लाखों वर्ष बीत गए ?

एक समय राजा जब सभा में विराजमान थे, प्रतिहार की आज्ञा लेकर समंतभद्र नामक उद्यान पाल ने सभा में प्रवेश करके राजा को प्रणाम करके कहा कि राजन ? सुमति नैमित्तिक के वचन से कुसुमाकर उद्यान पालक रूप में आपके द्वारा मैं नियुक्त किया गया, किंतु आज तक नैमित्तिक के वचनानुसार किसी को देखा नहीं था, किंतु आज जब मैं विकसित वृक्षों को उद्यान में देख रहा था, एकाएक उद्यान के मध्य भाग में पक्षियों को उड़ाने-वाला एक विचित्र शब्द सुना, आश्चर्य से चकित होकर मैं जब उधर ही को चला, तो बकुलवृक्ष के नीचे भूमि पर पड़ी हुई रूपातिशय से देवांगनाओं को लज्जित करनेवाली मनोहर अंगो-

वाली मूर्च्छा से बंद आँखोंवाली एक बालिका को देखा। तब मैंने विचार किया कि आकाश से भूमि पर इसके गिरने की ही वह आवाज़ थी। ऐसी सुंदरी को ऐसा दुःख देनेवाले विधाता के आचरण को धिक्कार है, यह सोचकर मैंने शीतल जल पवन आदि उपचार से उसको स्वस्थ किया। यूथभ्रष्ट हरिणी की तरह वह चारों ओर देख रही थी। मैंने कहा, भद्रे ? तुम क्यों डरती हो ? किसी प्रकार का भय मत करो, मैं तुम्हारे पिता के समान हूँ, तुम कौन हो ? कहाँ से यहाँ गिरी ? मुझे बताओ, सुंदरि ? शापवश स्वर्ग से गिरी कोई देवांगना हो ? या भ्रष्ट विद्या कोई विद्याधर बालिका हो ? अथवा तुम्हारे रूप को देखकर मोह से पकड़नेवाले किसी विद्याधर के हाथ गिर गई हो ? मेरे मन में बड़ा कौतुक है, आकाश से तुम इस उद्यान में क्यों गिर गई हो ? मुझे बताओ, राजन् ? मेरी बात सुनकर भी जब कुछ उत्तर नहीं दिया और उसने आँसू बहाना शुरू किया तब मैंने मन में विचार किया कि सुमति नैमित्तिक का वचन सत्य हुआ, इससे अब कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं है, सीधे राजासाहब से जाकर यह समाचार कह दूँ, ऐसा सोचकर मधुर वचनों से आश्वासन देकर, अपने घर ले जाकर, अपनी भार्या को समर्पित करके अपने परिजन को परिचर्या में नियुक्त करके मैं आपके पास आया हूँ, समंतभद्र से कन्या का समाचार सुनकर राजा अत्यंत चकित हो गए, और हर्ष में आकर उन्होंने कहा कि सुमति नैमित्तिक का वचन सत्य निकला। अब शीघ्र पुत्र का दर्शन होगा, हे समन्तभद्र ? उस कन्या को शीघ्र लाओ, उसी के प्रभाव से पुत्र को देखूँगा, समंतभद्र ने जाकर कन्या को राजा के पास ले आया, उसके रूप को देखते ही राजा ने कहा कि यह तो किसी उत्तम

कुल की लड़की है, ऊँचे आसन पर बैठाकर राजा ने कहा, भद्रे ? भय शोक छोड़कर बताओ कि तुमने किस कुल में जन्म लिया ? किसकी लड़की हो ? यहाँ मेरे उद्यान में कैसे आई ? आकाश से नीचे क्यों गिरी ? भय से कम्पित होकर निःश्वास लेते हुए उसने कहा, तात ? दुःखभरे अपने वृत्तांत को कह नहीं सकती हूँ, फिर भी आपकी आज्ञा अलंघनीय है, अतः कुछ कहती हूँ—

जम्बूद्वीप के भरतखण्ड में कुशाग्रपुर नाम का एक नगर है, वहाँ नरवाहन राजा राज्य करते हैं, उनकी देवी रत्नवती की मैं पुत्री हूँ, सुरसुंदरी मेरा नाम है, पूर्व वैरी किसी पिशाच ने पूर्व कर्म दोष से मेरा अपहरण किया, इतना कहकर वह फिर रोने लगी, इतने में राजा के अर्द्धासन पर बैठी रानी कमलावती ने उसे उठाकर अपनी गोद में लेकर कहा, भद्रे ? यह कोई दूसरा द्वीप नहीं है, यह हस्तिनापुर नगर है, ये अमरकेतु राजा हैं, मेरा नाम कमलावती है, तेरा पिता मेरा सहोदर भाई है, वत्से ? मैंने भी तेरा नाम सुना था, अनेक कार्यवश कुशाग्रपुर से जो यहाँ आते थे वे तेरे गुणों का वर्णन करते थे, यह भी तेरे पिता का ही घर है, निःशंक होकर रहो और यहाँ की सहेलियों के साथ क्रीड़ा करो, इस प्रकार मधुर वचनों से आश्वासन देकर वस्त्र के अंचल से उसका मुँह पोंछकर देवी अपने भवन ले गई, वहाँ जाने पर भी उसका मन शांत नहीं रहा, वह शोक से अत्यंत संतप्त थी। लम्बी सांस लेती थी। आँसू बहाती थी। कभी मूर्च्छित हो जाती थी। कभी विलाप करती थी, कभी हँसती थी, कभी मूक बन जाती थी। उसकी स्थिति को देखकर कमलावती सोचने लगी कि सब अनुकूल साधन रहने पर भी यह चिंता से सूखती क्यों जा रही है ? माता-पिता का स्मरण आने से यदि इसे दुःख है तो मुझ से कहती क्यों

नहीं है ? एकांत सेवन करती है, वियुक्त चक्रवाकदम्पती को जोड़ती है, प्रियसंगम की बातें एकाग्रचित्त होकर सुनती है, इससे लगता है कि यह अवश्य प्रेमग्रहग्रस्त होगी । किंतु यह बतलाएगी नहीं यह सोचकर कमलावती ने अपनी दासी हँसिका को बुलाकर उससे कहा कि तुम इसके उद्वेग कारण का पता लगाओ । 'आपकी जैसी आज्ञा' यह कहकर हँसिका सुरसुंदरी के पास गई और अनेक प्रकार से स्नेहसूचक बातों से उसके चित्त में विश्वास उत्पन्न करके एक दिन एकाँत में हँसिका ने उससे पूछा कि सुरसुंदरी ? आपका चरित्र सुनने की मुझे बड़ी इच्छा है, इसलिए आप बतलाइए कि किस कारण से किसने आपका अपहरण किया था और आपने क्या-क्या अनुभव किया है ? सुरसुंदरी ने कहा कि पिताजी ने भी मुझसे पूछा था किंतु लज्जा के मारे मैं उनसे कह न सकी । मेरा चरित्र ऐसा है कि सुननेवाले को और मुझे भी कहने से दुखदाई बनेगा, फिर भी सखि ? तुम्हारा आग्रह है, अतः मैं कहती हूँ–

अत्यंत गहरी परिखा, अत्यंत ऊँचे प्राकार आदि से मण्डित पुण्यवान मनुष्यों से पूर्ण अनेक श्रीमंतों से विभूषित हजारों वीरों से अलंकृत चतुरंगिणी सेना से सुरक्षित कुशाग्रपुर नाम का एक नगर है, उस नगर में अत्यंत पराक्रमी सुविख्यात नरवाहन नामक राजा हैं, उस राजा को बाल्यकाल में वैताढ्य पर्वत पर कुंजरावर्त नगराधीश चित्रभानु विद्याधर के पुत्र भानुवेग के साथ मित्रता हो गई, भानुवेग ने मित्रता स्थिर रखने के लिए अपनी बहन रत्नवती के साथ उनका विवाह कराया । उसके साथ विषयसुख का अनुभव करते हुए राजा को कालक्रम से मैं ही एक पुत्री हुई, राजा ने पुत्रजन्म से भी बढ़कर उत्सव मनाया । सुरसुंदरी के समान रूप होने से मेरा नाम ही 'सुरसुंदरी' रख लिया । कुछ

बड़ी होने पर नृत्य-गीत, वीणावादन, व्याकरण, तर्क आदि सभी कलाओं तथा शास्त्रों में मैं प्रवीण बन गई, मैं बुद्धि में बृहस्पति के समान बन गई, एक पद को सुनकर लब्धि से शेष पद का मैं तर्क कर लेती थी। मुझे देखकर माता-पिता तथा समस्त परिजन को बड़ा हर्ष हो रहा था। युवावस्था में आने पर मुझे देखकर योग्य वर के लिए पिताजी बड़े चिंतित थे। इतने में एक दिन सुमति नैमित्तिक आए, पिताजी ने उनसे पूछा कि मेरी कन्या का विवाह किसके साथ होगा ? उन्होंने कहा, राजन् ? यह विद्याधर चक्रवर्ती की अत्यंत प्रिया पटरानी होगी। उनके वचन सुनकर, प्रसन्न होकर पिताजी ने पर्याप्त धन से उनका सत्कार करके उन्हें बिदा किया।

उसके बाद एक दिन अपनी सहेलियों के साथ मैं नगर के बाहर उद्यान में अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं करती हुई आनंद से घूम रही थी, इतने में उद्यान के एक भाग में एक विद्याधर कन्या को देखा, वह किसी मंत्र का जाप करके बाँहें फैलाकर आकाश में उड़ना चाहती थी किंतु उड़ नहीं पा रही थी, पृथिवी पर गिर जाती थी। उसे देखकर मुझे आश्चर्य हुआ, उसके पास जाकर मैंने उससे पूछा, भद्रे ! तुम कौन हो ? और यह क्या करती हो ? उसने कहा, भद्रे ? सुनो, वैताढ्य पर्वत की दक्षिण श्रेणी में रत्न-संचय नाम का एक नगर है। चित्रवेग नामक विद्याधर चक्रवर्ती वहाँ के राजा हैं, कुंजरावर्त नगर में भानुवेग नामक राजा हैं, उनकी दो बहनें हैं, बड़ी बंधुदत्ता और छोटी रत्नवती। बंधु दत्ता का विवाह चित्रवेग के साथ हुआ, मैं उनकी पुत्री हूँ, मेरा नाम प्रियंवदा है, पिताजी की कनकमाला नाम की दूसरी महादेवी का पुत्र मकरकेतु नाम का है, वह मेरा बड़ा प्रिय है। उसका विरह

मैं एक क्षण के लिए भी सह नहीं सकती। पिताजी से विद्याओं को प्राप्त कर उनका साधन करने के लिए मेरा भाई किसी प्रशस्त क्षेत्र में गया है। और विधिपूर्वक विद्याओं का साधन कर रहा है। अभी दो महीने हुए हैं, जब मैं उसके विरह को सहने में असमर्थ हो गई, तब पिताजी से पूछकर उसके पास चली विश्राम करने के लिए। मैं इस उद्यान में उतर गई, अभी-अभी विद्याभ्यास किया था इसलिए एक पद भूल जानें से मैं उड़ नहीं सकती हूँ, बार-बार पढ़ने पर भी वह पद स्मरण में नहीं आता है अतः मैं चिंतित हूँ कि मैं कैसे अपने स्थान पर पहुँचूंगी। तब मैंने पूछा कि तुम्हारी विद्या दूसरे के सामने बोली जा सकती है या नहीं? उसने कहा कि बोलने में कोई हानि नहीं है, तब मैंने कहा कि बोलो, यदि पद का स्मरण हो जाएगा तो मैं कह दूँगी। उसने मेरे कान में कहा, सुनते ही मुझे पद का स्मरण आया, मैंने पूछा कि सुंदरि? यही पद है क्या? सुनते ही वह अत्यंत प्रसन्न हो गई, और मेरे पैरों पर गिरकर उसने मुझसें कहा कि आप मेरी गुरुणी हुईं, क्यों कि आपने मुझे विद्या दी। अतः आप अपना नाम बतलाइए। मेरी सखी ने कहा, भद्रे? नरवाहन राजा की रत्नवती देवी की यह पुत्री अत्यंत अद्भूत गुणवाली सुरसुंदरी नाम की पुत्री है। यह विद्याधर पुत्री की पुत्री है। मेरी सखी की बात सुनकर, हर्ष से मुझे गले लगाकर उसने कहा कि मेरी माता ने मुझसे कहा कि मेरे भाई ने मेरी छोटी बहन भूमिचर राजा को दी है, तब तो चंद्रमुखि? तुम मेरी मौसी की पुत्री हुई, यह कहकर उसने मेरा बड़ा आदर किया। मैंने उससे अपने घर चलने का आग्रह किया तब उसने कहा कि कारणवश अभी मैं भाई के पास जाऊँगी, उधर से लौटने पर मौसी का दर्शन करूँगी, यह कहकर जब वह

चलने के लिए तैयार हो गई तब मैंने कहा, भद्र ? एक बात मैं पूछना चाहती हूँ, उसने कहा पूछो, तब मैंने पूछा कि तुम्हारे बगल में छिपाकर रक्खे हुए चित्रपट में क्या लिखा है ? देखने का मुझे कौतुक है । यदि योग्य हो तो दिखलाओ । प्रसन्न होकर उसने चित्रपट दिखलाया और उसने कहा कि यह मैंने मेरे हाथ से लिखा है । उस चित्रपट में लिखे गए काम समान सुंदर उस तरुण को देखकर मेरे चित्त में बड़ी प्रसन्नता हुई, मेरा शरीर मानो अमृत से सिक्त हो गया । शरीर में रोमांच हो आया । मेरा अधर फड़कने लगा । मैं बेहोश जैसी हो गई, मेरे भाव को जान-कर मेरी सखी वासंतिका ने उससे पूछा, प्रियंवदे ? यह आपने किसका चित्र खींचा है ? यह रति विरहित कामदेव जैसा कौन है ? कुछ हँसकर श्रीमती ने कहा कि अभी तक रति विरहित था, अब तो यह रति सहित काम कौन है ? ऐसा क्यों नहीं पूछती ? उसकी बात सुनकर सब ताली देकर हँसने लगी और सबने कहा कि श्रीमती ने ठीक सोचा है । इतने में मेरी मूर्च्छा टूट गई और कुछ क्रोध में आकर मैंने कहा कि इसका दर्शन भी मुझे नहीं हुआ है तो फिर मुझे तुम लोगों ने रति कैसे बना दिया । उसने कहा, सखि ? क्रोध मत करो । इस चित्र को देखते ही तुम्हें रति उत्पन्न हो गई इसीलिए तुम्हे मैने रति कहा है, तब मैंने कहा कि प्रियं-वदे ? इन को बोलने दो । तुम बतलाओ यह कौन हैं ? प्रियंवदा ने कहा, यह मेरा भाई मकरकेतु है । जो कामदेव समान सुंदर, शूर, त्यागी, कला कुशल है । बहन ? अब मुझे जाने दो, क्यों कि भाई के विरह में मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है । तब श्रीमती ने कहा कि यदि आपके भाई इतने सुंदर तथा गुणवान हैं तो हमें भी इनका दर्शन कराना । उसकी बात सुनकर हँसकर प्रियंवदा ने कहा,

अभी विद्या साधन करने दीजिए, बाद में सब कुछ करूँगी । यदि दैव अनुकूल रहेगा तो अवश्य भाई के साथ बहन का संगम कराऊँगी । उसकी बात सुनकर मैंने कहा कि आप अनुचित क्यों बोलती हैं, चित्र सुंदर होने से मेरे शरीर में रोमांच हो आया है। और आप तो कुछ और ही सोचती हैं ? तब कुमुदिनी ने मुझसे कहा कि सखि ? तुम भी चित्र लिखने का अभ्यास करो, और प्रियंवदे ? आप यह चित्रपट दीजिए जिससे आपकी बहन चित्र का अभ्यास करेगी। उसने कुमुदिनी को चित्रपट देकर मेरे साथ संभाषण करके आकाशमार्ग से प्रस्थान किया और मैं भी सखियों के साथ अपने घर आई।

प्रियंवदा दर्शन नाम ग्यारहवाँ परिच्छेद समाप्त

० ० ०

बारहवाँ–परिच्छेद

उसके बाद उत्तम रेशमी वस्त्ररचित चंद्रवावाले अत्यंत विशाल अपने घर में बिछौने पर जाकर सो गई और सखियों से कहा कि तुम अपने-अपने घर जाओ, क्यों कि मेरे सिर में पीड़ा हो रही हैं, सारे अंग टूटते हैं, शरीर में ज्वर जैसा है अत: मैं कुछ देर सोऊँगी, तब कुमुदिनी ने कहा कि सो जाइए, कुछ हँसते हुए श्रीमती ने कहा, बहन ! एकाएक आपका शरीर अस्वस्थ क्यों हो गया ? कुछ कारण तो बतलाइए, वासंतिका ने कहा, श्रीमति ? तुम ही वैद्यक शास्त्र जानती हो इसलिए इस रोग का निदान बतलाओ, उसके बाद श्रीमती ने मेरी नाड़ियाँ देखकर कहा कि बाहर से देखने से तो कुछ मालूम नहीं होता है, शरीर मानस दो प्रकार के रोग-शास्त्र में बतलाए गए हैं, जिनमें शरीर-रोग वात-पित्त-क:फ की विषमता से उत्पन्न होता है और लंघन आदि से दूर होता है। भूतग्रह, शाकिनी, नेत्रदोष आदि से आगंतुक रोग उत्पन्न होता है, बल्कि होम मंत्र-तंत्र आदि से मिटता है, शरीर रोग का लक्षण नहीं है, अत: आगंतुक रोग ही होना चाहिए। इसलिए नमक उतारो, मंत्र-तंत्रवालों को बुलाओ, सरसों से ताड़न करो, रक्षाबंधन करो, तब ललिता ने श्रीमती से कहा कि अब उपेक्षा का समय नहीं है, उपेक्षा करने से बीमारी बढ़ेगी, श्रीमती ने कहा कि मैं तो सिर्फ रोग का लक्षण जानती

हूँ, ठीक करना मेरा काम नहीं, इस पर माधवी ने कहा कि जो रोग का लक्षण जानता है वह उसकी दवा भी जानता है क्यों कि जो चोर को देखता है वही उसको पीटता भी है, इसके बाद सब सखियों ने श्रीमती से आग्रह किया और कहा कि तुम्हारे पिता जो मंत्र जानते हैं, श्रीमती ने कहा कि मेरे पिताजी मंत्र जानते हैं इससे मुझे क्या ? दूध मीठा होने से गोबर को क्या लाभ ? यदि मेरी सखी रुष्ट न हो तो मैं एक बात कहती हूँ, इसकी व्याधि अपूर्व है, मंत्र से छूटनेवाला नहीं है, तब कुमुदिनी ने कहा कि इसमें रुष्ट होने की कोई बात नहीं है, निशंक होकर बोलो, जिससे बीमारी दूर हो जाए। तब श्रीमती ने कहा कि चित्र में लिखित जिसको इसने देखा है वही वैद्य है, वही इसकी व्याधि को दूर कर सकता है, उसकी बात सुनकर चित्रपट को फैलाकर उसकी पूजा करके हँसते हुए सब सखियों ने इस प्रकार प्रार्थना करते हुए कहा, हे चतुर ! महायश ! चित्रस्थित महानुभाव ! आप हमारी बिनती सुनिए। आपको देखने से मेरी सखी अस्वस्थ हो गई है अतः आप ऐसा उपाय कीजिए जिससे मेरी सखी स्वस्थ हो जाए। तब मैंने क्रोध में आकर कहा कि तुम पागल की तरह असंबद्ध क्यों बोलती हो ? अचेतन को प्रार्थना करने से क्या लाभ ? वह मेरी बीमारी को छुड़ा सकता है ? तब श्रीमती ने मुझ से कहा, सुरसुंदरि ! इस चित्रगत अचेतन ने ही तो तुम्हारी यह स्थिति कर दी है। तब मैंने लज्जित होकर कहा कि यदि तुम इस प्रकार जानती हो तो उपाय क्यों नहीं करती ? मेरी बात सुनकर चित्र-पट लेकर श्रीमती मेरी माता के पास गई और उससे सारी बातें की, तथा चित्रलिखित कामसुंदर उस तरुण को भी दिखलाया। मेरी माता ने मेरे पिताजी से चित्रपट दिखलाकर सब बातें कह

दीं, सुनकर वे अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि मेरी पुत्री का अनुराग योग्य वर से हुआ, अथवा राजहंसी राजहंस को छोड़कर अन्यत्र रमती ही नहीं, अनेक विद्याओं से संपन्न उसीको मैं अपनी कन्या दूँगा, भानुवेग विद्याधर मेरे पास सतत आते ही हैं, उनके द्वारा यह कार्य अनायास हो जाएगा। पिताजी के इस प्रकार कहने पर प्रसन्न होकर मेरी माता ने श्रीमती से कहा कि श्रीमति ! तुम जाकर मेरी पुत्री से कहो कि "सुरसुंदरि ! इस विषय में थोड़ी भी चिंता करने की आवश्यकता नहीं" श्रीमती ने आकर मुझसे सारी बातें कीं, मैं भी अत्यंत प्रसन्न हो गई और चिंतन करने लगी कि कब वह दिन आएगा जब उनका दर्शन होगा, उनके संगम की आशा से अपने मन को शांत करके दिन बिताने लगी।

इतने में एक दिन गेरुआवस्त्र धारण किए, हाथ में चामर लिए, गोरोचना तिलक लगाए, नास्तिक दर्शनों में निष्णांत एक तापसी आई, आशीर्वाद देकर मेरे पास बैठकर वह कहने लगी कि अपनी इच्छा के अनुसार उपभोग करना चाहिए, क्यों कि इस लोक के सिवाय स्वर्गनरकादि कुछ है ही नहीं, परलोक के लिए जो केशमुंडनादि करते हैं वे तो धूर्तों के द्वारा विषय-सुख से वंचित कर दिए गए हैं। देह से अतिरिक्त जीव पदार्थ नहीं है क्यों कि प्रत्यक्ष प्रमाण से जीव का ग्रहण नहीं होता है और प्रत्यक्ष से अन्य दूसरा प्रमाण है ही नहीं, प्रत्यक्ष से अतिरिक्त अनुमानादि प्रमाण मानने पर भी जीव सिद्ध नहीं हो सकता है, क्यों कि अनुमान भी प्रत्यक्ष पूर्वक ही होता है, लोगों को ठगने के लिए धूर्तों ने शास्त्रों की रचना की है, इसलिए पंचभूत समुदय रूप ही जीव है, जीव सिद्ध नहीं होने पर लोग की भी सिद्धि नहीं हो

सकती, फिर ब्रह्मचर्यव्रत पालन आदि की कोई आवश्यकता नहीं, जो मूर्ख स्वयं नष्ट हैं, वे दूसरों को नष्ट करने के लिए गम्यागम्य का विचार करते हैं, इसलिए निःशंक होकर आप लोग विषय-सुख का उपभोग करें, सरस मांस भक्षण करें, मदिरापान करें, इस प्रकार बुद्धितापसी के वचन को सुनकर मैंने कहा, पापिन्? ऐसा मत बोलो, विद्वानों से निंदनीय तुम्हारे वचन पर कौन विश्वास करेगा ? प्रत्यक्ष प्रमाण से जीव का ग्रहण नहीं होता है, यह तुम्हारा कहना असंगत है क्यों कि जीव का अग्रहण तुम्हारे प्रत्यक्ष से अथवा सब के प्रत्यक्ष से ? यदि तुम्हारे प्रत्यक्ष से ? तो जिस-जिस वस्तु को तुम नहीं देखती उसका अभाव हो जाएगा। यदि सब के प्रत्यक्ष से ? तो पर चित्त का ज्ञान नहीं होने से जीव किसी को प्रत्यक्ष है या नहीं, इसका ज्ञान नहीं हो सकता। अनुमान प्रमाण से जीवका ज्ञान हो सकता है, प्रत्यक्ष से अतिरिक्त प्रमाण ही नहीं है यह तुम्हारा कहना भी असंगत हैं क्यों कि वीतराग सर्वज्ञों ने प्रत्यक्ष परोक्ष दो प्रमाण बतलाए हैं, रागद्वेषरहित सर्वज्ञ प्रणीत शास्त्र को अप्रमाण कैसे कहा जाएगा ? उस सर्वज्ञ प्रणीत शास्त्र में जीव तथा स्वर्ग-नरकादि को सिद्ध किया गया है, परलोक सिद्ध होने पर ब्रह्मचर्यादि व्रत पालन भी आवश्यक है, गम्यागम्य विभाग भी सर्वथा शास्त्रसंमत है, इस प्रकार अनेक युक्तियों से उसके पक्ष का खंडन करने पर उसको उत्तर देने में असमर्थ होने पर मेरे पास की सखियों ने उसका बड़ा उपहास किया, जिससे वह बहुत रुष्ट होकर चली गई और सखियों के साथ मैं भी सुखपूर्वक रह रही थी, इतने में एक दिन राजा मेरी माता के घर आए, माता ने पूछा कि आप चिंतित क्यों दिखते

हैं ? पिताजी ने कहा कि आपने ठीक ही समझा, अब मैं अपनी चिंता का कारण बतलाता हूँ, सुनिए–

सुरसुंदरी नें जिस बुद्धिला परिव्राजिका को बाद में जीता था, द्वेषवश उसने चित्रपट पर इसका रूप लिखकर, उस चित्रपट को लेकर उज्जयिनी में शत्रुंजय राजा के पास जाकर राजा को दिखलाकर, उस दृष्टा ने कहा कि राजन् ! मैं आपके कार्य से पृथिवी पर घूमती हूँ जिस रत्न को देखती हूँ, आपसे कहती हूँ, अभी मैंने कुशाग्रपुर नगर से एक कन्यारत्न को देखा है, नरवाहन राजा की कन्या सुरसुंदरी का यह चित्र लाई हूँ, आप इसे अपनी भार्या बनाइए। दूसरी बात यह है कि उसके जन्म समय में विशिष्ट ज्ञानियों ने कहा था कि जो इस कन्या के साथ विवाह करेगा, वह भरतार्द्ध का स्वामी होगा, इसमें कोई संदेह नहीं, अतः राजन् ? वह कन्या आप ही के योग्य है। राजा ने बहुत द्रव्य देकर उस तापसी को विदा किया, सुंदरी ? यह बात मुझे गुप्तचरों ने बतलाई है, उसके बाद उसने अपने मंत्री रत्नचूड़ को मेरे पास भेजा, मंत्री ने आकर मुझ से कहा कि आप अपनी कन्या शत्रुंजय राजा को दीजिए, मैंने कहा, भद्र ? नैमित्तिक सुमति के वचन से मेरी लड़की विद्याधर की प्रिया होगी, अतः मैं विद्याधर के साथ इसका विवाह करूँगा, इसपर उसने कहा कि मुझे बड़े आग्रह से आपके पास भेजा है, यदि आप उन्हें अपनी कन्या नहीं देंगे तो आपके लिए अच्छा नहीं होगा, उसकी बात सुनकर क्रोध से मैंने कह कि मैं उन्हें अपनी लड़की नहीं दूंगा। उन्हें जो इच्छा हो करें, तुम तो मेरे घर पर आए हो, तुम को क्या दण्ड दूं ? मंत्री ने जाकर उनसे कहा और वे अपनी सेना लेकर मेरे ऊपर आक्रमण करने आ रहे हैं, लाखों घोड़े, लाखों हाथी, लाखों रथ तथा लाखों पैदलवाली चतुरंगिणी सेना के साथ

वे हमारे देश में पहुँच गए हैं, यह बात गुप्तचरों से मालूम हुई है, देवि ? इसी कारण से मैं चिंतित हूँ, माता ने कहा कि इस में चिंता की बात नहीं है, सुरसुंदरी कहकर कनकावली की पुत्री मदन-लेखा के साथ उसका विवाह कर दीजिए। वे खुश होकर अपने नगर चले जाएँगे, अन्यथा बड़ी सेना लेकर आपको उपद्रव पहुँचा-एँगे, राजा ने कहा, देवि ? यह बात तो मंत्रियों ने भी बतलाई थी, किंतु मतिसागर को यह विचार अच्छा नहीं लगा, उसने कहा कि पहले उनको यहाँ आने तो दीजिए, सुमति ने कहा था कि यहाँ आने पर उनकी मृत्यु हो जाएगी। उनकी यात्रा भी अच्छी नहीं हुई हैं, तथा शनैश्वर आदि ग्रह भी पराजय देनेवाले हैं, यहाँ आने पर हमारी विजय होगी और उनका पराजय होगा, देवि ? आप चिंता नहीं करें, उनको रोकने के सारे उपाय कर दिए गए हैं, फिर भी प्रबल शत्रु से चिंता तो हो ही रही है, हँसिनी ? इस प्रकार जब कुछ दिन सुख से बीते, इतने में उनकी सेना नगर में प्रविष्ट होने के लिए नगर को बाहर से घेर लिया, नगर के द्वार बंद कर दिए गए, परिखा जल से भर दी गई, जहाँ तहाँ कवचधारी योद्धा तैयार हो गए, अनेक यंत्र तैयार कर लिए गए, शस्त्र तेज किए जाने लगे, वीरों का सन्मान होने लगा। दोनों ओर के सुभट मरने लगे, सामंत नागरिक आदि भयभीत होकर किंकर्तव्य विमूढ़ हो गए, सुमति के वचन से पिताजी ने अपना साहस कायम रक्खा था।

उसके बाद एक दिन रात को जब मैं महल के ऊपर सोई थी, कोई मुझे वहाँ से उठाकर ले चला। ज्यों ही नींद खुली मैं रोने लगी, हाय माताजी ? हाय पिताजी ? कोई देव था, विद्याधर मुझे हर कर ले जा रहा है, वीरगण ! आप लोग मुझे इस पाप

से छुड़ाइए। इस प्रकार जब मैं विलाप कर रही थी, तब वह मुझे आश्वासन देने लगा कि सुंदरी ? मैं तुम्हारे साथ कुछ भी विरूप कार्य नहीं करूँगा, तुमको मैं प्राण समान प्रिय मानता हूँ, तुम्हारे रूप को देखने मात्र से अनुरक्त होकर मैं तुम्हें हरकर ले जा रहा हूँ। मैं वैताढ्यपर्वत निवासी मकर केतु नाम का विद्याधर हूँ, मेरे साथ तुम अनेक भोगों को भोगोगी, तुम क्यों बेकार दु:खी हो रही हो ? उसका नाम मकरकेतु सुनने पर मेरे मन में कुछ संतोष हुआ, फिर मैंने सोचा कि वह तो अभी विद्या साधन करता है तो फिर वह यहाँ कैसे आएगा ? अथवा मेरा ऐसा भाग्य कहाँ ? जो मैं प्रत्यक्ष देख सकूँगी, इस प्रकार जब मैं सोच रही थी, इतने में वह भूमि पर उतरा और मुझे कदलीवन में रक्खा। इतने में मुझे यह बतलाने के लिए कि वत्से ? ठीक से देख, यह तेरा वल्लभ नहीं हैं, सबेरा हो गया और मैंने उसका श्याम शरीर देखा, देखते ही मैंने निश्चय कर लिया कि यह मेरा वल्लभ नहीं हैं क्यों कि चित्र में भी उसका स्वरूप कामदेव से अधिक सुंदर था, यह सोच-कर जब मैं रोने लगी तब मुझे रोती देखकर वह कहने लगा कि प्रिये ? सुनो--

वैताढ्य पर्वत पर गंगावर्त नाम का एक प्रसिद्ध विद्याधरों का नगर है। जिसमें राजा श्री गंधवाहन अत्यंत प्रसिद्ध थे। मयणावली देवी से उनके नहवाहन मकरकेतु तथा मेघनाद नामक तीन पुत्र हुए। नरवाहण जब युवावस्था में आया और उसने अनेक विद्याएँ प्राप्त कीं, तब उसके लिए कनकमाला नाम की अत्यंत सुंदरी कन्या का वरण किया गया। विवाह समय में चित्रवेग ने उसका अपहरण किया और उसके साथ विवाह कर लिया। उसका पीछा करके नागिनी विद्या से उसे बाँधकर, कनक-

माला को पकड़कर अपने नगर लाया। महिला सहित विद्याधर के ऊपर आक्रमण करने से उसका विद्याच्छेद हो गया। पूर्वपरिचित देव ने चित्रवेग को विद्याएँ दीं, जिससे वह विद्याधर चक्रवर्ती बन गया। सभी विद्याधरेंद्र उनको प्रणाम करते हैं, यह जानकर मेरे पिताजी ने कहा कि मनुष्यों के मनोरथ किस प्रकार नष्ट हो जाते हैं: मैंने सोचा था कि अपने पुत्र को विद्याधर चक्रवर्ती बनाकर केवली पिता के पास प्रव्रज्या लूँगा किंतु हो गया कुछ दूसरा ही, अतः इस राज्य से क्या लाभ? इससे तो केवल नरक ही मिल सकता है, अतः मैं प्रव्रज्या लेकर पिताजी के चरणों की सेवा करूँगा, संसार अत्यंत असार है, यह किंपाक फल के समान अत्यंत परिणाम दुःखद है। जीवन और लक्ष्मी अत्यंत चंचल हैं, संसार में मृत्यु से कोई भी बच नहीं सकता। चारों गतियों में अनेक दुःख संतप्त जीवों को जिन-धर्म छोड़कर दूसरा बचानेवाला कोई धर्म नहीं है। इसलिए पिताजी के पास जाकर मैं अपने जीवन को सफल करूँगा। पिताजी के विचार को जानकर नरवाहण ने भी दीक्षा लेने का विचार किया। अपने पुत्र के साथ सुरवाहण केवली के पास निर्मल चारित्र्य लेकर आठों कर्म को निर्मूल करके अंतकृत केवली बने। उसके बाद चित्रवेग विद्याधरेंद्र ने अपने देश का एक खंड देकर मुझे उसका राजा बनाया। एक समय किसी कारणवश सबेरे अपने नगर से चलने पर आकाशमार्ग से मैंने महल के ऊपर सोई देखकर कामातुर होकर मैंने तुम्हारा अपहरण किया है, इसलिए सुंदरि? तुम रोओ नहीं, तुम तो मेरे प्राणों की भी स्वामिनी हो। मेरे साथ वैताढ्य पर्वत पर अनेक भोगों को भोगोंगी। उसके वचन सुनकर मैं वज्राहत की तरह अत्यंत दुःखी होकर सोचने लगी कि मेरे कारण पिताजी ने शत्रुंजय राजा से भी विरोध

किया और मुझे यह कोई दूसरा ही हरकर ले आया है। मेरे जीवन को सर्वथा धिक्कार हैं, मुझ अभागिन को तो सब कुछ विपरीत ही हुआ। इस प्रकार जब मैं सोच रही थी, तब उसने मुझसे कहा कि तुम यहाँ बैठो, मैं इस बाँस के निकुंज में प्रज्ञप्ति विद्या की सहस्त्र जाप से आराधना करके थोड़ी देर में आता हूँ।

उसके चले जाने पर मैं फिर अनेक प्रकार का चिंतन करने लगी। यूथभ्रष्ट हरिणी की तरह चारों ओर देख रही थी कि इतने में पास में ही चारों ओर फैली हुई शाखाओंवाले फलों से परिपूर्ण एक विषवृक्ष को देखकर प्रसन्न हु,ई प्रिय सखि ? हंसिनि ? सब दुःखों का अंत हो जायगा यह सोचकर उस वृक्ष के पास जाकर उसका फल लेकर " फिर ऐसी विडम्बना अन्य जन्म में नहीं आए, यह कहकर मैंने अपने मुख में रख लिया। अत्यंत तीव्र होने से एक क्षण में ही मे विषवेदना से विव्हल होकर भूमि पर गिर पड़ी। उस समय मेरी नज़र में सारा वन घूम रहा था, पृथिवी घूम रही थी। उसके बाद अकथनीय अवस्था प्राप्त होने पर मैं कुछ नहीं जान पाई, उसके बाद मैंने देखा कि एक तरुण पुरुष ने मेरे शरीर को अपनी गोद में रखकर विष दूर करने में समर्थ मणिजल को मुझे पिला रहा था। उसी जल से मेरे शरीर को सींच रहा था, पवन का उपचार कर रहा था। प्रियंवदा चित्रपट दर्शन से लेकर मेरे संबंध में बातें कह रही थीं, सुनने के बाद विष की वेदना नष्ट होने से मैं एकदम स्वस्थ हो गई। स्वप्न देख रही थीं, ऐसा मानती हुई मैं जग गई और सामने मदन समान सुंदर अपने वल्लभ को देखकर मैं सोचने लगी कि क्या यह इंद्र-जाल है ? अथवा यह मेरा दूसरा जन्म है ? अथवा यह स्वप्न है ? क्या बुद्धि विभ्रम है ? अथवा मैं यह सत्य ही है ? अथवा

मेरा इतना पुण्य कहाँ ? जो इन आँखो से मैं अपने मन-वल्लभ को देखूँ, मैं उनकी गोद में आऊँ ऐसे पुण्य का तो संभव नहीं, इतने में प्रियंवदा ने कहा, सुरसुंदरि ! अब आप उद्विग्न क्यों हैं ? यह रत्नद्वीप है, और मैं आपकी बहन प्रियंवदा हूँ, विद्याओं को सिद्ध किए यह मेरा भाई मकरकेतु है। उसकी बात सुनकर 'यही मेरे प्रिय हैं' यह सोचकर मैं भय से काँपने लगी और संकीर्ण रस का मै अनुभव करने लगी। उनकी गोद से उठकर मैं प्रियंवदा के पास जाकर बैठी, वे मुझे जब नहीं देख रहे थे तब मैंने कटाक्ष-दृष्टि से उनको देखा। इतने में एक विद्याधर ने आकर विनय-पूर्वक कहा कि कुमार ? जिन-पूजा का समय हो गया, है अतः आप उठिए, उसकी बात सुनकर प्रियंवदा के पास मुझे रखकर कुछ लोगों के साथ वे जिन-भवन को गए। तब प्रियंवदा ने पूछा कि सुंदरि ! भूमिचर के लिए अत्यंत दुर्गम इस रत्नद्वीप में आप कैसे चली आई ? और विष भक्षण करके इस कष्ट में क्यों पड़ी? मैंने सारी बातें बतलाकर फिर पूछा कि चित्रपट देकर आप कहाँ गई ? और आपनें क्या किया ? इस घोर जंगल में आपने मुझे कैसे पाया ? और कैसे एक क्षण में मेरे शरीर से विष विकार को नष्ट किया ?

प्रियंवदा ने कहा कि आपको चित्रपट देकर वेग से मैं इस रत्नद्वीप में आई, अपने परिजन के साथ मकरकेतु को देखा। भ्रातृस्नेह से यही कुछ दिन रही। बाद में यहाँ आए हुए पिताजी ने मुझ से यहीं मकरकेतु की परिचारिका बनकर रहने लिए कहा। 'जैसी आपकी आज्ञा' यह कहकर मैं इसी द्वीप में भाई के पास रहने लगी। विद्या सिद्धि का समाचार पाकर बहुत विद्याधरों के साथ पिताजी अष्टाह्निक महोत्सव निमित्त इसी द्वीप में आ गए।

बड़े आड़ंबर के साथ जिन-पूजा करके, विद्याओं की पूजा करके, माननीयों का सन्मान करके, पूजनीयों की पूजा करके विद्याधरों को दान देकर, नृत्य, गीतवाद्य आदि अनेक उपचारों से अष्टान्हिक महोत्सव संपन्न करके पिताजी आज ही रत्नसंचय गए हैं, कार्य-विशेष से मकरकेतु यहीं रह गए। सबेरे शरीर चिंता के लिए निकलने पर बाँस निकुंज के पास एक प्रधान तलवार को देखकर, उसे उठाकर, उसकी शक्ति की परीक्षा के लिए एक प्रहार देकर, वंशजाली को काट डाला। इसके बाद उसके अंदर विद्या-साधन के लिए रहे हुए एक विद्याधर के मणिकुंडल भूषित मस्तक को भूमि पर गिरा देखकर, भय से चकित होकर देखा तो गंगावर्त के राजा गंधवाहन राजा का पुत्र मकरकेतु नाम का था। हाय ! प्रमादवश इस निरपराध को मैंने क्यों मार डाला ? अज्ञान को धिक्कार हैं, जिससे मैंने निरर्थक यह पाप-कर्म किया। इस प्रकार अपनी निंदा करते हुए वहाँ से चलने पर दायाँ नेत्र फड़कने लगा, इतने में विषवृक्ष के नीचे आपको देखा। मनोहर सर्व अंगोंवाली आपको देखनें पर उनका चित्त प्रसन्न हो गया। उन्होंने सोचा कि मरी हुई भी यह मेरे चित्त को क्यों आनंद दे रही है ? क्या यह जीती है ? या मरी है ? यह सोचकर जब उन्होंने देखा तो आपके मुख में विषखंड को देखकर उन्होंने निश्चय किया कि अत्यंत तीव्र विष की वेदना से यह मूर्च्छित हो गई है, अत: अपने स्थान पर ले जाकर इसकी चिकित्सा करूँ। यह सोचकर आपको अपने स्थान पर लाकर मेरे द्वारा सारी बातें जानकर मुझसे दिव्यमणि युक्त अंगूठी लाने को कहा, तब तक उन्होंने विद्याधर कुमारों से पूजा की सामग्री ठीक करने के लिए कहा और कहा कि विद्याधर वध से पाप को दूर करने के लिए शांति-कर्म भी करूँगा। इतने

में मैंने वह अंगूठी लाकर दी। उस मणि के जल से आपके ऊपर सिंचन किया, आपके संबंध में ही मैं बात कर रही थी, इतने में आप स्वस्थ हो गई। इस प्रकार सुरसुंदरि ! आपने मुझे जो पूछा, उसका उत्तर मैंने दे दिया, अब आपका इष्ट भी सिद्ध हो गया।

फिर उसने कहा कि दैव यदि अनुकूल होता है तो द्वीपांतर से समुद्रमध्य से दूर देश से भी इष्टजन को ला देता है, उसके बाद मैंने कहा कि यह तो ठीक हैं किंतु मेरे लिए पिताजी को प्रबल शत्रु शत्रुंजय राजा ने चारों ओर से घेर लिया है। अतः प्रिय का दर्शन होनें पर भी मेरा चित्त शोक संतप्त है। तो फिर मुझ अभागिन के लिए दैव अनुकूल कैसे ? यह कहकर हंसिनी ! मैं शोकावेग में रोने लगी। इतने में उसका भाई कृतकार्य होकर वहाँ आ गया। उसने पूछा, प्रियंवदे ! तुम्हारी बहन क्यों रोती है ? तब प्रियंवदा ने सारी बातें बतला दीं, इसके बाद उसने कहा, सुंदरि ! रोओ मत, आज ही जाकर तुम्हारे पिता के शत्रु को यमराज के मुख में भेज रहा हूँ, मेरे जीतें जी सुंदरि ? तुम्हारे पिताजी को कौन पराभव दे सकता है ? अतः मैं जाता हूँ, प्रियंवदा सहित यहीं प्रथम जिनेश्वर के मंदिर में तब तक रहो, जब तक मैं शत्रुंजय को मारकर आता हूँ, यैह कहकर हाथ में वसुनंद तलवार लेकर वह उड़ गया और मैं प्रियंवदा के साथ उसी जिन-मंदिर में उस दिन रही। अत्यंत अनुराग से उसके आने का चिंतन कर रही थी कि अभी तक उस दुराचारी शत्रुंजय को मारकर मेरे प्रिय क्यों नहीं आए ? दिन बीत जाने पर रातभर यही चिंतन कर रही थी कि विद्या प्रतापवान होकर भी वे अभी तक आए

क्यों नहीं ? इतने में भयंकर मुखवाले काले पिशाच को देखा, उसकी आवाज़ बड़ी कठोर थी। अपने भीषण स्वरूप से मानो मुझे फटकारता था। अग्निज्वाला के समान उसका बाल पीला था।

उसके बड़े-बड़े दाँत-होंठ फाड़कर बाहर निकले थे, मरुकूप की तरह भयंकर उसकी आँखें थीं। वह मनुष्य के मुंडों की माला पहने हुए था। अपने भीम अट्टहास से सभी प्राणियों को डरा रहा था। उसने मुझ से कहा, पापिन ! उस समय परपुरुष में आसक्त होकर परदार लोभी उस पापी पुरुष के साथ संबंध करके मुझे दुःख दिया था। उस पुरुष को तो उस पाप का फल मिल गया, अब तुम अपने पाप-फल को भोगो। यह कहकर हंसिनि ! भय से काँपती हुई मुझे पकड़कर सीधे आकाश में उड़ गया। और कठोर वचन से मुझे फटकारने लगा। उसकी निंदा करती हुई प्रियंवदा भी पीछे-पीछे चली किंतु भीषण हुंकार से उसे मूर्च्छित करके मुझे बहुत दूर ऊपर ले जाकर उस पापी ने मुझे इस तरह गिराया कि यह चूर-चूर होकर मर जाए। किंतु भाग्य-वश मैं इस उद्यान में लताओं पर पड़ी। समंतभद्र ने मुझे देखा और मुझ से मेरा वृत्तांत पूछा, मैं मन में सोचने लगी कि क्या यह इंद्रजाल है ? अथवा मैं स्वप्न देख रही हूँ ? कहां आ गई हूँ ? वह बेताल कहाँ चला गया ? प्रियंवदा को क्या हुआ ? इसी पापी बेताल ने मेरे वल्लभ को भी अनिष्ट किया होगा, मुझे लगता है इसीलिए वे अभी तक आए नहीं थे। अथवा थोड़ी सेनावाले मेरे पिताजी को शत्रुंजय ने क्या किया होगा ? मैं उस समय यही सब सोच रही थी, अतः बार-बार पूछने पर भी समंत-

भद्र को मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसके बाद समंतभद्र मुझे राजा के पास ले आया। भय और चिंता से वहाँ भी मैंने उनके सामने कुछ नहीं कहा। इस प्रकार हंसिके! तुम्हारे ऊपर अत्यंत स्नेह होने से मैंने अपना सारा वृत्तांत बतलाया, क्यों कि तुमने बड़े स्नेह से पूछा था!

–" सुरसुंदरीहरण वर्णनं नाम
बारहवाँ परिच्छेद समाप्त "–

० ० ०

तेरहवाँ-परिच्छेद

उसके बाद हंसिका ने कहा कि आपने अत्यंत दुःसह दुःख का अनुभव किया है, जिसको सुनने से भी भय उत्पन्न होता है, प्रिय सखि ! आप ऐसे दुःखों के योग्य नहीं है, फिर भी कर्म की गति विचित्र है, उसकी महिमा से सुखी से सुखी जीव दुःख का अनुभव करते हैं और दुःखी से दुःखी जीव सुख का अनुभव करते हैं, सुरसुंदरि ! इस प्रकार कर्म की विचित्रता को जानकर आप थोड़ा भी दुःख़ नहीं करें, दूसरी बात यह है कि जैसे लक्षण आपके शरीर में दिखते हैं इनको देखने से लगता है कि आप अवश्य विद्याधरराज की पत्नी होनेवाली हैं, कुशाग्रनगर से आए मनुष्य के द्वारा कमलावतीदेवी के आगे की गई बात मैंनें सुनी है कि शत्रुंजय राजा ने जब नगर को घेर लिया तथा सामंतसहित नरवाहन राजा के प्राण संकट में पड़ गए, तथा मारे गए, सुमटों के खून से नगर में पंक-पंक हो गया, इतने में एकाएक हाथ में तलवार लिए एक विद्याधर वहाँ पहुँच गया और अपनी तलवार से उसने हाथी पर चढ़े शत्रुंजय राजा का सिर काट डाला, उसको मारकर नरवाहन राजा के पास जाकर उस विद्याधर ने कहा कि राजन ! आपका शत्रु मारा गया । एक विद्याधर से अपहरण की गई रत्नद्वीप में स्थित आपकी पुत्री सुरसुंदरी के वचन से मैं यहाँ आया हूँ, मैं श्री चित्रवेग विद्याधरेंद्र का पुत्र मकरकेतु नाम का हूँ, आपकी

पुत्री प्रियंवदा के पास सुखपूर्वक रह रही है, यह कहकर वह विद्याधर वहाँ से चला गया, नरवाहन राजा ने भी स्वामी के मरने से, सेनाओं के भाग जाने पर हाथी-घोड़े, रथ आदि सभी वस्तुएँ ले लीं, अतः सुरसुंदरी ! अपने पिता के विषय में चिंता नही करें, जिसने आपके पिता को निर्भय बनाया उसको पिशाच क्या कर सकता है ? कोई दूसरा कारण उपस्थित हुआ होगा. इसीसे आपके प्रिय रत्नद्वीप नहीं आए थे, इसके बाद हंसिका ने जाकर कमलावतीदेवी से सारी बातें कह दीं, और कमलावती ने भी यथावत् बातें राजा से कर दीं।

सुरसुंदरी इस प्रकार अपनी पितृष्वसा (फुई) के घर पर अंतःपुर की स्त्रियों को आनंद देते हुए सुखपूर्वक दिन बिताने लगी, इतने में दूसरे दिन राजा जब कुछ आप्तजनों के साथ आभ्यंतर सभा में बैठे थे, सुरसुंदरी सहित कमलावती भी वहीं थी, इतने में द्वारपाल के द्वारा आदेश लेकर, राजा का अत्यंत प्रिय वणिक धनदेव हाथ में रत्नों से भरी थाल लेकर राजा के पास आया, ज्यों ही उसने राजा को उपहार दिया, राजा ने उससे पूछा, धनदेव ? तुम तो सिंहलद्वीप गए थे, फिर इतना जल्द पीछे कैसे आए ? क्या पोत पर कुछ विघ्न तो नहीं आया, जिससे एक महीने में ही आ गए, बड़े आश्चर्य की बात है, धनदेव ने कहा, राजन् ? वहाँ से शीघ्र आ जाने का कारण बतलाता हूँ, आप सुनिए-

सिंहलद्वीप से आए हुए व्यापारियों से प्रोत्साहित होकर, उस द्वीप के योग्य भाण्ड को लेकर, आपको प्रणाम कर, बड़े सार्थ के साथ विशाल गम्भीर नामक वेला-कूल को मैंने प्राप्त किय। वह कूल सुपारी और नारियल के वृक्षों से अत्यंत रमणीय था

जहाँ तहाँ हाथी 'दाँत के होने से वह गजेंद्रमुख के समान शोभता था। कहीं-कहीं कर्पूर अगर चंदन से युक्त वह सुरगिरि जैसा दिखाई देता था। कहीं-कहीं तो जायफल इलायची आदि से युक्त वह कामी के मुख की तरह शोभता था। एक विशाल प्रवहण पर सारे भाण्ड को चढाया, उस समय वह प्रवहण राजभवन जैसा सुशोभित हो रहा था।

शुभतिथि नक्षत्र में समुद्रपूजन करके जिनेंद्र-पूजा करने के बाद श्रमण संघ को दान देकर, मित्रों से विदा लेकर, सकल परिवार से आभाषण करके प्रवहण पर चढ़कर समुद्र के बीच होकर जब जा रहा था, कितने योजन दूर जाने पर कूपक-स्तम्भ पर बैठे हुए नियामक ने कहा कि देखो भाई यह आश्चर्य देखो। सुरेंद्र समान सुंदर प्रसन्नमुख कोई महानुभाव अपनी भुजाओं से अनवार पार समुद्र को क्या कर रहा है? उसकी बात सुनकर, नाव लेकर कुछ, लोगों को उसके पास भेजा। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उससे कहा, भद्र? धनदेव व्यापारी ने हमें आपके पास भेजा है, इस प्रकार कहने पर वे महानुभाव हमारे प्रवहण पर चढ़े, काम से भी अधिक सुंदर पूर्णिमाचंद्र के समान, अत्यंत सौम्य गौरवर्ण, आपसे मिलती-जुलती आकृतिवाले उन महानुभाव को देखने पर मैंने सोचा कि यह तो अमरकेतु राजा जैसे लगते हैं, जंगल में कमलावती की गोद से हर लिया गया यह उन्हींका पुत्र तो नहीं है? अथवा सोचने की आवश्यकता नहीं इनसे ही पूछूँ कि ये समुद्र में कैसे गिरे? और ये कौन हैं? यह विचार कर मैंने बड़े आदरभाव से मालिश करवाकर अत्यंत विनय से भोजन करवाकर, सुखासन पर बैठने पर, मैंने पूछा, भद्र? आप कहाँ

रहते हैं ? और इस सागर में कैसे गिरे ? तब उन्होंने कहा, धनदेव ? यदि आपको सुनने का कौतुक है तो एकाग्रचित्त होकर सुनिए–

वैताढय पर्वत की दक्षिण श्रेणी में रत्नसंचय नामक नगर में पवनगति-विद्याधरपुत्र बकुलावती की कुक्षि से उत्पन्न चित्रवेग नामक विद्याधरेंद्र चक्रवती हैं, अमितगति विद्याधरपुत्री कनकमाला उनकी भार्या है, उन्हींका पुत्र मैं मकरकेतु नाम का हूँ, क्रमशः बढ़ता हुआ मैं युवावस्था में आया। इधर वैताढय पर्वत की उत्तर श्रेणी में चमरचंच नामक नामक एक नगर है, भानुगति विद्याधर पुत्र चित्रगति विद्याधरराज उस नगर के स्वामी हैं, वे मेरे पिता के मित्र हैं, मैं भी उनका अत्यंत प्रिय हूँ, एक समय जब मैं चमरचंच नगर गया तो स्नेह से उन्होंने मुझे रोहिणी विद्या दी। सात महीने वहीं रहकर मैंने रोहिणी विद्या सिद्ध की। उसे सिद्ध करने में अनेक विभीषिकाएँ आईं किंतु मैं अविचल तथा निमय रहा, वहां से अपने नगर आने पर प्रसन्न होकर, पिताजी ने विद्याधरों के सामने मेरी प्रशंसा करते हुए कहा कि बाल्यवस्था में ही मेरे पुत्र ने अत्यंत रौद्र रोहिणी विद्या सिद्ध कर ली है, मैंने तो बालक समझकर इसे विद्याएँ नहीं दी थीं, किंतु जब इसने इतनी कठिन विद्या सिद्ध कर ली तो अन्य विद्याओं को सिद्ध करने में इसे कोई कठिनाई नहीं होगी, यह सोचकर शुभ दिन में सिद्धायतन में जिन-प्रतिमाओं का अष्टाहिन्हक महोत्सव करके सभी विद्याएँ देकर, उनका विधान बतलाकर उन्होंने मुझसे कहा कि रत्नद्वीप में विद्याधररचित युगादि देव-मंदिर में इन विद्याओं को सिद्ध करो। वहाँ जिन वंदन पूजन करके अन्य सर्वविध व्यापारों से रहित होकर एक योजन में पंचेद्रिय जीवों की हिंसा नहीं होने देना। क्यों कि प्रमाद से भी हिंसा होने पर विघ्न होगा। यह कहकर पिताजी ने सर्व दोष निवारण के लिए अपनी अंगूठी देकर,

थोड़े परिजन के साथ मुझे रत्नद्वीप भेज दिया और छः महीने बीतने के पहले ही बहुरूपा, प्रज्ञाप्ति, गौरी, गांधारी, मोहिनी, उत्पादनी, आकषणी, उन्मोचनी, उच्चाटनी, वशीकरणी आदि विद्याओं को मैंने सिद्ध कर लिया। इतने में रात के पिछले पहर में एकाएक पृथिवी काँपने लगी। दिग्गज गरजने लगे, आकाश प्रकाशित हो गया, पंचभूत मानो हँसने लगे, उसके बाद सुगंधित कोमल हवा बहने लगी। दिव्यकुसुम वृष्टि होने लगी। इतने में अपने-अपने नाम से अंकित विचित्र चिन्धोंवाली अनेक अलंकारों से अलंकृत, विचित्रवाहन पर आरूढ विचित्र वेशवाली, एक दूसरे के वर्णों से अत्यंत दैदीप्यमान स्वरूप अनेक स्त्रियाँ प्रकट हुई, उन्होंने कहा, हम तुम्हारी विद्याएँ सिद्ध हो गई हैं, उनके वचन सुनकर प्रसन्न होकर उनकी यथोचित पूजा की, विद्या सिद्धि के समाचार प्राप्त कर बड़े आडम्बर के साथ अनेक बाजाओं से युक्त अष्टान्हिका पूजा के सामान को लेकर वैताढ्य से मेरे पिताजी भी वहाँ आ गए, युगादिदेव जिन-मंदिर में भक्ति से महामहिमा करके प्रयत्न से यथाविधि सर्व विद्याओं की पूजा कर के निर्मल पवित्रतीर्थ जल से जिन-प्रतिमाओं का स्नपन करके विद्याधरों को दान देकर पूजनीयों का पूजन माननीयों का संमान करके सुंदर गीतनृत्य आदि के द्वारा अष्टान्हिनका महोत्सव करके पटह भेरी भंभा दुंदुभि आदि बाजाओं की आवाज़ से दिशाओं को भरते हुए सुर-किन्नरों को आश्चर्यचकित करते हुए जिनेंद्र-मंदिर में जागरण करके सकल परिवार सहित वैताढ्य पर आ गए, किसी विशेष कार्य से मैं वही रह गया। जिन-पूजन जिन-वंदन करके सूर्योदय होने पर शरीर चिंता के लिए मैं बाहर निकला। शरीर चिंता करके वहाँ से कुछ आगे बढ़ने पर मैंने बाँस के वन में भूमि पर

पड़ी एक तलवार को देखा, देखते ही तलवार उठाकर चपलता से बाँस निकुंज को मैंने काट डाला, उस निकुंज में पहले से गंगावर्त का स्वामी गंधवाहन राजा का पुत्र मकरकेतु बैठा था, निकुंज कटते ही मैंने भूमि पर उसके चमकते हुए सिर को पड़ा देखा, देखते ही मैं चकित होकर सोचने लगा कि मैंने बड़ा अकार्य किया, अवश्य कोई विघ्न होगा। फिर मैंने सोचा कि विद्याएँ सिद्ध हो जाने पर अब विघ्न का कोई संभव नहीं है, फिर भी विघ्न दूर करने के लिए जाप-पूजादि आवश्यक है, यह सोचकर मैं चला, उसी समय मेरी दाईं आँख फड़कने लगीं। मैंने सोचा कि यह सुनिमित्त क्या फल देगा ? कुछ दूर जाने पर धनदेव ? किंपाक वृक्ष के नीचले भाग में मूर्च्छित शरीर शोभा से मानो मेरे कुल की लक्ष्मी न हो। ऐसी एक युवती को देखा। लम्बे काले कोमल केश से उसका सिर भ्रमर से आच्छन्न कमल के समान सुंदर था। कान तक पहुँची आँख तथा ऊँची नाक से शोभित उसका मुखचंद्र असंपूर्ण चंद्र को लज्जित कर रहा था। उसकी ग्रीवा शंख के समान ऊँची और कोमल थी। उसके पीन और उन्नत स्तन-युगल ऐरावत के कुंभस्थल के समान थे, उसका मध्यभाग अत्यंत कृश था। उसकी नाभी अत्यंत गंभीर और मनोहर थी मानो विधाता ने कामदेव के मंजन के लिए कूपिकान बनाई हो, पुष्ट और सुकुमार नितम्ब से वह तरुण जन को कामार्त बनाती थी। उसका अरु-युगल रम्भा (कदली) सांभ के समान सुंदर था। चिर-परिचित की तरह उसको देखने पर मेरे नेत्र और हृदय दोनों को अत्यंत आनंद उत्पन्न हुआ। उसके मुख से फेन निकल रहा था। उसके मुख में अंगुली देकर देखा, तो आधा चबाया गया किंपाक फल

मतमूल फल, इस फल को खाने से यह मूर्च्छित हो गई है, ऐसा निश्चय करके अपने स्थान पर ले चलने का विचार किया। यह भी सोचा कि किसी विद्याधर की पुत्री है, किसी निर्वेद से इसने विषफल खाया होगा। भूमिचर मनुष्यों के लिए यह रत्नद्वीप अगम्य है, अतः भूमिचर मनुष्य की पुत्री तो यह हो नहीं सकती। अनेक विद्याधर पुत्रियों को देखा, कभी कहीं अनुराग उत्पन्न नहीं हुआ। इसको देखते ही अनुराग उत्पन्न हो रहा है, अतः यह मेरी भार्या होगी, यह सोचकर अपने अंक में उठाकर उसके अत्यंत कोमल शरीर के स्पर्श से विचित्र आनंद का अनुभव करते हुए युगादि देव मंदिर के पास अपने आवासस्थान पर उसे लाया। वहाँ मेरी दूसरी माता की पुत्री बहन प्रियंवदा रहती थी, मैंने उससे कहा कि विद्या प्रदान के समय पिताजी ने जो दिव्य मणि-खचित अंगूठी दी थी, निर्मल जल सहित वह अंगूठी लाओ, क्योंकि विष दूर करने में वह सिद्ध है। अंगूठी लाने पर उसके जल से उसको सींचने पर प्रियंवदा ने कहा कि यह मेरी बहन लगती है। मैंने उससे पूछा कि तुमने इसको कब और कहाँ देखा था? उसने कहा कि मेरी माता की छोटी बहन रत्नवती कुशाग्रपुर नगर में नरवाहन राजा की भार्या है। यह उसीकी पुत्री है। इसका नाम है सुर-सुंदरी। वैताढ्य से पहले जब मैं यहाँ आ रही थी तो थककर कुशाग्रपुर के बाह्योद्यान में उतर गई थी, वहीं इसको देखा था। मैं विद्या का पद भूल गया था। इसने लब्धि से स्मरण करके बतलाया था, वहीं चित्रपट पर आपके लिखित स्वरूप देखने से इसको उन्मादकारक अनुराग उत्पन्न हो गया था। मैंने कहा था कि यह अत्यंत सुंदर है, अतः तुम्हारी भार्या होगा, सुनकर बिलख गई थी कि इनका दर्शन भी तो दुर्लभ है और निःश्वास छोड़ने

लगी थी। मैंने कहा था कि अगर मुझमें कुछ शक्ति होगी तो उसके संगम से बहन को अवश्य सुख पहुँचाऊँगी। इस प्रकार प्रियंवदा जब उसके संबंध में बात कर रही थी, इतने में उसकी मूर्च्छा टूट गई, अपनी गोद से उसे प्रियंवदा के पास रखकर विघ्न दूर करने के निमित्त जिनेश्वर की पूजा के लिए चला, वहाँ जाकर विधिपूर्वक जिन-पूजा जिन-वंदना करके वहाँ के देवताओं के मंत्रों का जाप करके, स्तुति पाठ करके, कायोत्सर्ग करके, फिर वहाँ से जब मैं प्रियंवदा के पास आया, तब तक वह रो रही थी। मैंने प्रियंवदा से उसके रोने का कारण पूछा, उसने कहा कि इसी के कारण प्रबल शत्रु ने इसके पिता के ऊपर आक्रमण कर दिया है, अतः चिंता से यह रो रही है। मैंने कहा कि मेरे जीते जी कौन तुम्हारे पिता को पराभव दे सकता है? यह कहकर हाथ में वसुनंदक तलवार लेकर अकेले ही चलने का विचार किया। उसको प्रियंवदा के साथ वहीं रहने के लिए कह दिया और कहा कि जब तक मैं आता हूँ तब तक यहीं रहना, इस प्रकार कहकर मैं आकाश-मार्ग से कुशाग्रपुर पहुँच गया। वहाँ बड़े-बड़े वीरों से प्राकार की रक्षा की जा रही थी। बड़े-बड़े प्रासादों से नगर सुंदर लगता था। अट्टालिकाओं पर ध्वज फहरा रहे थे। जहाँ-तहाँ तोप लगाए हुए थे। वीरों की गर्जना से कोलाहल हो रहा था, मैं ऊपर से ही वहाँ का दृश्य देख रहा था। इतने में नगर का विनाश करने के लिए मालव राज शत्रुंजय की सेना बढ़ी, शत्रुंजय की सेना गरज रही थी। पत्थरों से परिखा को भरने की कोशिश कर रही थी। नरवाहन के सैनिकों के भाला आदि अस्त्रों से कटकर, शत्रुंजय के सैनिक गिर रहे थे। इतने में रोष में आकर शत्रुंजय के अनेक सामन्त वीर प्राकार के पास अपनी सेना को ले आए। उनके अनेक

अस्त्रों के प्रहार से प्राकार क्षत-विक्षत होकर रोमांचित जैसा दीखने लगा। उसके सैनिक परिखा को भरकर जहाँ-तहाँ के आवरणों को जलाने लगे। इस प्रकार शत्रु-सेना से जब नगर के लोगों तथा सैनिकों को विव्हल देखा, तब मैं हाथ में तलवार लेकर हाथी पर चढ़े शत्रुंजय के पास पहुँच गया। मैंने कहा, अरे दुष्ट? तू अकारण मेरी दयिता के पिता को पराभव दे रहा है, अथवा विनाश के समय बाँस वृक्ष में फल आ जाता है। अब तू अपना पुरुषार्थ दिखा। यह कहकर उसका बाल पकड़कर मैंने उसका सिर काट डाला। उसका सिर कटते ही उसकी सेना हताश होकर भागने लगी। मैं उसका सिर लेकर चिंतित राजा नरवाहन के पास पहुँचकर, उनके आगे शत्रुंजय का सिर रखकर, उन्हें प्रणाम करके पहले की सारी बातें उनसे कहकर धनदेव? मैंने उनसे कहा कि मैं आपकी कन्या लाकर दे देता हूँ, यह कहकर मैं प्रिया के मुख-चंद्र को देखने की उत्कण्ठा से उड़कर जब तक इस प्रदेश में पहुँचा तब तक मैंने एक पिशाच को देखा। उसकी जांघ ताल वृक्ष के समान थी। स्याही के समान उसका शरीर काला, अत्यंत भयंकर लम्बी बाँहें थीं। होंठ से उसके दाँत बाहर निकले थे, जुगनू के समान उसकी आँखें चमक रही थीं, उसकी जिव्हा मुख से बाहर लपलपा रही थी। उसकी नाक अत्यंत मोटी तथा चिपटी थी। और वह अत्यंत संताप देनेवाला था। अपने आस्फोट से गर्जन से, अट्टहास से, गगन को शब्दमय कर रहा था, उसने मुझसे कहा कि अरे! रे! उस समय मेरी दयिता का अपहरण करके जो तूने मुझे दुःख दिया था। उस वैर का मैं आज अंत करूँगा। अब देख लिया तुझे, अब तू कहाँ जाएगा? रे शत्रु! तेरे बाल्यकाल में तू किसी तरह बच गया, अभी नहीं बचेगा, कारण मैं तुझे समुद्र में

फेंक रहा हूँ, यह कहकर वह बेताल एकाएक अदृश्य हो गया और मैं धड़ाक से समुद्र में गिर पिड़ा। बार-बार नभोगामिनी विद्या का स्मरण किया किंतु उसके पद स्मरण में नहीं आए, तब मैंने निश्चय किया कि इसने विद्याच्छेद भी कर दिया। य. कोई प्रचंड शत्रु देव होगा। धनदेव ! तब मैं अपनी बाँह के बल से ही समुद्र पार करने के लिए तैयार हो गया। राजन् ? उसने ज्यों ही अपना वृत्तांत सविस्तर इस प्रकार बतलाया, इतने में निर्यामक ने भयभीत होकर इस प्रकार ज़ोर से आवाज़ दी कि हे नाविक पुरुष! आप लोग सावधान हो जाए क्योंकि आकाश में यमराज वंदन के समान अत्यंत भयंकर औत्पातिक जंतु बादल की तरह दीख रहा है। अब वह अवश्य उपद्रव मचाएगा। बहुत जल्दी नाविकों सहित नाव का विनाश करेगा। उसकी बात सुनकर, कूपस्तंभ पर चढ़कर, लोग देखने लगे और लोगों ने जीने की आशा भी छोड़ दी। उसके बाद नंगर छोड़ दिया। कूप-स्तम्भों को तिरछा कर दिया। सफेद वस्त्र से नाव को ढक दिया। इतने में आकाश काले-काले बादलों से ढक गया। समुद्र खलबलाने लगा। प्रचंड पवन बहने लगा। यमराज की जिव्हा के समान बिजली छिटकने लगी। यमराज के सुभट के समान मेघ भी गरज ने लगे। समुद्र की तरंगें इतनी तेज हो गई कि नंगर डालने पर भी नाव अपने स्थान से खिसकने लगी। प्रचंड पवन के वेग से तथा तरंगों की तीव्रता से, कड़कड़ाकर नंगर टूटने लगे। बंधन टूटने पर बड़ी तरुणी घोड़ी की तरह नाव वेग में भागने लगी। नाव डूबने के भय से लोग अपने-अपने इष्टदेव का स्मरण करने लगे। उन्मत्त की तरह नाव इधर-उधर सागर में घूमने लगी। कुछ लोग करुण विलाप कर रहे, थे, कुछ सुवर्ण

की पोटली अपने बगल में छुपाकर नाव डूबते समय कूदने के लिए तैयार थे, इतने में एकाएक एक पर्वत से टकराकर, नाव फूटकर समुद्र में डूब गई। मैं एक काष्ठ फलक को प्राप्त कर तरंग के वेग से पांच दिन में किनारे लगा। वहाँ सूर्य की किरण लगने से शरीर की जड़ता (ठण्डापन) कुछ कम हुई, काष्ठ फलक से उतरकर सुपक्व केले खाकर, भूख शांत की। सूखे नारियलों को फोड़कर तेल लगाया, सरोवर के किनारे चंदन वृक्ष के पल्लवरस से स्नान किया। जायफल एलायची सहित ताम्बूल खाकर एक रत्न शिला-पट्ट पर बैठकर चिंतन करने लगा कि हाय? एकाएक कैसे धन परिजन का नाश हो गया? नाव फूटने पर वे महानुभाव कहाँ होंगे? काष्ठ फलक को प्राप्त कर यदि किसी तरह पार कर गए हों, तो बहुत अच्छा होता।

इस प्रकार चिंतन करते हुए जब मैं कितने दिनों तक वहाँ रहा, तब एक दिन किसी ने कहा, धनदेव? आप इतने खिन्न क्यों दीखते हैं? तब चकित होकर मैं उधर देखता हूँ तो एक दैदीप्य-मान शरीर, प्रसन्न मुख, अनेक अलंकार तथा पचरंगे वस्त्रों को धारण किए एक देव को मैंने देखा, अभ्युत्थान करते हुए आदर से उसने मेरा आलिंगन करके मुझसे कहा, भद्र! क्या तुम मुझे पहिचानते हो? तब मैंने कहा, देव? मैं अभी भी आपको ठीक से नहीं जान पा रहा हूँ, अतः आप बतलाइए कि आप कौन हैं? और कहाँ मुझे आपका दर्शन हुआ था? देव ने कहा कि आपने हस्तिनापुर के उद्यान में जिस देवशर्मा को देखा था और जिसके कहने से लाख देकर सुप्रतिष्ठ पुत्र जयसेन को बचाया था, जंगल में आपके सार्थ को जब भीलों ने लूटा था, उस समय सुप्रतिष्ठ के यहाँ आपने मुझे देखा था। कुशाग्रपुर से लौटने पर जब सिंहगुफा

जल गई थी। करंकों के बीच में आपने मुझे देखा था, मेरे हाथ पैर कट गए थे, मुझे बड़ी प्यास लगी थी। आपने पानी मंगवाकर मुझे पिलाया था, सम्यक्त्व सहित पंच नमस्कार दिया था। वही मैं देवशर्म्मा का जीव हूँ, नमस्कार मंत्र के प्रभाव से वेलंधर नागराज के मध्य सामानिकों से पूजित शिवक नाम का देव हूँ, तब मैंने कहा कि अभी आप कहाँ रहते हैं ? तब देव ने मुझ से कहा कि मेरुपर्वत के दक्षिण भाग में बेआलिस हज़ार योजन प्रमाण लवण समुद्र का अवगाहन करके अट्ठीस योजन प्रमाण ऊँचाईवाला, अपने रत्नों की प्रभा से साढ़ेसात योजन तक चारों ओर लवण समुद्र को प्रकाशित करनेवाला 'दंडमास' नाम का एक पर्वत है, उसके शिखर पर बासठ योजन ऊँचा, सुंदर रत्नों से अलंकृत मेरा भवन है। दस हज़ार सामानिक मेरी सेवा करते हैं, एक पल्योपम आयुवाला वेलंधर राज हूँ, लवण समुद्र में बारह हज़ार योजन विस्तारवाली शिव का नाम की मेरी राजधानी है। उसमें अनेक देवियों के साथ दिव्यभोग का अनुभव कर रहा हूँ। भद्र ! आपकी कृपा से मुझे यह ऋद्धि प्राप्त हुई है, कल मैं 'दंडमास' पर्वत पर आया और अवधिज्ञान से आपको रत्नद्वीप में देखकर यहाँ आपके पास आया हूँ, बोलिए, मैं आपके लिए क्या करूँ ? मैं उस समय मन में सोच रहा था कि जिन धर्म का इतना फल है, तो फिर मैं दीक्षा क्यों नहीं ले लेता हूँ ? फिर देव ने कहा कि देवदर्शन विफल नहीं होता है, अतः आप तैयार हो जाए रत्नों से पूर्ण दिव्य विमान पर मैं आपको हस्तिनापुर ले चलता हूँ, वहाँ पहुँचने पर आपके सभी मनोरथ पूर्ण होंगे। यह कहकर दिव्य विमान की विकुर्वणा करके बहुत रत्नों के साथ मुझे उसपर चढ़ाकर शिवक देव मुझे हस्तिनापुर ले आया।

हस्तिनापुर प्रत्यागमन

नाम त्रयोदश सर्ग समाप्त

चौदहवाँ–परिच्छेद

इस प्रकार जब धनदेव ने राजा से मकरकेतु का समाचार बतलाया, सुनते ही सुरसुंदरी शोकसंतप्त होकर विलाप करने लगी, हाय ? मेरा यह हृदय अवश्य वज्र से बनाया गया है, नहीं तो इस दुःखद समाचार सुनने से यह अवश्य फट जाता। अब मुझे जीने से ही क्या लाभ ? क्यों कि प्रवहण फूटने पर उनका जीवित रहना असम्भवित है। नाथ ? आपने तो कुशाग्रपुर जाकर शत्रुंजय राजा को मारकर, अपने स्नेह का परिचय दिया, जिस देव ने मेरा अपहरण किया उसी देव ने आपकी विद्या नष्ट कर दी होगी। आप अभी किस स्थिति में होंगे ? हाय ! चंद्र समान निर्मल आपके मुख को मैं कैसे देखूंगी ? विधाता ने क्यों मेरा सर्वस्व छीन लिया ? स्त्रियाँ चंचल स्नेहवाली होती हैं। यह बात बिलकुल ठीक दिखती है, नहीं तो ऐसे दुःखद समाचार सुनने पर भी मैं जीती कैसे ? इस प्रकार चिंतन करके, विकल होकर सुरसुंदरी कमलावती की गोद में गिर पड़ी। कमलावती भी पुत्र के समाचार से व्याकुल होकर, इस प्रकार विलाप करने लगी कि हाय पुत्र ? जंगल में जन्म लेते ही तुम को हरकर ले गया। अभी भी मेरे दुर्भाग्य से तुम्हारा दर्शन नहीं हुआ, यह बिचारी धन्य है, जिसनें तुम्हारा मुख तो देख लिया, कुलपति ने कहा था कि युवावस्था में आने पर वह मिलेगा, उनका भी वचन सत्य नहीं निकला, राजा अमरकेतु भी

पुत्र शोक से विव्हल होकर रोने लग गए, इतने में धनदेव ने मूर्च्छित पड़ी सुरसुंदरी को देखकर संकेत से हँसिका को पूछा कि यह यह कौन है ? उद्यान में गिरने से लेकर सारी बातें हँसिका ने धनदेव से जब बतलाई तब धनदेव ने कहा, राजन् ? आप क्यों दु:खी होते हैं ? देवि ? आप क्यों विलाप करती हैं ? क्या सुमति नैमित्तिक की बात आप लोग भूल गए कि कुसुमाकर उद्यान में जब लड़की गिरेगी, उसके थोड़े दिन के बाद ही पुत्र का दर्शन होगा। आप लोग सुमति के वचन पर विश्वास रखकर चिंता छोड़ दीजिए, क्योंकि सुमति का वचन कभी भी असत्य नहीं हो सकता। इसलिए प्रवहण फूटने पर भी अवश्य आपका पुत्र आएगा ?

इस प्रकार धनदेव जब आश्वासन दे रहा था, इतने में एकाएक दुदुंभिनाद हुआ, नगर के बाहर आकाश से उतरतें हुए देव दिखने लगे, देवांगनाओं के गीतों के साथ जय-जय शब्द सुनाई देने लगा, इतने में प्रसन्न समंतभद्र ने राजा के पास आकर कहा, देव ! नगर के पूर्वोत्तर दिशा भाग में कुसुमाकर उद्यान की प्रासुक भूमि पर श्रमणों से परिवृत्त सर्व शास्त्रार्थ विशारद पर वादी रूप हाथियों को दूर करने में सिंह समान अनेक तपस्याओं में निरत विशुद्ध चारित्र्य संयमयुक्त सुप्रतिष्ठ सूरि समवसृत हुए हैं, धाती कर्मों को दग्ध करके अभी उन्होंने केवल-ज्ञान प्राप्त किया है, केवली महिमा के निमित्त आज देवगण यहाँ आए हैं, उसकी बात सुनकर वंदना के लिए चलते हुए राजा ने कहा, देवि ? आप भी सुरसुंदरी के साथ जाकर उनकी वंदना करके, अपने पुत्र का वृत्तांत पूछिए। सपरिवार राजा उद्यान में जाकर उनकी वंदना करके उचित स्थान में बैठे, सुर-असुर मनुष्यों से भरी सभा में केवली ने गम्भीरवाणी से देशना प्रारंभ की।

नारक तिर्यंक मनुष्य देव गति में परिभ्रमण करनेवाला जीव किसी-किसी तरह इस संसार में मनुष्यत्व को प्राप्त करता है, मनुष्यत्व प्राप्त करने पर भी मिथ्यात्वादि से मोहित अनेक जीव विषयलोलुप बनकर, परलोक हित का आचरण नहीं करते हैं, जिन-वाणी से वंचित रहकर, कार्य-अकार्य को भी नहीं जानते हैं, अपनी मर्यादा को छोड़कर भक्ष्याभक्ष, पेयापेय, गम्यागम्य आदि का भी विचार नहीं करते हैं।

शास्त्रीय उपदेश से धर्माधर्म की व्यवस्था करनेवाले आचार्यों को वे धूर्त बतलाते हैं। पंचभूत से अतिरिक्त जीव को मानते नहीं हैं, और जीव के अभाव में परलोक का भी खंडन करते हैं, इस प्रकार निर्दयता से जीवहत्या करते हैं, मिथ्या बोलते हैं, अदत्त वस्तु लेते हैं, परदार सेवन करते हैं, रागद्वेष से मोहित होकर रात्रि भोजन ही नहीं किंतु मधु-मद्य माँस भक्षण भी करते हैं, क्रोध-मान-माया-लोभ रूप चार कषायों से युक्त होकर क्लिष्ट-कर्म भी करते हैं। इस प्रकार काल करके तीव्र दु:खदायी नरकों में जाकर तेज तलवार से काटे जाते हैं, काँटोंवाले शेमल वृक्ष की शाखा पर चढ़ाकर रस्सियों से बाँधे जाते हैं और नीचे खींचे जाते हैं, उनके शरीर को काट-काटकर, अग्नि में पकाकर लोग खाते हैं, अनेक अपवित्र वस्तुओं से भरी वैतरणी नदी में गिरकर माँ माँ कहकर चिल्लाते हैं, असिपत्र वन में उन्हें ढकेला जाता है, रक्षा करो, शरणागत हैं, यह कहने पर पूर्वभव की बातों को स्मरण कराकर उन्हें पीटा जाता है। इस प्रकार नरक में अनेक कष्टों को भोगने पर वहाँ से उद्धृत्त होकर, तिर्यंच योनि में उत्पन्न होते हैं, वहाँ भी भूख, प्यास, शीत, आतप, वध, बंध, रोग, वेदना, भारा-रोपण आदि अनेक कष्टों का अनुभव करने पर फिर अनेक योनियों

में दुःखों का अनुभव करते हैं। उसके बाद किसी-किसी तरह मनुष्यत्व को प्राप्त होते हैं फिर भी शारीरिक, मानसिक अनेक कष्टों का अनुभव करते हुए दारिद्रय-दोष से गृहीत होकर नीचों की सेवा करते हैं, दूर देश जाते हैं, धन प्राप्त करने के लिए दिन-रात काम करते हैं, इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग आदि में अनिर्वचनीय दुःखों का अनुभव करते हुए अनेक रोगों से पीडित होकर कभी भी शांति का अनुभव नहीं करते हैं, जरा गृहीत होकर, मरकर किसी-किसी तरह देवत्व को प्राप्त होते हैं, वहाँ दूसरे बड़े देवों की समृद्धि को देखकर ईर्ष्या-विषाद भयशोक से व्याकुल रहते हैं, अपने स्वामी के आदेश का पालन करना पड़ता है, च्यवन समय में देव भी अत्यंत दुःखी होते हैं। इस प्रकार जीव चौरासी लाख योनि में परिभ्रमण करते हुए दुःख का अनुभव करते हैं, जीव जब तक जिन-धर्म को प्राप्त नहीं होते, तब तक यह भवभ्रमण रहता ही है, अतः हे देवानुप्रिय ? आप लोग जिन-देशित धर्म की आराधना करें, वह जिन-धर्म दो प्रकार का है, यति धर्म और गृहस्थधर्म, सम्यक्त्व दोनों का सार है। वह सम्यक्त्व तत्वार्थश्रद्धान रूप है, तत्त्व जीव-अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध-मोक्षनो हैं, सूक्ष्म बादर आदि जीव के चौदह भेद हैं, धर्म-अधर्म आकाशादि चौदह अजीव के भी भेद हैं, पुण्य प्रकृति के बेआलिस भेद हैं, इसी प्रकार पाप प्रकृति के बयासी भेद हैं, आसव के बेआलिस, संवर के सत्तावन, निर्जरा के बारह तथा बंध के चार भेद हैं, ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का क्षय शाश्वत मोक्ष कहलाता हैं, इन तत्त्वों को तीर्थंकर देव तथा साधुओं के प्रति श्रद्धा से सम्यक्त्व उत्पन्न होता हैं। मन, वचन, काय योग से सावद्य कर्मत्याग ये सब यति धर्म में आते हैं, पृथिव्यादि षड् जीव निकायों में दया। सकल

रह से विशुद्ध सत्य वचन वोलना, अदत्तादान का सर्वथा त्याग, नव गुप्ति सहित ब्रह्मचर्यव्रत का पालन, सर्वविध परिग्रह त्याग, रात्रि में चतुर्विध आहार त्याग, पाँच समिति तीन गुप्तियों का नित्य सेवन, बाईस परिग्रहों को जीतना, सूरि प्रमुख विशिष्ट साधुओं की सेवा, मनुष्य तिर्यंक देवकृत उपसर्ग सहन करना, शब्दादि विषयों में राग द्वेष नहीं रखना, बेआलिस दोषों से रहित पिंड ग्रह करना, धर्म चिंतन, स्वाध्याय सेवन, सर्वविध विकथा त्याग, बाह्य तथा आभ्यंतर तप में उद्यम, आर्त रौद्र को छोड़कर धर्म ध्यान तथा शुक्ल ध्यान सेवन, अनित्यादि भावना का भावन, विनय सेवन, स्वच्छंदता का त्याग, दश प्रकार यतिधर्म का नित्य अनुष्ठान, मुनियों के संसर्ग में रहना, कुशील संसर्ग त्याग, पंचविध प्रमाद त्याग, अठारह शीलांगसहस्र का पालन करना, साधुओं के लिए नितांत आवश्यक है, राजन् ? इस प्रकार का यतिधर्म शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कराता है, पाँच अणुव्रता तीन गुणक्षा व्रत, चार शिक्षाव्रत ये बारह श्रावक धर्म भी दीर्घकाल से मोक्ष को प्राप्त कराते हैं ?

इस प्रकार यतिधर्म तथा श्रावक धर्म का स्वरूप निरूपण के बाद अवसर पाकर राजा ने सूरि से पूछा कि जंगल में उत्पन्न होते ही कमलावती के पुत्र का अपहरण किसने किया ? उसका पालन-पोषण कहाँ हुआ ? हमें वह कब मिलेगा ? कृपा कर सविस्तर बतलाइए, केवली ने कहा, राजन् ? मैं कहता हूँ, आप सुनिए--

छातकीखंडद्वीप में पश्चिमार्द्ध भरतक्षेत्र में अमरकंटक नाम की एक प्राचीन नगरी है, उसमें अंबड़ नामक वणिक की स्त्री

अक्षुता नाम की थीं, उसके मंडन-मल्हन-चंदन नामक तीन पुत्र हुए, क्रमशः लक्ष्मी-सरस्वती-सम्पदा नामक उन तीनों भाइयों की भार्याएँ थीं, वे स्वभावतः अल्पकषायवाली थीं, और आपस में उन्हें बड़ा प्रेम था, वे तीनों भाई संतुष्ट तथा सुखी थे। एक समय निम्ननामक नौकर ने लक्ष्मी को देखा। वह उसके रूप-लावण्य से मोहित हो गया, वह वारंवार उससे प्रार्थना करने लगा किंतु लक्ष्मी उसे मन से भी नहीं चाहती थी, एक दिन लक्ष्मी पानी लाने के लिए तालाब गई, उसके पीछे-पीछे घोड़े पर सवार निम्न भी वहाँ पहुँच गया, वह उसे पकड़कर घोड़े पर बैठाकर जंगल में चला गया। लक्ष्मी रो रही थी, भीलों के साथ युद्ध हुआ, जिसमें निम्न मारा गया, आभूषणों को लेकर लक्ष्मी वहाँ से चली, किंतु उसे दिशा का ज्ञान नहीं रहा। एक भूखे सिंह ने उसे मारकर खा लिया, मल्हन की पत्नी सरस्वती को मोहिल नामक वणिक बरा-बर प्रार्थना करता था, किंतु सरस्वती ने अपने पति से सारी बातें कह दीं, मल्हन ने राजा से जाकर निवेदन किया, राजा ने क्रोध में आकर उसे देश से निर्वासित किया। तीनों भाई लक्षपूर्व तक नियम से अपनी आयु पूर्ण करके, मरकर, फिर मनुष्यभव में आए, जिनमें जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में, मेखलावती नगरी में भीमरथ नामक राजा की कुसुमावली देवी का पुत्रमंडन हुआ। उसका नाम कनकरथ रक्खा गया। युवावस्था में आने पर विशुद्ध वंश की राजश्री आदि कन्याओं के साथ उसने विवाह किया। राजा ने उसे युवराज पद पर बैठाया। अंतःपुर में वह देवलोक में देव की तरह अनेक भोगों को भोगने लगा। उसी नगरी में सागरदत्त, समुद्रदत्त सहोदरभाई दो सार्थवाह रहते थे, निम्नजीव जो जंगल में भीलों से मारा गया था। अनेक भव ग्रहण करने के बाद सागर-

दत्त नामक सार्थवाह की धन्या नामक भार्या की कुक्षि से उत्पन्न हुआ। उसका नाम सुबंधु पड़ा, मल्हनजीव समुद्रदत्त की भार्या सुदर्शना की कुक्षि से पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम धनपति रक्खा गया। इधर उसी ऐरावत क्षेत्र में विजया नाम की एक नगरी है, उसमें धनभूति नाम का समृद्धिशाली सार्थवाह रहता था। सुंदरी नाम की उसकी भार्या थी, जिसमें उसे सुधर्म नाम का एक पुत्र था, चंदन का जीव भी सुधर्म का सहोदर छोटा भाई धनवाहन नाम का हुआ। उसी ऐरावत क्षेत्र में सुप्रतिष्ठपुर में हरिदत्त नाम का एक धनी-वणिक था। उसकी भार्या विनयवती नाम की थी। और वसुदत्त नाम का पुत्र था। लक्ष्मी जो जंगल में सिंह से मारी गई थी। तिर्यंचयोनियों में परिभ्रमण करके विनयवती की कुक्षि से कन्यारूप में उत्पन्न हुई। उसका नाम सुलोचना रक्खा गया, चंदन की भार्या संपदा भी मरकर सुलोचना की छोटी बहन अनंगवती हुई। इतने में मल्हनभार्य सरस्वती भी उन दोनों की छोटी बहन वसुमती नाम से उत्पन्न हुई। इस प्रकार वे तीनों भवितव्यतावश एक ही माता की कुक्षि से उत्पन्न होकर प्रेम से रहने लगीं। यौवन प्राप्त होने पर अनुरूप वरों के साथ तीनों का विवाह किया गया! जिनमें सुलोचना का विवाह निम्नजीव सागरदत्त पुत्र सुबंधु के साथ, धनभूति के पुत्र धनवाहन के साथ अनंगवती का और समुद्रदत्तपुत्र मल्हनजीव के साथ वसुमती का विवाह हुआ। भवितव्यावश सुलोचना को छोड़कर इन दोनों का विवाह पूर्वभव वल्लभ के साथ ही हुआ। पूर्वभव के अभ्यास से सुबंधु सुलोचना को चाहता था किंतु सुलोचना का वह वल्लभ नहीं था। इसप्रकार दिन बीतने लगे, एक समय कनकरथ घोड़े पर सवार होकर नगर में राजमार्ग से निकल रहा था। नगर की

स्त्रियाँ अपने-अपने महल पर चढ़कर जाते हुए कुमार को देखने लगीं, एक ने कामसमान सुंदर कुमार को देखकर मन में सोचा कि वह स्त्री धन्य है जिसके ये पति हैं, दूसरी तो कुमार को एकटक से देखती देवी जैसी बन गई। एक तो हाथ में मुक्ताहार लिए कुमार का चिंतन करती-करती योगिनी जैसी बन गई। कुमार को देखकर प्रायः सभी स्त्रियाँ कामांध हो गईं, कुछ अपने बालक को चूमने लगीं, कुछ सखियों से लिपटने लगीं, कुछ गीत गाने लगीं, कुछ तो जोर से बोलने लगीं, इस प्रकार कुमार जब सागरदत्त सार्थवाह के महल के पास आया, तो उसकी दृष्टि सुलोचना पर पड़ी और सुलोचना ने उसे देखा। पूर्वभव के अभ्यास से देखते-देखते दोनों में अत्यंत अनुराग उत्पन्न हो गया। सुलोचना के रूप से मोहित होकर कुमार घोड़े से नीचे उतर गया और बालमित्र सुमति से उसने पूछा कि हाथ में दर्पण लिए यह किसकी भार्या है ? उसने कहा, कुमार ! सागरदत्त के पुत्र सुबंधु वणिक की यह भार्या है। सुनते ही घोड़े को फिराकर, घर आकर वह चिंतन करने लगा कि उसके बिना मेरे राज्य से क्या ? अंतःपुर से क्या ? इस महाविभूति से क्या ? यद्यपि यह कार्य लोकविरुद्ध है तथापि उसके बिना मैं जी ही नहीं सकता, अतः दूती भेजकर उसका अभिप्राय जान लेता हूँ, यदि वह भी मुझे चाहती हो तो उसको अपने अंतःपुर में ले आऊँ। उसने एक परिव्राजिका को बुलाकर उससे कहा, भगवति ! आप ऐसा उपाय करें, जिससे वह मेरी प्रिया बन जाए, वह उसके पास गई और बड़ी चतुरता से बातचीत के प्रसंग में उससे कहा कि तुम विरहिणी जैसी क्यों दीखती हो ? पुत्रि ! तुम्हें किससे काम है ? बोलो, मैं अपनी मंत्र-शक्ति से उसे ले आऊँगी; उसने कहा, भगवति ! जिस प्रकार एक

अत्यंत दरिद्र मनुष्य चक्रवर्ती के भोजन को चाहता है, जिस प्रकार एक कुत्तीसिंह के साथ संगम चाहती है, उसी प्रकार मैं कुमार का संगम चाहती हूँ। उसने कहा, पुत्रि ! मेरे मंत्र के सामने यह भी कोई कठिन काम नहीं है, आज ही मैं कुमार के साथ संगम करा दूँगी। उसने कहा, भगवति ! आप इस प्रकार काम करेंगी जिससे लोक में मेरा उपहास न हो जाए। फिर उसे अपनी मुक्तावली देकर बिदा कर दिया। उसने जाकर राजकुमार से सारी बातें कीं। राजकुमार ने अपने आदमी भेजकर सुलोचना को अपने अंतःपुर में मंगवाकर रख लिया। सुलोचना लोकापवाद मर्यादा आदि का उल्लंघन करके अंतःपुर में अनुरागपूर्वक रहने लगी। नगर के लोगों ने जाकर राजा के सामने फरियाद की। राजा ने कुमार को बहुत समझाया। न मानने पर राजा ने नागरिकों से कहा कि कुमार को दंड दिया नहीं जा सकता, अतः आप लोग कुमार के एक अपराध को क्षमा करें, राजा की बात सुनकर नागरिक लोग दुःखी होकर, अपने-अपने घर चले आए। कनकप्रभ राजकुमार राज्य की देखभाल छोड़कर, राजनीति से हटकर सतत उसके साथ अनेक क्रीड़ाओं आसक्त होकर रहने लगा। इस प्रकार उसके अभिनव यौवन में लीन कनकप्रभ के बहुत समय बीते। एक समय अपमानित होने से क्रोध में आकर रानी राज्यश्री ने एक परि-व्राजिका के द्वारा उन्मादकारी चूर्ण मंगवाकर एकांत में सोए हुए उन दोनों के सिर पर छींट दिया। उसके प्रभाव से दोनों के दोनों उन्मत्त होकर गाने लगे, हँसने लगे, असंबद्ध बातें बोलने लगे। राजा भीमरथ ने बहुत मांत्रिक-तांत्रिकों को बुलाया। भूतविकार मानकर वे लोग अपना प्रयोग करने लगे। कुछ लोग मंत्र पढ़कर चपेटा मारने लगें। कोड़ा का प्रहार करने लगे, सरसों छींटने

लगें । कुछ लोग बिल्ली के बच्चे की विष्ठा से मिश्रित गुंगुल का धूप देने लगे किंतु फिर भी उसका उन्माद शांत नहीं हुआ । उन्मत्तावस्था में वे दोनों अपना समय बिताने लगे । एक समय रात को जब पहरेदार सो रहे थे, जंजीर तोड़कर दोनों नगर से निकल पड़े। शीत, बात आदि अनेक कष्टों को सहन करते हुए नगर-से-नगर भीख माँगते हुए भटकने लगे, इस तरह संसार में राजा होकर भी भीख माँगने की स्थिति आती है । उधर विजया-नगरी में धनवाहन अनंगवती में अनुरक्त होकर अनेक भोगों को भोगता था । बड़े भाई सुधर्मसूरि से प्रतिबोध पाकर उनके पास पत्नी के साथ उसने दीक्षा ले ली । धनपति भी बड़े अनुराग से वसुमती के साथ पंचविध मनुष्य-भोग को भोगता था। वह मोहिल वणिक, जिसको राजा ने अपने देश से निकाल दिया था । किसी शुभफल देनेवाले, अनुष्ठान करके वैताढ्य पर्वत की उत्तर श्रेणी में वैजयंतपुर में चित्रांगद की पृथिवी नामक भार्या से सुमंगल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । अनेक विद्याओं को सिद्ध करके गगनमार्ग से घूमते हुए मेखलावती पहुँचा । महल पर नहाती हुई वसुमती को उसने देखा । देखते ही पूर्वभवाभ्यास से वह उसके रूप पर मोहित हो गया। पूर्वभव कर्म दोष से धनपति वणिक को उसने भरतक्षेत्र की विनीता नगरी में ले जाकर छोड़ दिया और स्वयं धनपति के रूप में वसुमती के साथ विषयसुख भोगने लगा । विनीत में वह ऋषभ जिनेश्वर के कुल में जन्मे दण्डवीर्य केवली के पास दीक्षित हो गया। तीस लाख पूर्व तक उग्रतप करके ईशानकल्प में चंद्रार्जुन नामक देव बना । परदार भोगी सुमंगल का उस देव ने विद्याच्छेद किया और क्रोध में आकर उस देव ने उसे ले जाकर मनुष्य पर्वत के

उस पार में छोड़ दिया। उस देव ने वसुमती को प्रतिबोध दिया, और तीव्र संवेग से वसुमती ने सुधर्मसूरि की प्रवर्तिनी के पास दीक्षा लेकर साध्वी बन गई। इस प्रकार अनंगवती और वसुमती दोनों आर्याएँ चंद्रजसा महत्तरा के पास उग्रतप करने लगीं, एक दिन बाहर जाने पर दोनों आर्याओं ने बहुत बालकों के बीच उन्मत्त सुलोचना कनकप्रभ को देखा। वे दोनों नाचते थे, गाते थे, धूल से उनका शरीर धूसर था, देखते ही अनंगवती ने दुःखपूर्वक कहा, आर्ये वसुमति ? यह तो बहन सुलोचना जैसी दीखती है। जीर्ण वस्त्र पहने हुए एक ग्रहगृहीत मनुष्य के पास बैठी है। ठीक से देखकर वसुमती ने कहा, यह वह कनकरथ है तथा यह निश्चय सुलोचना हैं, दोनों ने जाकर मधुरवचन से बातचीत की। किंतु वे दोनों हँसते थे, गाते थे, तब दया से प्रेरित होकर दोनों बहनें उन दोनों को सुधर्मसूरि के पास ले जाकर अतिशयज्ञानी सूरि से उनके उन्माद का कारण पूछा। गुरु ने उन्हें पहले का सारा वृत्तांत बतला दिया। तब आर्याओं ने कहा, गुरुवर ? यदि इनको स्वस्थ करने के कुछ उपाय हो तो आप उसका प्रयोग करें, गुरुने उनका कहना मानकर कुछ ऐसा प्रतियोग बतलाया जिससे बहुत जल्दी ही वे दोनों स्वस्थ हो गए। बाद में वसुमती ने उन दोनों को बतलाया कि गुरु के प्रभाव से ही आप दोनों स्वस्थ हो गए हैं, सुनते ही उन दोनों ने विनयपूर्वक गुरु के चरणों की वंदना की। गुरु ने कहा कि भोगसुख की लालसा से परदार-सेवन करनेवालों की बड़ी हानि होती है। बध बंधन आदि फल को पाते हैं, कुमार ? परदार सेवन से जो पाप किया उसी से आपका राज्यनाश हुआ। तथा पूरलोक में अत्यंत कटु फल भोगना पड़ेगा। गुरु के उपदेश सुनते दी उन्हें चरण-परिणाम उत्पन्न हुआ और दोनों ने गुरु के

पास दीक्षा ले ली। सुलोचना दोनों बहनों के साथ महत्तरा के पास विनयपूर्वक अनेक तप करने लगी। इस प्रकार चंद्रजसा के चरण-मूल में उन तीनों के अनेक पूर्वलक्ष बीत गए। धनवाहन साधु के साथ मुनि कनकरथ के भी करोड़ों वर्ष बीत गए। इसके बाद अनशन करके, कालधर्म प्राप्त कर सुधर्मसूरि द्वितीय कल्प में चंद्रार्जुन विमानाधिपति शशिप्रभ नामक देव बनें। धनवाहन मुनि भी काल-धर्म पाकर वित्द्युप्रभ नामक उनके सामाजिक सुर बनें। अनंगवती उनकी चंद्ररेखा नामक देवी हुई, वसुमती भी चंद्रार्जुन देव की भार्या चंद्रप्रभा नामक देवी हुई।

इधर वह सुबंधु दयिता वियोग में अत्यंत संतप्त होकर गाँव, नगर, जंगल में कहीं भी शांति नहीं प्राप्त कर कनकरथ को मारने का उपाय सोचने लगा। सतत दयिता का स्मरण करके वह ग्रह-ग्रहीत जैसा हो गया। उसने घर छोड़ दिया। उद्यान, जंगल में घूमने लगा। "सुंदरि ? क्यों रुष्ट हो गई ? जल्दी दर्शन नहीं देती हो ? हाँ हाँ, तुम को मैंने देख लिया, प्रसन्न हो, उत्तर दो।" इस प्रकार विलाप करता हुआ वह नगर छोड़कर उन्मत्त होकर अनेक गाँव, नगर में घूमता हुआ किसी तरह एक तापसाश्रम में पहुँच गया। जब उसका चित्त कुछ स्वस्थ हुआ तब कुलपति ने उसे तापस दीक्षा दे दी। उग्र तपस्या करके मरकर वह अम्बरीष नामक अत्यंत अधर्मी देव बन गया। विभंग ज्ञान से पूर्व वैर को जानकर वह अपने वैरी कनकरथ का चिंतन करने लगा।

अनुरक्त मुझे छोड़कर कनकरथ में आसक्त वह दुःशीला ही प्रथम शत्रु है। उन दोनों ने मुझे दुःख दिया था, अतः वे दोनों ही मारने लायक हैं, यह सोचकर वह वहाँ पहुँच गया, जहाँ कनक-रथ मुनि संलेखना से शरीर शोषण कर रहे थे। श्मशान में

प्रतिमा धारण करके जब वे धर्मध्यान में लीन थे, उसी समय पिशाच रूप धारण करके उनके शरीर से माँस नोंचने लगा। भीम अट्टहास करके, उठाकर भूमि पर पटक देता था। चाबुक से उन्हें पीटता था, उनके ऊपर धूली फेंकता था। आग बरसाता था। हाथी बनकर दाँत से उनके शरीर को चीरता था। अधिक क्या कहा जाए, उस पापी ने उन्हें नरक की पीड़ा दी। इतने पर भी साधु अपने धर्मध्यान में निश्चल रहे। वे अपने दुश्चारित की निंदा करने लगे। अनशनपूर्वक काल धर्म पाकर द्वितीय कल्प में चंद्रार्जुन विमान में वित्द्युप्रभ देव बने, अम्बरीष ने प्राणरहित मुनि के शरीर को उठाकर, सुलोचना आर्या के पास फेंक दिया ; प्रातःकाल में जब सुलोचना कायोत्सर्ग लेकर शुभध्यान में लीन साध्वी समूह के मध्य में थी। अम्बरीष ने, अग्नि से संतप्त लाल वर्ण लोहे के पुरुष की विकुर्वणा करके कहा, "पापिन् ? इसका आलिंगन करो।" यह कहकर जलते हुए दंड से उस पुरुष को बाँधकर सुलोचना को मार डाला, शुद्ध भाव से कालधर्म पाकर वह वित्द्युप्रभ देव की स्वयंप्रभा नामक प्रिय देवी बनी। इसलिए हे राजन् ? रागद्वेष के भयंकर परिणाम को देखकर एकांततः रागद्वेष के सम्बन्ध को छोड़ दें, इस प्रकार साधु-साध्वी का वध करके, प्रसन्न चित्त से, वह पापी अम्बरीष देव अपने स्थान को चला गया ?

'सुलोचना-कनकरथ वध' नाम चौदहवाँ परिच्छेद समाप्त।

० ० ०

पन्द्रहवाँ-परिच्छेद

मुनिवध करने के बाद अत्यंत प्रसन्न वह अम्बरीष नारकी जीवों को अत्यंत पीड़ा देने में संतोष पाता हुआ, पाप कर्म बाँधकर, उस स्वर्ग से च्युत होकर, विधवा-व्यभिचारी के गर्भ में उत्पन्न हुआ। उस विधवा ने अनेक प्रकार कटु क्षार औषधपान करके गर्भ को नष्ट किया, रौद्र ध्यान से मरकर, सात पल्योपम आयु बाँधकर, वह अम्बरीष जीव प्रथम नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ तीव्र दुःख का अनुभव करके, आयु पूर्ण होने पर, वहाँ से उद्धृत होकर, इसी भरतक्षेत्र में दुग्धक नामक ब्राह्मण पुत्र हुआ। दारिद्रय-दुःख से संतप्त होकर, तापस दीक्षा लेकर, अज्ञानतप करके-मरकर, धरणेंद्र का एक पल्योपम से कुछ अधिक आयुवाला सामानिक देव बना। उसका नाम कालबाण पड़ा। दिव्य ऋद्धि से वह सम्पन्न था, वहाँ भी वैर का स्मरण करके विभंग ज्ञान से उन दोनों के स्थान को जानना चाहा; किंतु उतना ज्ञान नहीं होने से बार-बार उपयोग में आने पर भी द्वितीय कल्प में रहनेवाले उन दोनों को देख न सका। राजन्? इस प्रकार वह शेष आयु को बिताने लगा।

दिव्य भोगों को भोगते हुए कुछ कम आठ पल्योपम आयु को पूर्ण करके, ईशान कल्पवासी वह विद्युत्प्रभ देव वहाँ से च्युत होकर, कमलावती देवी की कुक्षि में, आपके पुत्र के रूप में उत्पन्न

हुआ। सातवें महीने में दोहृद पूर्ण करने के लिए कमलावती देवी हाथी पर नगर में घूम रही थी, उसी समय उस कालबाण देव ने उपयोग में आकर देवी को देखा। देखते ही वहाँ से आकर हाथी में प्रविष्ट होकर लोगों को खदेड़ते हुए वेग से भागा। राजन् ? वटवृक्ष की शाखा पकड़कर, आपके उतर जाने पर वह हाथी आकाश में उड़ने लगा, जब रानी ने मणि से हाथी को ताड़ित किया तब वह देव "मेरा शत्रु आकाश से गिरकर माता सहित मरेगा, यह सोचकर अपने स्थान को चला गया। देवी भी हाथी के साथ सरोवर के किनारे गिरी, उसके बाद श्रीदत्त सार्थवाह के साथ कुशाग्रपुर को चली। किंतु जंगल में सार्थ लुटने पर, उससे बिछुड़कर, जंगल में देवी ने पुत्र को जन्म दिया। कालबाण देव ने उपयोग से देख लिया और अत्यंत क्रोधित होकर फिर देवी के पास आ गया। "पाप ! आज तुम बहुत दिन के बाद मिले, आज मैं वैर का अंत करूँगा। अब तुम अपने पाप के फल को भोगो।" यह कहकर राजन् ? कमलावती की गोद से उसने आपके पुत्र का अपहरण किया। उस बालक को लेकर वह नीच सोचने लगा कि हाथ से मसलकर इसे मारूँगा, अथवा टुकड़े-टुकड़े करके मारूँगा, अथवा शिलातल पर पटककर मार डालूँगा। फिर उसने सोचा कि इस प्रकार मारने से इसे अधिक दिन पीड़ा नहीं होगी, अतः इसे किसी निर्जन स्थान में जाकर छोड़ दूं, जिससे कि भूख-प्यास से तड़प-तड़पकर मरेगा, यह सोचकर उसने वैताढ्य पर्वत के शिलातल पर, निर्जन स्थान में उसने आपके पुत्र को छोड़कर, अपने स्थान को प्रस्थान किया। राजन् ? यह कथा यहीं छोड़कर दूसरी कथा कहता हूँ -

ईशान कल्प से च्युत होकर विद्युत्प्रभ देव इसी वैताढ्य की दक्षिण श्रेणी में रमणीय रत्नसंचयनगर में, बकुलावती देवी में पवन गति विद्याधर का पुत्र चित्रवेग नामक हुआ। देवी चंद्ररेखा भी च्युत होकर श्रीकुंजरावर्त नगर में अमितगति विद्याधर की प्रिय भार्या चित्रमाला की कनकमाला नाम की अत्यंत प्रियपुत्री हुई। इधर सुलोचना आदि तीनों बहिनों का भाई वसुदत्त संसार में परिभ्रमण करके वैताढ्य पर्वत पर गंगावर्त में विद्याधरराज गधवाहन का मयनावली भार्या के नरवाहण नाम का पुत्र हुआ। उसके लिए कनकमाला का वरण हुआ, किंतु छल से चित्रवेग ने उसके साथ विवाह कर लिया। नरवाहण ने नागिनी विद्या से चित्रवेग को बांधकर, कनकमाला को अपने नगर ले आया। कनकमाला की इच्छा नहीं रहने पर भी वह उसके साथ रमण करना चाहता था, राजन्? कनकमाला उसकी बहन थी? इस प्रकार अज्ञानांध जीव, बहन पुत्री पुत्रवधू माता के साथ भोग भोगना चाहता है, ऐसे संसारवास को धिक्कार है, राजन्? धनदेव ने सारी बातें आप से बतला दी हैं, फिर एक देव ने चित्र-वेग को कनकमाला प्राप्त करा दी, और अनेक विद्याओं देकर उसको विद्याधरेंद्र बना दिया। उसके बाद चित्रवेग वैताढ्य पर कनकमाला के साथ विषयसुख भोगता है, चंद्रार्जुन देव भी च्युत होकर वैताढ्य की उत्तर श्रेणी में चमरचंच नगर में चित्रगति नाम से उत्पन्न हुआ। चंद्रप्रभादेवी भी प्रियंगुमंजरी रूप में उसकी भार्या हुई, वह उसके साथ विषयसुख का उपभोग करता है, चित्रवेग ने विद्याओं के साथ उसे उत्तर श्रेणी दे दी। इस प्रकार विषयसुख का अनुभव करते हुए उन दोनों के बहुत समय बीत गए। एक समय कनकमाला के साथ चित्रवेग अष्टापद की वंदना करने

के लिए चला, वहाँ भरतेश्वर रचित जिनेंद्र-प्रतिमाओं की वंदना करके, चलने पर वैताढ्य के निकुंज में देहकांति से देदीप्यमान गले में बँधी अंगूठी से विभूषित आपके पुत्र को देखकर अंगूठी में मणि को देखकर आश्चर्यचकित होकर उसने कनकमाला से कहा, प्रिए ? यह तो वही मणि है जो मुझे पहले उस देव ने दी थी, अतः अवश्य इसकी माता ने रक्षा के लिए जनमते ही इसके गले में मणि बाँधी होगी। किसी ने अपहरण करके इसे यहाँ छोड़ दिया है, देवि ? आपको पुत्र नहीं था, इसे पुत्र रूप में लीजिए। यह अवश्य कोई देव जीव उत्पन्न हुआ होगा। उस बालक को लेकर राजन् ! दोनों अपने नगर में आए, वर्धापनक करके लोक में प्रकाशित किया कि गुप्तगर्भवाली कनकमाला को पुत्र उत्पन्न हुआ है। उचित समय पर उसका नाम मकरकेतु रक्खा। इस प्रकार राजन् ? आपका पुत्र विद्याधरेंद्र के घर में बढ़ा, इधर उसकी देवी स्वयंप्रभा देवलोक से च्युत होकर यह सुरसुंदरी उत्पन्न हुई। क्रमशः बढ़ने पर युवावस्था में आने पर जो विद्याधर इसे हरकर रत्नद्वीप ले गया, वह सुलोचना भव में इसका पिता हरिदत्त था, राजन् ? संसार की विरूपता देखिए, जहाँ पिता पुत्र के साथ भोग भोगना चाहता है, उसी कालबाण देव ने पिशाच रूप धारण करके, आपके पुत्र की विद्याओं को हरकर समुद्र में फेंक दिया, क्रोध में आकर सुरसुंदरी को भी जब आकाशमार्ग से ले जा रहा था, तब तक उसका च्यवन समय आ गया, वह च्युत हो गया और सुरसुंदरी आकाश से इस उद्यान में गिरी, आपके पुत्र ने धनदेव के प्रवहण को प्राप्त किया, उसके फूटने पर फलक लेकर जब वह समुद्र में तैर रहा था, इतने में प्रियंवदा ने उसे देखा और उसे अपने स्थान ले आई, राजन् ? आपके प्रश्न का उत्तर दे दिया, आपका पुत्र आज ही मिलेगा।

सूरि के वचन सुनकर राजा, देवी सुरसुंदरी आदि सब अत्यंत प्रसन्न हो गए, तब राजा ने कहा, भगवन् ? जब तक मेरा पुत्र नहीं आता है तब तक आपके पास ही मनुजत्व सफल करता हूँ !

इतने में धनदेव ने प्रणाम करके सुप्रतिष्ठ गुरु से पूछा, भगवन् ? उस समय कनकवती के द्वारा भेजे गए सैनिकों के साथ युद्ध में भीलों के मारे जाने पर आपकी क्या स्थिति रही ? और फिर आपने श्रवणत्व कैसे प्राप्त किया ? गुरु ने कहा, सुनो–उस समय युद्ध में बाणों से घायल होकर जब मैं भूमि पर गिर पड़ा, चित्रवेग ने उस प्रदेश को देखा और स्नेह से मुझे वैताढ्य पर्वत पर ले आए। औषध के बल से मैं उसी क्षण स्वस्थ हो गया, पहले के उपकार को स्मरण करते हुए उन्होंने प्रज्ञप्ति नाम की विद्या दी। मैंने वहीं उस विद्या का साधन किया, वहाँ से विद्याधरों के साथ सिद्धार्थपुर आया, और कनकवती सहित सुरथ को देश से निकाल दिया। धनदेव ? मैं सिद्धार्थपुर का राजा बना।

करोड़ों वर्ष तक राज्य का पालन करके, अपने पुत्र जयसेन को राज्य देकर पाँच सौ राजपुत्रों के साथ धनवाहन केवली के चरण मूल में दीक्षा लेकर, साधुक्रियाओं का अभ्यास करके, द्वादशांगी का ज्ञान करने पर, धनवाहन केवली के द्वारा सूरि पद पर अभिषिक्त हुआ। शैलेशीकरण से चार अघाती कर्मों का भी क्षय करके, मेरे गुरु निर्वाण प्राप्त हुए। इस प्रकार सुप्रतिष्ठ सूरि जब अपना वृत्तांत बतला रहे थे इतने में एक विद्याधर आकाश से नीचे उतरा, विनयपूर्वक सूरि को प्रणाम करके उसने कहा, राजन्। मैं आपको बधाई देने के लिए आया हूँ, प्रव्रज्या लेने की इच्छा से चित्रवेग ने सकल विद्या सम्पन्न आपके पुत्र मकरकेतु को अपने पद पर

अभिषिक्त किया है, और वे विद्याधरों के साथ आपके चरणों की वंदना करने के लिए आज ही इस नगर में आ रहे हैं, अतः प्रिय निवेदन करने के लिए मैं आपके पास पहले आ गया हूँ। उसके वचन सुनकर हर्षवश रोमांचित होते हुए राजा ने अपने अंग के सारे आभूषण उसको दे दिए, और पर्याप्त धन भी दिया, देवी कमलावती भी अत्यंत प्रसन्न हुई, सुरसुंदरी के हर्ष का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता था। राजा सूरि को प्रणाम करके सपरिवार नगर में आए, आतें ही कोतवाल को आदेश दिया कि नगर को सजाओ, घास-फूस को हटाकर सभी मार्गों को कस्तुरी, कुँकुम मिश्रितजल से सींचकर सुंदर बनाओ, रास्तेपर फूल को बिछवाओ, बाज़ारों को सुसज्जित कराओ, प्रत्येक भवन में वंदनमाला की योजना करो, द्वार पर निर्मल जल से पूर्ण सुवर्णकलश रखवाओ, भवन के द्वारों पर पताकाओं को फहराओ। सुंदर फूलों के तोरण बनवाओ, गो-रचना, सिद्धार्थक, दूर्वा आदि से युक्त स्वस्तिक की रचना करवाओ। इस प्रकार राजा का आदेश प्राप्त कर कोतवाल नगर की सजावट में लग गया। हर्ष से चंचल नगर के लोग जब इधर से उधर घूम रहे थे, इतने में राजा के अंतःपुर में प्रियंवदा पहुँच गई। देखते ही सुरसुंदरी ने हर्ष से आलिगन करके बैठने के लिए आसन दिया, आसन पर बैठ जाने पर सुरसुंदरी ने पूर्व वृत्तांत पूछा, प्रियंवदा ने कहा कि जब वेताल आपको ऊपर ले गया, मैं मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी। एक क्षण के बाद होश में आने पर शोकसंतप्त होकर हाय ? मेरी बहन कहाँ चली गई ? मेरा भाई अभी तक क्यों नहीं आया ? निश्चय ही उस पिशाच ने कुछ अनिष्ट कर दिया होगा, इस प्रकार सोचती हुई मैंने आकाश-मार्ग से समस्त रत्नद्वीप में आपका अन्वेषण किया, बाद में लवण

समुद्र में भी देखा, आप तो नहीं मिली किंतु बीच समुद्र में तरंगों पर बहते हुए भाई मकरकेतु को देखा, उसको उठाकर जिन-मंदिर में ले गई, पूछा कि आप समुद्र में कैसे गिरे ? भाई ने वेताल दर्शन से लेकर विद्याच्छेद तक की सारी बातें मुझसे बतलाई और फिर पूछा कि सुरसुंदरी कहाँ है ? मैंने कहा कि पिशाच रूप में किसी ने उसका अपहरण किया। सुनते ही बड़े मुद्‌गर से मानो पीटे न गए हों, इस तरह एकाएक मूर्च्छित हो गए। पास के विद्याधरों के द्वारा शीतलजल, पवन आदि के अनेक उपचार करने पर स्वस्थ होकर भी फिर मूर्च्छित हो जाते थे, विद्याधरों ने जाकर पिताजी से उनका समाचार बतलाया, सुनते ही अत्यंत शोकित होकर पिताजी भी वहाँ आ गए, किसी-किसी तरह आश्वासन देकर पिताजी उन्हें वैताढ्य पर ले आए। फिर पिताजी ने बहुत विद्याधर-कुमारों को आदेश दिया कि षट्खण्ड भरतक्षेत्र में, गाँव आकर, नगर में घूम-कर यथाशीघ्र सुरसुंदरी का पता लगाओ। इस प्रकार वे लोग वहाँ से चले और पिताजी के आदेश से अनेक विद्याधर कुमार राजकुमार के साथ विनोद की बातें करने लगे। प्रिया विरह के शोक से कुमार जब किसी-किसी तरह दिन हस्तिशीस नगर में पहुँचा। पारणा के दिन भिक्षा के लिए नगर में घूम रहा था, इतने में दृप्त सांढ से धक्का खाकर, मैं भूमि पर गिर पड़ा। पापी विमल के पुत्र मुझे उस स्थिति में देखकर बार-बार हँसते हुए लाठी लेकर मुझें मारने के लिए मेरे पास पहुँच गए, उन्हें इस प्रकार देखकर मुझें भी क्रोध आया और अज्ञान-दोष से एक खंभा उखाड़कर मैंने उनसे कहा कि सियार क्या, सिंह के बल को माप सकता है ? यह कहकर उन्हें मारकर यम-लोक पहुँचाया। पश्चात्ताप से अनशन किया किंतु लज्जा से गुरु

को बतलाए बिना प्रतिक्रमण किए बिना मरकर धरणेंद्र बना। वही धरणेंद्र मैं आज मुनि की वंदना करने के लिए यहाँ आया हूँ, अतः कुमार! आप चिंता न करें, मेरे द्वारा दी गई प्रज्ञप्ति आदि विद्याएँ बिना साधना के आपको सिद्ध हो जाएँगी, उनके वचन सुनकर 'बड़ी कृपा' यह कहकर कुमार धरणेंद्र के चरण पर गिर पड़ा। विद्याधरोंसहित पिताजी ने उनका सन्मान किया, इसके बाद वे (धरणेंद्र) परिजनों के साथ अपने स्थान को चले गए। विद्याधरसहित चित्रवेग तथा चित्रगति ने कुमार को अपने पद पर अभिषिक्त किया। वैताढय पर्वत पर अब मकरकेतु विद्याधर चक्रवर्ती हो गए। जब विद्याधरों ने अपनी-अपनी कन्याएँ दीं, तब मकरकेतु ने कहा कि जब तक नरवाहन राजपुत्री सुरसुंदरी के साथ विवाह नहीं करूँगा, तब तक अन्य कन्या से विवाह नहीं करूँगा। तब भानुवेग ने कहा कि मैं अभी जाकर कुशाग्रनगराधीश नरवाहन से याचना करके आपके लिए सुरसुंदरी का वरण करता हूँ, तब मकरकेतु ने कहा कि आप जल्दी करें, मैं भी पिताजी की आज्ञा लेने के लिए हस्तिनापुर जाता हूँ, वहाँ जाकर आज तक नहीं देखे गए माता-पिता के चरणों में अपना मस्तक नवाता हूँ। ऐसा कहने पर भानुवेग आकाशमार्ग से चले, इतने में पिताजी ने मकरकेतु राजा से कहा, पुत्र! आज ही विद्याधरों के साथ जाकर शुभमुहूर्त विकाल समय में माता-पिता काल बिता रहे थे। इतने में एक दिन उस नगर में चार ज्ञानवाले द्वादशांगवेत्ता दमघोष नामक एक चारणश्रमण ने सहस्रांबवन में समवसरण किया। उनकी वंदना करने के लिए कुमार के साथ पिताजी निकले, उनकी वंदना करके परिजनसमेत भूमि पर बैठ गए, मुनि ने भी संसार-सागर से पार करने में, पोत के समान धर्म की देशना शुरू

की कि शरीर तथा मानस दुःख को दूर करने के लिए मन, वचन, काय से जीवों को अभयदान देना चाहिए, जो जीव सर्वदा सत्य बोलते हैं वे जन्म-जरा-मरण दुःखदायी संसार को अनायास पार कर जाते हैं, जो अदत्तादान नहीं करते हैं उनको दुर्गति व्याधि-जरा-मरण-शोक, वियोग नहीं प्राप्त होते हैं, जो मन-वचन-काय से अब्रह्मचर्य का त्याग करते हैं वे सकल कर्मों का क्षय करके, शाश्वत स्थान को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार उन्होंने धर्मदेशना समाप्त की। अवसर पाकर कुमार ने मुनि से पूछा कि भगवन् ! उस देव ने मेरी विद्याओं का उच्छेद कैसे कर दिया ? मुनि ने भी उस देव के साथ वैर का कारण बतलाया। सुनते ही कुछ ऊहापोह करने पर कुमार को एकाएक जाति-स्मरण उत्पन्न हो गया, स्मरण करके कुमार ने मुनि की बातों को स्वीकार करके फिर पूछा कि उसने सुरसुंदरी का अपहरण कर उसे कहाँ रख छोड़ा है ? मुनि ने कहा कि स्वर्ग से च्युत उस देव के हाथ से छूटकर, आकाश से वह हस्तिनापुर के कुसुमाकरोद्यान में गिरी और कुमार ? अभी वह आपकी माता कुसुमावली के पास है, कुमार ने कहा कि क्या ये मेरे पिता नहीं हैं ? और कनकमाला क्या मेरी माता नहीं है ? तब मुनि ने देव के द्वारा कमलावती के अपहरण की बात कही, मुनि के वचन को सुनकर चित्रवेग ने कहा कि कुमार ? आपको याद नहीं है कि देवभाव में रहते हुए आपने कहा था कि देव के द्वारा अपहृत होकर चित्रवेग विद्याधर के घर में बढ़ेंगे ? पुत्र ! फिर उन विद्याओं का साधन करो। शोक करने की कोई बात नहीं है, क्यों कि संसारस्थिति से उद्विग्न होकर अब मुझे प्रव्रज्या लेने की इच्छा है, अतः अपने पद पर तुमको स्थापित करता हूँ !

सुरसुंदरी ! इस प्रकार जब पिताजी बोल रहे थे, इतने में दमघोष मुनि की वंदना करने के लिए धरणेंद्र वहाँ आए। मकरकेतु को बड़ी देर तक देखकर उन्होंने कहा, कुमार ! आप मुझे पहिचानते हैं ? पूर्वभव में मैं आपका पिता भीमरथ नामक राजा था। आप मेरी भार्या कुसुमावली की कुक्षि से उत्पन्न कनकरथ नामक पुत्र थे, उन्माद हो जाने से भार्यासहित आपके निकल जाने पर बहुत अन्वेषण करने पर भी आपको नहीं पाने पर, आपके छोटे भाई वज्ररथ को अपने पद पर स्थापित करके, वैराग्य से भावित होकर गुरु के पास प्रव्रज्या लेकर मैं सौधर्म में सात पल्योपम आयुवाला देव बना। वहाँ से च्युत होकर भरतक्षेत्र में चंपापुरी में दधिवाहन राजा की भार्या कुसुमश्री के गर्भ में पुत्ररूप से उत्पन्न होकर उचित समय में उत्पन्न हुआ, मेरा नाम प्रभाकर पड़ा। इतने में राज्य के लोभी विमलमंत्री ने मदिरा में आसक्त मेरे पिताजी को मार डाला और राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। जब मैं तीन महीने का था, भय से मुझे लेकर मेरी माता विजयपुर में अपने भाई शंख राजा के पास चली गई। जब मैं बड़ा हुआ तो शंख के साथ वहाँ जाकर युद्ध में विमलमंत्री को मारकर मैं चंपानगरी का राजा बना। विमल के पुत्र भी भागकर हस्तिशीस नामक नगर में जाकर जितशत्रु के शरणागत बने, बलगर्वित होकर मैं हाथियों के साथ खेलता था, उससे सभी देशों में मेरी ऐसी प्रसिद्धि हो गई कि समस्त भरतक्षेत्र में प्रभाकर के समान महाबल कोई नहीं है क्यों कि वह बिगड़े हुए मत्त हाथी को एक हाथ से पकड़ लेता है। बहुत दिनों तक राज्य करने के बाद अपने पुत्र को राजा बनाकर, सुगुरु के पास दीक्षा लेकर, मैंने अभिग्रह लिया कि यावज्जीवन में मासोपवास करूँगा। एक समय विहार

करते हुए दर्शन करें, वे जब आने के लिए सामग्री का आयोजन कर रहे थे, इतने में पिताजी से पूछकर सुरसुंदरि ! मैं प्रिय निवेदन करने के लिए आपके पास आ गई हूँ, इस प्रकार प्रियंवदा के वचन सुनकर दास-दासियों ने जाकर राजा से कहा, सुनते ही प्रसन्न होकर राजा पुत्र की अगवानी के लिए सुंदर बाजाओंवाले, गीत गानेवाले-नाचनेवाले लोगों के साथ चतुरंग सेना को लेकर, हाथी पर चढ़कर नगर से निकले। इतने में अनेक प्रकार के वाहनों पर आरूढ़ ध्वजछत्र आदि से विभूषित विद्याधर सैन्य आकाश में दिखने लगा, उसके बीच में मणिमय स्तंभोंवाले विचित्र-रूप विमान पर चढ़े हुए मकरकेतु ने आगे आते हुए राजा को देखकर, आकाश से उतरकर, पिताजी के चरणों पर अपना मस्तक नमाया। अमरकेतु राजा भी स्नेह से पुत्र का आलिंगन करके आँखों से आनंदाश्रु को बरसाते हुए पुत्र के मस्तक को चूमने लगे। बाद में यथायोग्य विद्याधरों को सत्कार करके वंदियों से स्तुति किए जाते हुए राजा नगर में आए। अनेक मांगलिक उपचार के साथ राजा ने अपने मंदिर में पुत्र का प्रवेश कराया। अन्य विद्याधरों को भी योग्य आवासस्थान दिए। कुछ विद्याधरों के साथ पुत्र को लेकर राजा अंतःपुर में आए। पुत्र दर्शन के लिए उत्कंठित माता कमलावती के चरण में मकरकेतु ने अपना मस्तक नमाया। माता ने कोमल हाथों से पुत्र को पकड़कर अपनी गोद में बैठाया, आलिंगन करके मस्तक को चूमा। आनंदाश्रु बहाती हुई कमलावती ने कहा, कि पुत्र ! मेरा हृदय अवश्य वज्र जैसा कठोर है, जिससे कि तेरे विरह में भी यह विदीर्ण नहीं हुआ। मकरकेतु ने कहा, माताजी ! दैवाधीन होने से प्राणियों को कष्ट सहन करने पड़ते ही हैं, इसके बाद बड़े-बड़े मौक्तिकों से

रचित चौक में मणियों से सुशोभित सिंहासन पर पुत्र को बैठाकर पुत्र-दर्शनजनित हर्ष से रोमांचित माता ने मांगलिक उपचार किए। कमलावती के चित्त में अवर्णनीय हर्ष था। इधर कुशाग्र-पुर जाकर भानुवेग विद्याधर ने नरवाहन राजा से सारे वृत्तांत कह दिए। नरवाहन ने कहा कि उनके लिए तो अभी तक सुर-सुंदरी को कुमारी रक्खा था। दूसरे राजा को नहीं दिया, क्यों कि उसके जन्मसमय दिव्यज्ञानियों ने कहा था कि यह कन्या विद्याधर चक्रवर्ती की भार्या होगी। शत्रुंजय राजा को मारकर जिसने मुझे जीवनदान दिया, उसको सुरसुंदरी देने के विषय में पूछना ही क्या है? ज्योतिषी को बुलाकर सुंदर विवाहलग्न निकालने के लिए कहने पर ज्योतिषी ने कहा, राजन्? आज से तीसरे दिन रात के चौथे पहर में सर्वसुंदर विवाहलग्न है। राजा ने कहा कि यह दिन अत्यंत नज़दीक है। विवाह की सामग्रियाँ कैसे तैयार की जाएँगी। अतः भानुवेग! आप ही कुछ उपाय बतलाइए। तब उसने कहा कि राजन्! आप हस्तिनापुर चले जाइए, वहाँ पहुँचने पर सब ठीक हो जाएगा, इसके बाद भानुवेग के द्वारा कल्पित दिव्य विमान पर चढ़कर विवाहोचित सामग्री लेकर नरवाहन राजा हस्तिनापुर आए। इधर समाचार पाकर चित्रवेग चित्रगति भी विद्याधरों के साथ वहाँ पहुँच गए। अमर-केतु राजा ने उनका सत्कार किया और अपने कुल की मर्यादा के अनुसार बड़े समारोह के साथ लग्नदिवस में सुरसुंदरी के साथ मकरकेतु का विवाह कराया। राजा ने विद्याधरों का उचित सत्कार किया। समस्त नगर के लोगों को प्रेम से भोजन कराया। सभी जिन-मंदिरों में महोत्सव करवाया। वस्त्र आदि से जिन-प्रतिमाओं की पूजा करवाई। सुंदर वस्त्र, पात्र, कंबल आसन से

श्रमणसंघ का सत्कार किया। सामंतों को घोड़ा, हाथी, रथ, गाँव, नगर आदि देकर उचित सत्कार किया।

इसके बाद राजा दूसरे दिन परिजन के साथ, बड़ी समृद्धि के साथ, विद्याधरों को साथ लेकर सूरि की वंदना करने के लिए निकले। सूरि तथा अन्य तपस्वियों की वन्दना करके बैठे। गुरु ने जिन-देशित धर्म का उपदेश दिया। इसके बाद सूरि की वंदना करके कमलावती ने विनयपूर्वक पूछा कि भगवन्! मैंने अन्य जन्म में कौनसा कर्म किया था, जिससे मुझे पुत्र-विरह का असह्य दुःख प्राप्त हुआ। केवली ने कहा, देवानुप्रिये! सुनो–

मैंने अमरकंटक नगरी के जिस अम्मड़ वणिक की बात की थी। जो मंडन आदि का पिता था और अक्षुता जिसकी भार्या थी। वह अनेक भवभ्रमण करने के बाद इसी भरतक्षेत्र में मरुदेश में 'हरिस डक' गाँव में अर्जुन नाम का मेहर गाँव का मालिक होकर उत्पन्न हुआ। अक्षुता अर्जुन की बंधुश्री नाम की भार्या रूप में उत्पन्न हुआ। दोनों में अत्यंत प्रेम था। खेती में अपना समय बिताते थे। दोनों स्वभाव से ही दयाशील तथा अल्पकषायवाले थे। वर्षाकाल आने पर दोनों जब खेती के काम में लगे थे। उन्हींके खेत के पास गर्भवती हरिणी के साथ एक हरिण रहता था, एक दिन हरिणीसहित वह हरिण अर्जुन के खेत में आ गया, अर्जुन उसको निकालने के लिए चला। अर्जुन के भय से वह हरिणी गिर पड़ी, क्योंकि उसका प्रसव समय आ गया था। हरिण तो भाग गया किंतु प्रिया-वियोग से दुःखी होकर बार-बार अर्जुन की ओर देखता था। अर्जुन वे हरिणी को अपने घर ले आया। शीतल जल छींटने पर उसकी मूर्च्छा टूट गई और उसने प्रसव

किया। मृग शावक अत्यंत सुंदर था। उसे देखकर बंधुश्री ने अर्जुन से कहा कि खिलौना रूप में मैं इसे रक्खूँगी, यह कहकर कोमल रस्सी से मृगशावक को उसने बाँध रक्खा। हरिणी भी डर से भाग गई। और पुत्रस्नेह से बार-बार हरिण के साथ आती थी। किंतु डर के मारे वहाँ टिक नहीं पाती थी। वह बेचारी हरिण अपने बच्चे के वियोग में घास नहीं खाती थी, पानी नहीं पीती थी। दूसरे दिन भी हरिणी के उस प्रकार दुःखी देखकर बंधुश्री को दया आई और उसने उस हरिणशावक को छोड़ दिया। बंधनमुक्त होकर वह मृगशावक वहाँ से भागकर अपने माता-पिता के पास गया, वह हरिणी खुश हो गई। दयायुक्त अर्जुन मरकर अमरकेतु राजा बना और बंधुश्री मरकर कमलावती रूप में उत्पन्न हुई। पूर्वभवाभ्यास से आप दोनों में परस्पर इतना प्रेम रहा। हरिण को एक क्षण के लिए जो हरिणी से वियुक्त रक्खा उस कर्म के उदय से राजा के साथ आपको वियोग प्राप्त हुआ। उस हरिणी को उसके बच्चे के साथ जो आठ पहर का वियोग कराया। उसी कर्म के उदय में आने से आपको अपने पुत्र के साथ आठ लाख बरस का दुःसह वियोग रहा। एक क्षण में संचित कर्म-जीव को बहुत दिनों तक शुभ-अशुभ फल देता है, अतः कर्म-बंध के कारण को सर्वथा त्याग करना चाहिए। इस प्रकार गुरु-वचन सुनकर सारी सभा संसारभय से उद्विग्न होकर दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गई। राजा-रानी को जाति-स्मरण उत्पन्न होने पर चारित्र्यावरण कर्मक्षय हो जाने से चरण परिणाम उत्पन्न हो गया। उसके बाद अमरकेतु राजा ने अपने पद पर पुत्र को अभिषिक्त करके तत्कालोचित कार्यों को करके पुत्र को शिक्षा देकर परिजनों से मिलकर, रानी कमलावती के साथ गुरु के पास दीक्षा

ले ली । अपने पुत्र श्रीदेव के ऊपर कुटुंब का भार सौंपकर राजा के साथ ही भार्यासहित धनदेव ने भी दीक्षा ले ली । चित्रगति आदि विद्याधरों के साथ चित्रवेग विद्याधरेंद्र ने भी सुरि के पास दीक्षा ग्रहण की । प्रियंगुमंजरी आदि अनेक विद्याधरियों के साथ कनकमाला भी दीक्षिता हुईं । नरवाहन राजा ने भी मकरकेतु को अपना राज्य देकर सुप्रतिष्ठ केवली के पास दीक्षा ले ली ।

इस प्रकार राजा अमरकेतु के साथ दस हज़ार विद्याधर राजाओं ने दीक्षा ली । कमलावती आदि बीस हज़ार स्त्रियों ने दीक्षा ली । सुप्रतिष्ठ केवली ने तीस हज़ार दीक्षितों को मुनिवेश दिया !

इसके बाद मकरकेतु ने कहा, भगवन ! मैं अभी चारित्र्य-ग्रहण करने में असमर्थ हूँ, अतः मुझे श्रावक-धर्म का उपदेश दीजिए । केवली ने कहा कि जो निरपराध स्थूल जीवों को दंड नहीं देता है, वह भी मोक्ष प्राप्त करता है । जो मन-वचन-काय से स्थूल असत्य भाषण नहीं करता वह देवमनुष्य भव के सुखों को भोगकर मोक्ष में जाता है । जो स्थूल अदत्तादान नहीं करता । जो स्वदार-संतोष तथा परकलत्र त्याग करता है वह भी अनेक सुखों को भोगकर मोक्ष प्राप्त करता है । इसी प्रकार श्रावक-धर्म को सुनकर सुरसुन्दरी, मकरकेतु आदि ने गुरु के पास सम्यकत्वरत्न मूल श्रावक धर्म को स्वीकार किया ।

इसके बाद चित्रवेग आदि मुनि सूरि के पास ग्रहण, आसेवन-रूप शिक्षा का अभ्यास करने लगे । कमलावती आदि आर्याओं ने सुव्रता आदि गणिनी के पास साधुक्रिया तथा अंगों का अभ्यास किया । सब-के-सब छठ, अट्ठम, दशम आदि तप-विनय, वैयावच

आदि में तत्पर हो गए। चौदह पूर्वों का अध्ययन करके चित्रवेग किंचित न्यून पूर्वधर बने। इसके बाद सुप्रतिष्ठ सूरि ने चित्रवेग को सूरिपद पर स्थापित करके अनशन आदि के द्वारा शरीर छोड़कर निर्वाण प्राप्त किया। उसके बाद चित्रवेग सूरि भविकों को प्रतिबोध देने के लिए ग्राम आकर नगर में विहार करने लगे। सुव्रतागणिनी के स्वर्ग जाने पर कमलावती महत्तरा पद पर आई। सूरीश चित्रवेग श्रमणों के साथ देशना देकर जिन-धर्म का प्रचार करने लगे।

"विद्याधरेंद्र चारित्र्य स्वीकार" नामक

पंद्रहवाँ परिच्छेद समाप्त।

० ० ०

सोलहवाँ-परिच्छेद

राजा मकरकेतु ने भी विद्याधरों से दी गई कन्याओं के साथ विवाह् करके विद्याधरों को यथोचित गाँव, नगर आदि देकर समस्त भरतार्द्ध के राजाओं को अपने वश में करके, सभी देशों को उपद्रव, चोरादिभय से मुक्त करके आर्य देश के गाँवों, आकरों-नगरों को ऊँचे धवल जिन-मंदिरों से विभूषित करके, लोगों को कर (टैक्स) से मुक्त करके श्वापद (हिंसक) जीवों को शांत करके, जिन-शासन-श्रमण संघ के विरोधियों को निर्मूल करके, देशों में मुनिजनों के अप्रतिहत विहार की सुविधा करके, सामंतों को साधार्मिक वत्सल बनाकर जगह्-जगह् दानशाला, पानीयशाला आदि की व्यवस्था करके प्रजापालन को अपना मुख्य लक्ष्य बनाया। ये दुष्टों को, धृष्टों को, लुटेरों को, अन्यायियों को दंड देते हुए याचकों को मनवांछित वस्तु देकर प्रसन्न करते हुए शत्रुमंडल को अपने वश में करते हुए, दुर्गम मार्ग को सुगम बनाते हुए, सुरसुन्दरी आदि रानियों के साथ अपूर्व विषयसुख का अनुभव करते हुए, देवलोक में इंद्र की तरह ह्स्तिनापुर में आनंद से रह्ने लगे! वे कभी दशों-दिशाओं में फैलती किरणोंवाले, निर्मल शिलाओंवाले जिन-मंदिरों को बनवाते थे और बनानेवाले वैज्ञानिकों को उत्तम पुरस्कार देते थे, कभी तो शास्त्रविहित प्रकार से सकल लोक-कल्याणकारी जिन-बिंबों को बनवाते थे, कभी जिन-मंदिरों की

प्रतिष्ठा करवाते थे, कभी कर्पूर-गोशीर्ष-हरिचंदन आदि से जिनेंद्र-प्रतिमाओं का विलेपन करते थे, कभी अत्यंत सुगंधित पंचवर्ण फूलों से अनेक उपचारों से जिन-पूजा करते थे, कभी तो बहुमूल्य सुन्दर वस्त्रों से जिन-मंदिरों में चंदवा बनवाते थे, कभी यत्नपूर्वक नगर में की गई रथयात्रा को देखते थे और उसमें आनेवाले दीनों-अनाथों को अभिलषित वस्तु देकर प्रसन्न करते थे, कभी अंतःपुर में अनेक लीला विलासपूर्वक भार्याओं के साथ सुरत-सुख का सेवन करते थे, कभी सुन्दर गीत सुनते थे, कभी उत्तम नाटक देखते थे, इस प्रकार अपने पूर्वजों के आचरणों के अनुरूप लोक आगम से अविरुद्ध आचरण करते थे, जिन-शासन की प्रभावना में लीन मकरकेतु राजा को सुर-सुन्दरी के साथ सुखोपभोग करते हुए लाखों पूर्व बीत गए ।

उसके बाद एक समय रात में राजा के साथ जब सुरसुंदरी सोई थी, रात बीतने पर प्रातःकाल में उसने स्वप्न देखा कि एक कालानाग राजा सहित उसको भी काटकर उसके पेट में प्रविष्ट हो गया है, देखते ही उसकी नींद खुल गई, डरकर उसने सोचा कि यह स्वप्न अमांगलिक है, अतः राजा से कहना ठीक नहीं होगा । इतने में प्राभातिक मांगलिक बाजाओं के बजने से राजा की नींद खुली और उन्होंने शरीर शौच करके युगादि जिन-प्रतिमा से मण्डित जिन-मंदिर में जाकर जिन-बिम्ब की पूजा करके चैत्यवंदन करके, उचित प्रत्याख्यान करके वार विलासिनी से भरे सभा-मंडप में आए, उनके द्वारा अंगलेपन किए जाने पर राजा वहाँ से उठ गए, विद्या द्वारा अनेक विमानों को मंगवाकर सुरसुंदरी आदि भार्याओं सहित अनेक विद्याधरों के साथ उन विमानों पर चढ़कर, हिमालय के शिखर पर नंदनवन

के समान अनेक गोशीर्ष वृक्षों से सुशोभित उद्यान में क्रीड़ा निमित्त उतर गए, वहाँ मणिमय शिलातल पर केले के वन में अंतः-पुर की स्त्रियों के साथ अनेक गीत, नृत्य, नाटक आदि में लगे हुए रहने से आनंदपूर्वक समय व्यतीत कर रहे थे। इतने में रसोइए ने आकर भोजन करने के लिए प्रार्थना की, जिन-बिम्ब की पूजा करके, चैत्यवंदन करके, विद्याधरों के साथ उत्तम भोजन करने के बाद सुरसुंदरी के साथ, कदलीवन में राजा प्रविष्ट हुए। सुंदर शय्या पर सोए हुए राजा ने सुरसुंदरी के साथ विषयभोग करने के बाद सुरसुंदरी ने राजा से कहा कि अब कुछ देर सरस प्रश्नोत्तर से आनंद प्राप्त करें। उसके बाद दोनों जब प्रश्नोत्तर में आनंद का अनुभव कर रहे थे, इतने में एक कालानाग वहाँ आया। वह पूर्वभव का वैरी था, उस दुष्ट ने रोष में आकर दोनों की पीठ में काट लिया। रानी 'सर्प-सर्प' कहकर चिल्लाई, इतने में हाथ में तलवार लिए रक्षकगण वहाँ पहुँच गए, अपराधी साँप भी भयभीत होकर ज्यों ही भागने लगा, त्यों ही उन्होंनें उसको मारकर खंड-खंड कर दिया। एकाएक परिजनों का कोलाहल हुआ, राजा-रानी दोनों विषविकार से व्यस्त हो गए, बड़े-बड़े विषवैद्य बुलाए गए, मंत्रजाप होने लगे, अनेक औषधियाँ मंगाई गई, मंत्र पढ़कर जल छींटा जाने लगा, इस प्रकार विषवैद्य तथा विद्याधर जब व्याकुल हो गए। धृतसिक्त अग्नि की तरह विषविकार जब बढ़ने लगा तब राजा ने अस्पष्ट शब्द में दिव्यमणि लाने के लिए कहा, किंतु वे लोग कुछ समझ नहीं पाए, इतने में राजा की बहन प्रियंवदा समझ गई और उसने एक विद्याधर से कहा, बाहुवेग ! तुम जल्दी कुंजरावर्त जाकर भानुवेग पुत्र चंद्रवेग से मेरा नाम कहकर दिव्यमणि ले आओ, उससे कहना कि विद्या प्रसाधन के समय

रक्षा के लिए मुझसे उसने दिव्यमणि ली थी, बाहुवेग शीघ्र कुंजरावर्त गया और चंद्रवेग विद्याधर के साथ मणि लेकर वहाँ पहुँच गया। तब मणिजल से सींचते ही दोनों का विषविकार नष्ट हो गया। सभी विद्याधर प्रसन्न हो गए और सभी प्रियंवदा की प्रशंसा करने लगे। राजा भी भवस्वरूप का चिंतन करते हुए अपने नगर आए।

वहाँ से अपने नगर आने पर राजा चिंतन करने लगे कि अनेक विपत्तियोंवाले जीवों को जिनेंद्र-धर्म छोड़कर दूसरा कोई बचानेवाला नहीं। जीव तो सर्प-विष कॉलरा-हैजा का आदि से एक मुहूर्त में दूसरे शरीर को प्राप्त कर जाता है। इस प्रकार अत्यंत चंचल जीवन होने पर भी जीव विषय मोहित होकर सतत प्रमाद करते ही रहते हैं, इसके बाद राजा की विपत्ति नष्ट हो गई, यह जानकर विद्याधरों ने हस्तिनापुर आकर राजा को बधाई दी। सुरसुंदरी उसी दिन गर्भवती हुई और राजा के ऊपर से एकाएक उसका स्नेह नष्ट हो गया। ज्यों-ज्यों गर्भ बढ़ने लगा, उसके प्रभाव से रानी का हृदय भी त्यों-त्यों अत्यंत कठोर होने लगा, यहाँ तक कि वह खुद अपने हाथ से राजा को मार डालने के लिए मन में सोचने लगी। राजा के कुछ पूछने पर अत्यंत निष्ठुर वचन बोलने लगी, भोग की इच्छा ही उसने छोड़ दी, राजा को देखते ही होंठ काटने, भौंह चढ़ाने लगी। दूसरी ओर अपना मुख करके रहने लगी। उसके इस आचरण से दुःखी होकर एक दिन प्रियंवदा ने उससे क्रोध का कारण पूछा। उसने कहा कि पापगर्भ के प्रभाव से राजा के ऊपर मुझे बहुत क्रोध आता रहता है, इसलिए आप जाकर राजा से कहें कि मेरे इस व्यवहार को देखकर मेरे ऊपर वे क्रोध नहीं करें। दूसरी बात यह है कि आप उनसे कह दीजिए

कि जब तक यह पापगर्भ का प्रसव नहीं होता है, तब तक मुझ पापिन का मुख भी नहीं देखें, प्रियंवदा ने जाकर राजा से सारी बातें कह दीं। राजा सुनते ही आश्चर्यचकित हो गए और उन्होंने कहा कि अरे? जो देवी एक क्षण के लिए भी मेरे विरह को सहन नहीं कर सकती थी, वही देवी गर्भ के प्रभाव से मुझे देखना नहीं चाहती है, निश्चय पूर्वविरोधी सुबंधु जीव भवितव्यतावश रानी के गर्भ में आ गया है, राजा इस प्रकार चिंतन कर प्रिया-विरह से दुःखी होकर समय व्यतीत करने लगे। इतने में अशुभ ध्यान-वाली रानी को देखकर राजा के मित्र की तरह रानी के स्तन-श्याममुख हो गए। राजा के विरह में अत्यंत उत्कण्ठित की तरह रानी का कपोलस्थल अत्यंत सफेद हो गया। सब ने गुरुता प्राप्त की, अब मेरा अवसर है, यह सोचकर रानी का उदर बढ़ गया। उदर की गुरुता देखकर कहीं मैं पराजित न हो जाऊँ, यह सोचकर नितम्ब और अधिक बढ़ गया। क्रमशः समय पूर्ण होने पर चंद्रमा जब मूल नक्षत्र में था, पापग्रह से दृष्टलग्न में भद्रा तिथि में सुरसुंदरी ने अत्यंत कष्ट से बालक को जन्म दिया। राजा ने प्रसन्न होकर ज्योतिषी को बुलवाया। और पूछा कि इस समय में उत्पन्न पुत्र का गुणदोष बतलाइए। सिर हिलाते हुए उसने कहा, नरनाथ? ऐसे समय में उत्पन्न बालक पिता के लिए हानिकारक है, पिता के घर में बढ़ने पर कुल और राजलक्ष्मी का नाश करेगा। देव! आप क्रोध नहीं करेंगे, आपने जब तक उसको नहीं देखा है तब तक ही कुशल हैं, जब आप देखेंगे तब आपके प्राणों का भी संशय रहेगा। यह कहकर ज्योतिषी के वहाँ से चले जाने पर संतप्त होकर राजा ने प्रियंवदा को बुलवाया और कहा कि प्रथमपुत्र जन्मदिन में सबको हर्ष होता है,

दैववश मेरे लिए तो कुछ दूसरा ही हो गया। अतः भद्रे ? धाइयों सहित बालक को लेकर तुम अपने ससुराल ले जाओ, यह वहीं बढ़ेगा। 'अच्छा' कहकर उस बालक को लेकर अपने ससुराल सुरनंदन जाकर उसने ज्वलनप्रभ विद्याधर राज की प्रिय भार्या चित्रलेखा के पुत्र अपने पति जलकांत से सारी बातें बतलाईं, उसने बड़े आदरभाव से उसकी बात को स्वीकार कर, जन्मोत्सव करके शुभदिन में उसका नाम मदनवेग रक्खा। क्रमशः बढ़ते हुए उसने जब यौवन प्राप्त किया, तब वह अत्यंत अविनीत, दुःशील अकार्यनिरत तथा कृतघ्न हो गया। कंचनदेवी के गर्भ से उत्पन्न जलकान्त विद्याधर पुत्र जलवेग से उसकी बड़ी मित्रता हो गई, दोनों साथ ही खेलने में लगे हुए रहते थे।

कुछ दिन के बाद सुरसुन्दरी को सिंह स्वप्न से सूचित शुभ-तिथि नक्षत्र योग में एक दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ। वह कामदेव समान सुन्दर, शूर, त्यागी प्रियंवद कार्यदक्ष तथा अत्यंत विनीत था, उसका नाम अनंगकेतु रक्खा गया।

युवावस्था में आने पर राजा ने उसे युवराज बना दिया। अनेक विद्याओं की साधना करके वह इच्छापूर्वक विद्याधर नगरों में विचरने लगा।

मधुमास प्राप्त होने पर अंतःपुर के साथ राजा अष्टान्हिक महोत्सव के लिए वैताढ्य शिखर पर गए। बड़े आडम्बर के साथ वैताढ्यवासी विद्याधर उपस्थित हुए। महोत्सव चल ही रहा था इतने में गंगावर्त से अनेक विद्याधरों के साथ अत्यंत सुंदरी अनंग-वती नाम की कन्या वहाँ आई। उसको देखते ही युवराज अनंगकेतु मोहित हो गया, उसने अपने मित्र वसंत से पूछा कि यह किसकी कन्या है ? इसका क्या नाम है ? वसंत ने कहा कि

गंगावर्त में श्रीगंधवाहन नामक एक राजा थे। मयणावली उनकी भार्या थी। उस भार्या में राजा के नरवाहन, मकरकेतु और मेघनाद नामक तीन पुत्र हुए। पिता के साथ नरवाहन के प्रव्रजित होने पर मकरकेतु राजा हुआ। विद्या साधन करते समय आपके पिता ने वंशजाल को काटते हुए उसका सिर काट डाला, बाद में आपके पिता ने मेघनाद को राजा बना दिया। और बहुत गाँव, नगर दिए। चित्रगति विद्याधर की कन्या पद्मोदरा के साथ उसका विवाह हुआ। उसीकी कन्या यह मदनवेगा नाम की है। जलकांत-पुत्र जलवेग के साथ विवाह की बात चल रही थी, क्या हुआ यह मैं नहीं जानता हूँ, उसकी बात सुनकर युवराज ने कहा, वसंत ? मैं इस कन्या के बिना जी नहीं सकता, इसलिए यदि मेरे जीवन से आपको प्रयोजन हों। मैं आपका प्रिय होऊँ तो आप मेरे पिताजी से जाकर कहें, जिससे मुझे यह शीघ्र ही प्राप्त हो जाए। वसंत ने जाकर राजा से युवराज के निश्चय को बतलाया, राजा ने मेघनाद से कन्या की याचना की, प्रसन्न होकर उसने स्वीकार कर लिया, गंगावर्त में बड़े आडम्बर के साथ मदनवेगा के साथ युवराज का विवाह सम्पन्न हुआ। उसको लेकर अनंगकेतु अपने नगर आ गया।

मदनवेगा के विवाह की बात सुनकर जलवेग अत्यंत दुःखी हुआ। उसने मदनवेगा के विरह में व्याकुल होकर अनंगकेतु को मारने का उपाय सोचा। एक दिन मदनवेग से कहा, मित्र ? आप यह नहीं जानते ? कि आप मकरकेतु राजा के पुत्र हैं, सुरसुंदरी आपकी माता है, आपके पिता ने आपके जन्मदिन ही यहाँ भेज-कर आपका बड़ा अपमान किया है। आपके छोटे भाई को युवराज बनाया है, आपको तो कभी देखने की इच्छा भी नहीं करते। आप तो उस दिशा में जा भी नहीं सकते, जिधर आपके पिता रहते हैं,

इस तरह पिता के द्वारा अपमानित होकर आपका जीना बेकार है, इस प्रकार के वचन रूप घृत से उसकी क्रोधाग्नि को बढाकर उसे इस स्थिति में ले आया कि उसने क्रोध में आकर कहा कि आप मुझे मेरे वैरी पिता को दिखलाइए, जिससे कि शीघ्र मैं अपने अपमान का फल उसे दे दूं, उसने कहा कि अंगरक्षक हाथ में नंगी तलवार लिए आपके पिता की रक्षा करते हैं, अत: आप रूप-परिवर्तिनी विद्या ग्रहण करें जो साधक के सभी कामों को सिद्ध करती है। यह कहकर उसने उसे रूप-परिवर्तिनी विद्या दे दी। जंगल में जाकर उसने विद्या सिद्ध कर ली। हस्तिनापुर आकर सुरसुंदरी की दासी ललिता का अपहरण करके दूर देश में कहीं रखकर उसके वेष में राजा को मारने की इच्छा से अंत:पुर में रहने लगा। राजा को जब से साँप ने काट लिया था, तब से सुरतादि छोड़कर अपने हाथ में दिव्यमणिवाली अंगूठी को बराबर रखतें हैं। एक दिन भोजन करके राजा सुरसुन्दरी के घर सोने के लिए गए। पापिन दासी ने देख लिया। अंगरक्षकों को बाहर ही छोड़कर राजा जब घर के अंदर जाकर कुछ देर परिहास की बातें करके सुरतारम्भ के समय देवी ने अंगूठी को आभरणस्थान में रख दिया। ज्यों ही राजा ने सुरत प्रारम्भ किया त्यों ही हाथ में तलवार लेकर दासीवेश में वह दुष्ट वहाँ पहुँच गया। माता के साथ सुरत में आसक्त पिता को मारने के लिए पुत्र तैयार होता है, अत: संसारवास को सर्वथा धिक्कार है, अपना पुत्र अपनी माता के साथ अपने पिता को संभोग करते समय मारता है, यह पुत्र का अत्यंत बड़ा दोष है, राग से द्वेष उत्पन्न होता है, द्वेष से वैर उत्पन्न होता है, वैर से जीव प्राणिघात करता है, और प्राणिघात से गुरुकर्म को बाँधता है, और गुरुकर्मी प्राणी तिर्यंच और नरक के दु:खों को

भोगता है, और वह बराबर नारकगति से तिर्यंचगति ओर तिर्यंच गति से नारकगति में भ्रमण करता है, अतः प्राणियों को चाहिए कि राग-द्वेष छोड़कर अनंतभव संसार से पार हो जाए, म्यान से निकालकर अपने ऊपर उठाई गई तलवार को देखकर राजा अत्यंत विस्मित हो गए और उन्होंने सोचा कि यह दुष्टा ललिता ने मुझे मारने के लिए घर में प्रवेश किया है। यह सोचकर राजा ने भयंकर हुंकार करते हुए स्तम्भिनी विद्या से उसे चित्र के समान निश्चेष्ट कर दिया, रानी ने कहा, ललिते ? क्यों तू इस तरह राजा को मारने के लिए तैयार हो गई ? राजा ने कहा, देवि ? स्त्री इतना बड़ा साहस नहीं कर सकती हैं, इसलिए कोई दुष्ट पुरुष ही विद्या सीखकर आया है, फिर राजा ने परविद्याच्छेद-कारी विद्या का आवाहन करके उसकी सारी विद्याएँ नष्ट कर दीं, विद्याच्छेद होने पर वह प्रकृतिस्थ हो गया, राजा ने कहा, देवि ? यह तो कुमार जैसा लगता है। अवश्य यह आपका ही पहला पुत्र है। राजा की बात सुनकर रानी अत्यंत लज्जित हो गई, उसी दिन किसी राजकार्य से सुरनंदन नगर से जलकांत का 'स्फुटवचन' नाम का दूत आया। राजा ने उससे पूछा, भद्र ? जन्मदिन में नैमित्तिकवचन से जन्म लेते ही जिस पुत्र को मैंने प्रियंवदा के पास भेजा था, यह वही है या नहीं ? उसने कहा, यह तो मदनवेग ही हैं, उसका वचन सुनकर राजा चिंतित होकर बोले। आज भी वह पूर्ववैरी पीछा नहीं छोड़ रहा है, अतः संसार-स्वभाव को सर्वथा धिक्कार है, देखो न बिना कारण क्रोध में आकर ऐसा पाप करता है। राजा ने मंत्रियों से गुप्त मंत्रणा करके उसे जेल में रख दिया और अपने आप्तपुरुष को रक्षक नियुक्त कर दिया, वहाँ भी वह सतत राजा को मारने के लिए ही उपाय सोचता रहा।

इसके बाद पर्युषणा के दिन आए। राजा की आज्ञा से अपराधी लोग जेल से छोड़े गए। राजा ने मन में सोचा कि यद्यपि मेरा पुत्र अपराधी है, दु:शील है। फिर भी उसको जेल में रखकर राज्य-सुख को मैं अच्छा नहीं मानता, इतना ही नहीं उसके जेल में रहने पर मेरा पर्युषणा पर्व भी शुद्ध नहीं होगा। यह सोचकर उसे मुक्त करके, मधुर वचन से राजा ने कहा, पुत्र ? विषाद छोड़ो, प्रसन्न होकर रहो, दीक्षा लेते समय अपने पद पर तुम्हें स्थापित कर दूँगा। यह कहकर देश के अंत भाग में सौ गाँव देकर, कुछ विश्वस्त लोगों के साथ राजा ने उसे भेज दिया और वह भी मन में वैर को लिए चला गया। वह दुष्ट वहाँ भी दिन-रात पिता को मारने के लिए छल-कपट का चिंतन करने लगा। पर्वत के समीप पल्ली के पास वह रहता था। एक समय औषधियों का अन्वेषण करते हुए एक धूममुख नाम का योगी वहाँ आया। मदनवेग ने शयन-आसन-भोजन-पान आदि से उस योगी की इतनी सेवा की जिससे प्रसन्न होकर उसने कुमार को एक अदृश्य अंजन दिया। दोनों आँख में अंजन लगाकर, अदृष्ट होकर, वह मन में सोचने लगा कि उस वैरी को मारने से ही मेरे चित्त में शांति आएगी। अपने हाथ से पिता को मारना ही मेरे लिए राज्यलाभ है। वैरी से दिया गया राज्य तो नरक से भी बढ़कर दु:खदाई है। हस्तिनापुर आकर राजा को मारने की ताक में वह शौचागार में जाकर बैठ गया। शरीर-चिंता के लिए मणि के बिना ही राजा जब वहाँ आए, उसने पीछे से राजा की पीठ में छूरा मार दिया। उस दुष्ट को बिना देखे ही राजा बाहर निकल आए और कहा कि द्वार बंद करो इसमें कोई अदृश्य है। 'मारो-मारो' कहते हुए भालेवाले अंग-रक्षकों ने द्वार बंद कर दिया। वह

दुष्ट डरकर विष्ठाकूप में गिर पड़ा। पापी दूसरे का अनिष्ट करना चाहता है किंतु दूसरों के पुण्य से कष्ट का अनुभव स्वयं करता है। अंग-रक्षकों ने चारों ओर से राजा को घेर लिया, मणि जल सोचने से राजी की वेदना नष्ट हो गई, देश के अंत भाग से मदनवेग के रक्षक पुरुष आए और उन्होंने कहा, राजन् ! मदनवेग तो अदृष्ट होकर कहीं भाग गए। राजा ने मन में सोचा कि यह तो मेरे पुत्र का ही काम था। जानता हुआ भी मैं धर्मकार्य से विरत क्यों हूँ ? यदि भोग में आसक्त जिन-धर्माचरण के विना ही यदि मर गया होता, तो मैं किस गति को प्राप्त करता ?

एक समय सेवा नियुक्त विद्याधर ने आकर प्रार्थना की कि कुसुमाकरोद्यान में चित्रवेग सूरि आए हैं, प्रसन्न होकर उसे पारितोषिक देकर अंतःपुर सहित राजा सूरि के पास आए, तीन प्रदक्षिणा करके नतमस्तक होकर सूरि की वंदना करके, बाद में अमरकेतु मुनि की भी वंदना करके राजा बैठ गए। संसार से उद्वेग करानेवाली, राग-द्वेषादि शत्रु का नाश करनेवाली, संवेगकारिणी सूरि की देशना सुनकर संवेग में आकर राजा ने सूरि से पूछा, भगवन् ? मेरा पुत्र मदनवेग मेरे साथ शत्रुता का आचरण करता है, अभी वह कहाँ है ? सूरि ने कहा, राजन ? सुनिए, जो सुबंधु-जीव कालबाण देव हुआ था, जिसने आपका विद्याच्छेद किया था, और सुरसुन्दरी के अपहरण के समय जो च्युत हो गया था, वन-महिष होकर उत्पन्न हुआ और दावानल में जलकर मर गया, फिर वह कृमियों से भरी एक कुत्ती के गर्भ से उत्पन्न हुआ, पाँच दिन के बाद उसकी माता कुत्ती मर गई, भूख से तड़प-तड़पकर मर गया। उसके बाद एक ब्राह्मण के यहाँ बैल हुआ, किंतु वह गली था। सुसे तंग आकर ब्राह्मण ने एक धाँची के हाथ उसे बेच दिया।

वहाँ कोल्हू में वहतें-वहते क्षीण होकर मर गया और हिमालय पर सर्प होकर उत्पन्न हुआ। आप रानी के साथ जब प्रश्नोत्तर में लीन थे, उसी समय उसने काट लिया, बाद में आपके अंगरक्षकों ने उसे मार डाला, वही मदनवेग होकर उत्पन्न हुआ। पूर्ववैर से शोचागार में अदृश्य होकर उसीने आपको मारने का प्रयत्न किया था, कुंतधारी अंगरक्षकों के भय से विष्ठाकूप में गिर पड़ा, और विष्ठा खाकर बहुत दिन तक रहा। विष्ठा दूर करनेवालों ने जब द्वार खोला तब आपके भय से वह निकलकर भाग गया। अशुद्ध आहार ग्रहण करने से उसे कुष्ठ हो गया और अभी वह दुःखी होकर घूमता-फिरता है, सूरि के वचन सुनकर, विरक्त होकर राजा ने सुरसुन्दरी के दूसरे पुत्र को राज्य देकर, जिन-बिम्बों की पूजा करके, अनेक दान देकर वस्त्रादि से श्रमण-संघ का सन्मान करके शुभलग्न में अनेक विद्याधरों के साथ चित्रवेग सूरि के पास दीक्षा ले ली, सुरसुन्दरी ने भी वैर निमित्त दुःख को सुनकर गणिनी कनकमाला के पास दीक्षा ले ली। इस प्रकार पूर्वोक्त तीन बहनें और तीन भाई सब के सब व्रती बन गए। चित्रगतिवाचक के पास सूत्रों को पढ़कर चित्रवेग आचार्य के पास अर्थ सुनते हुए क्रमशः मकरकेतु सूत्रार्थ विशारद बन गए। मकरकेतु मुनि पंचविध तुलना तथा तपभावना से आत्मभावन करके श्मशान में प्रतिमा धारण करने लगे।

इतने में सूरि विहार करके चम्मापुरी गए। और मकरकेतु मुनि प्रतिदिन श्मशान में प्रतिमा धारण करने लगे। चित्रगति-वाचक को वाचना समय में प्रमाद से विकथा करते समय साधुओं के बीच से कोई देव हरकर ले गया। मुनियों ने जाकर सूरि से कहा, सूरि ने उपयोग में आकर सभी बातों को जानकर साधुओं

तथा प्रवर्तिनी सहित साध्वीयों को सम्बोधित करतैं हुए कहा कि आप लोग वैर को एकदम छोड़ दें, जिस मोहिल जीव सुमंगल को परभव में रुष्ट होकर धनपतिजीव-देव ने विद्याहरण करके माणुस पर्वत के पार छोड़ दिया था। मनुष्य रहित जंगल में घूमते समय सर्प से दष्ट होकर मरकर वह संसार में परिभ्रमण करता है, वही सिद्धार्थपुर में कनकवती का पुत्र सुरथ हुआ। क्षयरोग से सुग्रीव राजा के मरने पर वह राजा हुआ। पूर्वकर्म के उदय होने पर सुप्रतिष्ठ ने राज्य ले लिया। वहाँ से वह चम्पानगरी में आया। मातामह कीर्तिधर्म राजा ने उसे सौ गाँव दिए। उसकी अनीति से कीर्तिधर्म के पुत्र भीम राजा ने उसे निकाल दिया। जंगल में घूमते हुए बालतप करके, मरकर ज्योतिषवासी शनैश्वर देव हुआ। पूर्व वैर को स्मरण करके यहाँ आकर उनका हरण करके लवण समुद्र में उन्हें फेंक दिया। शुभ परिणाम में रहकर कर्मों को जलाकर भवभयमुक्त अभी वे अंतकृत केवली बन गए।

सूरि के वचन सुनते ही साधु साध्वी सब अत्यंत संविग्न हो गए, इतने में श्मशान से अमरकेतु मुनि वहाँ आए और कहा, भगवन्! गुरु की आज्ञा से धनदेव के साथ मैं सबेरे मकरकेतु मुनि के पास गया। वहाँ उनको नहीं देखा, किंतु जलती चिता को देखकर आया हूँ, अत्यंत संवेग में आकर सूरि ने कहा कि दुःख से पीड़ित घूमता हुआ मदनवेग यहाँ आया। श्मशान में जाने पर पिता को प्रतिमा धारण किए देखकर उसने सोचा कि वैरी को मारकर अभी अपने जीवन को सफल करूँ, इतने में एक गाड़ीवाला लकड़ी से भरी गाड़ी को संध्या समय वहाँ छोड़कर बैल लेकर नगर में आ गया। अंधकार होने पर लकड़ी से उन्हें ढँककर उसने आग लगा दी। अविचल भाव से शुक्ल ध्यान से कर्मों को जलाकर वे भगवान् अंतकृत केवली हो गए!

इस प्रकार सूरि जब बोल रहे थे, चारों धाती कर्मों के क्षय होने से उन्हें केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसी समय शुभ-भावना में रहते हुए अमरकेतु मुनि–धनदेव मुनि, कनकमाला, कमलावती, सुरसुन्दरी, प्रियंगुमंजरी इनको भी केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। देवों ने इनकी महिमा की, कालक्रम से वे निर्वाण प्राप्त हो गए। अपने पाप से मदनवेग अनंत संसार में परिभ्रमण करेगा। इसलिए हे भव्यजन ! आप लोग यत्नपूर्वक महाशत्रु राग-द्वेष का त्याग करें। 'सुरसुन्दरीचरियं' नामक यह कथा समाप्त हो रही है। आप लोग भक्ति से वीतराग जिनेंद्र को प्रणाम करें !

संसार-समुद्र में डूबते हुए जंतुओं के लिए यानपात्र समान तीर्थंकर भगवान महावीर के शिष्य सुधर्मा स्वामी हुए। उनके बाद जंबूस्वामी, उनके बाद प्रभवस्वामी। इस प्रकार सूरि-परंपरा में जिनेश्वर सूरि अत्यंत प्रसिद्ध हुए। उनके पट्ट उपाध्याय अल्लक हुए। उनके शिष्य अत्यंत विद्वान वर्धमानसूरि हुए। उनके दो शिष्य हुए, जो मित्र शत्रु के लिए समान थे। विशुद्ध देशना में प्रवीण, अनेक कथाओं के रचयिता थे। जिन में एक का नाम जिनेश्वर-सूरि था। उनके सहोदर भाई बुद्धिसागर-सूरि थे। जिनके मुखारविंद से निकली वाणी विद्वानों के चित्त को अनुरंजित करनेवाली थी। उनके शिष्य धनेश्वरमुनि ने यह 'सुरसुन्दरी-चरियं' नामक प्राकृतभाषामयी कथा की रचना की है। चड्डावल्लिपुरी में गुरु की आज्ञा में रत रहते हुए उन्होंने विक्रम संवत् १०९५ दशसौ पंचानबे में इस ग्रंथ को संपूर्ण किया।

'निर्वाण विधान' नाम सोलहवाँपरिच्छेद समाप्त

० ० ०

भानुचंद्रविजयजी का साहित्य-सृजन

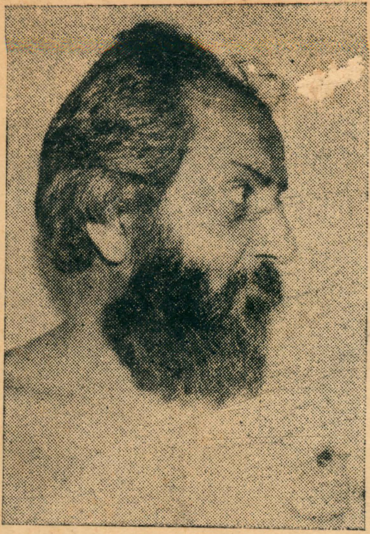

गुजराती :

नर्मदासुंदरी
सागरनां मोती
संस्कार ज्योत : १
सस्कार ज्योत : २
बार पर्वनी कथा
अमम स्वामी चरित्र : १
अमम स्वामी चरित्र : २
जैन महाभारत
श्रीपाल चरित्र

हिंदी :

कथा मौक्तिक
संदेश
सुरसुंदरी चरित्रम्

मराठी :

संदेश
कथा मौक्तिक

संपादन

वितराग महादेव स्तोत्र
सिरि सिरिवाल कहा

अप्रकाशित–हिंदी

जैन महाभारत
अमम स्वामी चरित्र – १, २
बारह पर्व की कथा